स्वर्गीय हेमचंद्र

(संस्मरण)

संग्रहकर्त्ता और सम्पादक

यशपाल जैन, बी० ए०, एलएल० बी०

भूमिका-लेखक

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४

मार्च, १९५४

मूल्य
चार आँसू

मुद्रक—

रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
गिरगांव, बम्बई नं. ४

स्व० हेमचन्द्र (सन् १९३२)

१ स्व० हेमचन्द्र, २ नाथूराम प्रेमी, ३ हेमचन्द्रकी माता रमाबाई
(सन् १९१३)

भाई हेमचन्द्रकी स्वर्गस्थ
आत्माको

—यशपाल

श्रद्धाञ्जलि

प्रेरणा

" यह पुस्तक तुम्हें भेंट है। हमारे शान्तिनिकेतनके एक विद्यार्थी 'मूलू' की स्मृतिमें यह प्रकाशित की गई थी। 'मूलू' मेरे मित्र श्री रामानन्द बाबूका सबसे छोटा पुत्र था और मेरा एक अत्यन्त प्रिय शिष्य। "

इन शब्दोंके साथ सन् १९२१ में दीनबन्धु सी. ऐफ. ऐण्ड्रूजने एक छोटी-सी पुस्तक मुझे दी थी, जिसमें उक्त छात्रके विषयमें संस्मरणोंका संग्रह किया गया था। पुस्तक बिक्रीके लिये नहीं थी। वह केवल कुटुम्बियों तथा मित्रोंको भेंटमें दी गई थी। मूलू सम्भवतः बारह वर्षकी उम्रमें इस संसारको छोड़ गया था। उसकी उस स्मृति-पुस्तककी याद मुझे बराबर बनी रही और पचीस वर्ष बाद उसीने मुझे प्रेरित किया कि स्वर्गीय हेमचन्द्रकी स्मृतिमें भी उसी प्रकारकी छोटी-सी पुस्तक निकाली जाय। मैंने अपना यह विचार बन्धुवर यशपालजीसे कहा और उन्होंने इसका हार्दिक समर्थन ही नहीं किया, वरन् संस्मरणोंके संग्रह तथा सम्पादनका कार्य्य भी अपनेपर ले लिया। वस्तुतः ये श्रद्धाञ्जलियाँ उन्हींके परिश्रमका फल हैं।

घरेलू जीवन-चरित

मेरा विचार हेमचन्द्रके संस्मरण केवल घरेलू जीवनचरितके रूपमें निकालनेका था और इस पुस्तकका प्रथम संस्करण इसी भावनासे छपाया जा रहा है। '**घरेलू जीवन-चरित**' का विचार मुझे ऐडवर्ड कार्पेण्टरके एक लेख ('चीनका सामाजिक और राजनैतिक जीवन') से मिला। चीनमें यह प्रथा थी कि प्रत्येक घरमें एक कमरा—और ग़रीबोंके घरमें कमरेका एक कोना ही—अपने पूर्वजोंकी स्मृतिके लिये सुरक्षित रहता था। वहाँ किसी उच्चस्थानपर पूर्वजों तथा स्वर्गीय आत्माओंके स्मारक-स्वरूप कुछ चिह्न रक्खे जाते थे और उसके सामने एक वेदीपर कुछ पुष्प। विशेष-विशेष अवसरोंपर वहाँ सुगन्धियुक्त धूप या बत्ती भी जलाई जाती थी। कुटुम्बके आदमियोंके ध्यानके लिये भी यही स्थान नियत था और यहींपर समस्त कुटुम्बियोंकी पाक्षिक या मासिक मीटिङ्ग भी हुआ

करती थी। इस छोटी-सी कौटुम्बिक समितिमें बाबा या पिता (और कभी कभी पूज्य दादी या विधवा माँ) पहले प्रार्थना करते थे और तत्पश्चात् कुटुम्बके जीवन-वृत्तान्त नामक ग्रन्थसे कुछ पाठ होता था। इस ग्रन्थमें कुटुम्बके स्त्री-पुरुषोंके जीवनकी स्मरणीय घटनाओंका विवरण होता था। प्रत्येक मीटिङ्गमें कोई न कोई नवीन अध्याय पढ़ा जाता था और इस प्रकार दो-तीन वर्षमें घरका बच्चा-बच्चा अपने पूर्वजोंके चरितोंको जान जाता था और उनके अनुभवोंसे लाभ उठा सकता था। इस कौटुम्बिक इतिहासके पाठके बाद कुटुम्बके मुखिया पुस्तकमें पिछले पक्ष या मासकी घटनाओंको जोड़कर एक अध्याय और बढ़ा देते थे।

घरेलू जीवन-चरितोंका विचार मुझे बहुत सुन्दर लगा और यदि हम लोग अपने श्राद्ध पक्षको इसी ढङ्गमें ढाल सकें तो निस्सन्देह एक महत्त्वपूर्ण प्रथाका पुनरुद्धार हो जाय। आज तो वह ब्राह्मण-भोजन और आर्थिक अपव्यय तक ही सीमित रह गई है।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ पहले स्वर्गीय हेमचन्द्रके इन संस्मरणोंको केवल एक घरेलू जीवन-चरितके रूपमें ही निकालनेका विचार था, पर ज्यों-ज्यों संस्मरण आते गये मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि हेमचन्द्र तो अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता था और वह व्यक्तित्व इतना असाधारण था कि प्रेमीजीके व्यक्तित्वसे अलग कर देने पर भी वह साहित्यमें स्थायित्वका अधिकारी है। **जहाँ यह बात ठीक है कि हेमचन्द्रकी स्मृति प्रेमीजीके पुत्र होनेके कारण रक्षणीय है, वहाँ यह बात भी सत्य है कि प्रेमीजी हेमचन्द्रके पिता होनेके कारण पूजनीय हैं।**

इतिहास-लेखकोंकी भ्रमात्मक पद्धति

हमारे इतिहास-लेखक सम्भवतः अभी हेमचन्द्र जैसे साहित्य-साधकोंके जीवनका मूल्य आँकनेमें असमर्थ ही रहेंगे। जिनका सम्पूर्ण समय विज्ञापितोंका ही विज्ञापन करनेमें बीतता हो, वे भला किसी मौन साधककी ओर क्यों ध्यान देने लगे? साहित्याकाशके सूर्य्य और चन्द्रोंके गुणगानसे उन्हें इतनी फुर्सत कहाँ? सफलताके इन पुजारियोंसे भला यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे अकालकालद्वारा ग्रसित इन अभागे होनहार लेखकोंके विषयमें भी दो पंक्तियाँ लिख दें—चार आँसू बहानेकी बात तो दूर रही। पुराने ढर्रेके इतिहास-लेखकोंके लिये साहित्य क्षेत्रके विभाजन, गद्य-पद्यशैली तथा काल

विभाजन ही प्रधान रहे हैं और उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिला कि अपने ऊँचे आसनसे नीचे उतरकर साहित्य-वीथियोंमें घूम-घूम कर व्यक्तित्वोंकी छान बीन करें। किस कोनेमें पड़ा हुआ कौन युवक साधक क्या साधना कर रहा है, उसकी आकांक्षाएँ क्या-क्या हैं, माता सरस्वतीके मन्दिरमें कैसे-कैसे फल चढ़ानेकी उसकी अभिलाषा है और उसके मार्गकी बाधाएँ कौन-कौन हैं, इन बातोंका पता लगानेके लिये साहित्यिक भिक्षुओंकी आवश्यकता होगी। यह कार्य्य आत्मसन्तुष्ट अध्यापकोंका नहीं है।

जीवनकी अधूरी फिलासफ़ी

जीवनकी वह फ़िलासफ़ी अधूरी ही नहीं, दोषपूर्ण भी है, जिसमें केवल सफल व्यक्तियोंका ही अभिवादन किया जाता है। इस सिलसिलेमें हमें ईला विल कौक्स नामक कवियित्रीकी एक कविताकी याद आती है, जिसका भावार्थ यह है—

कीर्तिके शिखरपर विराजमान विजयी वीरोंका गुणगान तो बहुत हो चुका, उनकी स्मृतिमें अनेकों गीतोंकी रचना हो चुकी है, आज मैं उन निराश व्यक्तियोंके गीत गाऊँगी, जो अपने लक्ष्यपर पहुँचनेमें असफल हो गये। आज मैं उस धनुर्धारीकी स्मृतिमें चार आँसू बहाऊँगी, जो इस समय अन्धकारमें खड़ा हुआ इस बातका अनुभव कर रहा है कि उसका अन्तिम और सर्वोत्तम तीर अपने निशानेपर नहीं पहुँच सका।.........मैं उन हृदयोंके गीत गाऊँगी, जो एकान्तमें टूटा करते हैं, जिनके दुःखोंको दुनिया नहीं जान पाती, जिन्हें साथीकी ज़रूरत है, पर जिन्हें अपना पथ अकेले ही चलना पड़ता है। ....आज मैं उभरते हुए हृदयसे उन आत्माओंका गुणगान करूँगी जिनके साथी रास्ता चलते-चलते बिछुड़ गये हैं और मैं इस बातको जानती हूँ कि इस सूर्य-मंडलमें कहीं न कहीं थोड़ा-सा स्थान, कुछ पुरस्कार उस अभागे दौड़नेवालेके लिये भी सुरक्षित होगा, जो थक गया और जीवनकी दौड़में विजय आते-आते जिसके हाथसे निकल गई। ईश्वरका यह सृष्टि-क्रम सचमुच ही अधूरा रह जायगा, यदि इसमें कहीं न कहीं उस परिश्रम, प्रतिभा तथा प्रेमके लिये जो इस संसारमें बिना किसी आदरके नष्ट हो जाते हैं कोई पुरस्कार सुरक्षित न हो।"

There are songs enough for the hero
Who dwells on the heights of fame;

I sing for the disappointed—
For those who have missed their aim.
I sing with a tearful cadence
For one who stands in the dark,
And knows that his last, best arrow
Has bounded back from the mark.
For the hearts that break in silence,
With a sorrow all unknown,
For those who need companions,
Yet walk their ways alone.
For those whose spirit comrades
Have missed them on the way,
I sing, with a heart o'erflowing,
This minor strain to-day.
And I know the Solar system
Must somewhere keep in space
A prize for that spent runner
Who barely lost the race.
For the plan would be imperfect
Unless it held some sphere
That paid for the toil and talent
And love that are wasted here.

हमारा दृढ़ विश्वास है कि साहित्योद्यानके भावी माली अधिक सहृदयतासे काम लेंगे। खिले हुए पुष्पोंके सौन्दर्यका गुणगान तो सभी कर सकते हैं, गौरव तो तब है जब हम असमयमें सूखी हुई कलियों—'बिन खिले मुरझा-गये' गुंचों—की भी क़द्र करें। कम-से-कम उपेक्षाद्वारा उनका तिरस्कार तो न करें।

प्रायश्चित्त

निस्सन्देह दुःखित हृदयका विश्लेषण अत्यन्त बेरहमीका काम है—घावोंको कुरेदना है और जिनके हृदयमें अत्यन्त प्रेम है, वे ही इस अत्यन्त नाज़ुक आपरेशनको सफलतापूर्वक कर सकते हैं। परमात्मा किसीपर भी ऐसा वज्र-पात न करे जैसा बन्धुवर प्रेमीजीपर हुआ और न किसीको वैसे संस्मरण लिखने पड़ें, जैसे प्रेमीजीको लिखने पड़े हैं। पर इस संसारमें ऐसी भयंकर

घटनाएँ निरन्तर घटती ही रहती हैं। मेरे पूज्य पिताजी इस समय अठावी वर्षके हैं। आठ वर्ष पहले उनके जीवनमें भी वही दुर्घटना घटी थी, जब मेरे अनुज रामनारायण चतुर्वेदीका देहान्त हो गया था। रामनारायण और हेमचन्द्र दोनोंका जन्म साल-छै महीनेके अन्तरसे हुआ था। दोनों ही प्रतिभाशाली थे और दोनों ही अपने साहित्यिक व्यक्तित्वका यथोचित विकास नहीं कर पाये। रामनारायणने कई बार स्वर्गीय पं. पद्मसिंहजी शर्मासे शिकायत की थी, "दादा दुनियाभरके लेख छापते हैं, पर हमें प्रोत्साहन नहीं देते!"

हमारे यहाँ बड़े भाईको 'दादा' कहनेका रिवाज है। यही शिकायत हेमको अपने पूज्य दादा (पिताजी) श्री नाथूरामजी प्रेमीजीसे रही। वास्तवमें दोनों दादा समानरूपसे अपराधी थे और यह श्रद्धाञ्जलि इन मुजरिमोंका आंशिक रूपसे प्रायश्चित्त है!

दुःखका महत्त्व

जिनके जीवनकी धारा बिना किसी रुकावटके सीधे सादे ढङ्गपर बहती रही है, जिनको अपने जीवनमें कभी भयंकर दुःखोंका सामना नहीं करना पड़ा, वे कल्पना नहीं कर सकते उस हृदयवेधक वेदनाका, जो पुत्रशोकसे पीड़ित किसी व्यक्तिको हो सकती है। दुःख जहाँ जहाँ है, वहीं पवित्र भूमि है, वहीं तीर्थस्थल है। महाकवि गेटेकी यह कविता चिरस्मरणीय है:—

> " Who never ate his bread in sorrow
> Who never spent the midnight hours
> Weeping and waiting for the morrow
> He knows you not, ye heavenly powers."

अर्थात्—" ए देवी शक्तियो, वे मनुष्य तुम्हें जान ही नहीं सकते, जिन्हें दुःखपूर्ण समयमें भोजन करनेका दुर्भाग्य प्राप्त नहीं हुआ तथा जिन्होंने रोते हुए और प्रातःकालकी प्रतीक्षा करते हुए रातें नहीं काटीं।" इसमें सन्देह नहीं कि दुःखी मनुष्योंका बन्धुत्व ही सच्चा बन्धुत्व है, और करुणरस ही सब रसोंका सिरताज है। सुना है कि चीनके सुप्रसिद्ध महात्मा कनफ्यूसियसके मन्दिरमें यह वाक्य खुदा हुआ है कि भविष्यकी सर्वोत्तम रचना करुणरसकी ही होगी। साथके छपे संस्मरणोंमें सबसे अधिक हृदयवेधक हैं स्वयं प्रेमीजीके संस्मरण। साथ ही सबसे अधिक स्थायित्व भी उन्हींमें है। जो आत्मा अपने घोरतम दुःखका वर्णन इतने संयम-से कर सकती है, वह

वास्तवमें महान् है। प्रेमीजीसे गत २७ वर्षसे मेरा परिचय है और इस दुर्घटनाके बाद उन्होंने पाँच-छै रोज यहाँ कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) में भी बिताये थे। बिना किसी अत्युक्तिके मैं कह सकता हूँ कि प्रेमीजी जैसे महापुरुष हिन्दी-जगत्में थोड़े ही होंगे। वे निस्सन्देह उन दो-तीन हिन्दी लेखकोंमें हैं, जिनके चरण-स्पर्श करनेमें मैं अपना गौरव समझूँगा। ऐसे ईमानदार कार्य्यकर्ता, जो सवेरेसे शाम तक अपने काममें जुते रहें और साथ ही जिन्होंने अपने परिश्रमसे इतनी विद्वत्ता भी प्राप्त कर ली हो, बहुत थोड़े ही निकलेंगे। वे वास्तवमें तीर्थस्वरूप हैं।

प्रेमीजीकी दूर-दर्शिता

प्रेमीजीने हेमचन्द्रको किसी साम्प्रदायिक विद्यालयमें नहीं पढ़ाया, इससे उनकी दूरदर्शिता प्रकट होती है। परिणाम यह हुआ कि हेमने अपने मस्तिष्कको कूड़े-करकटसे बिल्कुल अलग रक्खा और स्वेच्छापूर्वक अध्ययन करके विचार-स्वातंत्र्यकी महिमाको पहिचाना।

हेमचन्द्रकी असाधारणता

हेमचन्द्रकी असाधारणताके मूलमें प्रेमीजीकी यह दूरदर्शिता ही थी। जहाँ 'काता और ले दौड़े'की नीतिसे काम लेनेवाले बीसियों लेखक विद्यमान् हों, वहाँ हेमका स्वाध्याय-प्रेम और विज्ञापनी दुनियासे विरक्ति प्रशंसनीय ही मानी जायगी। उसकी मनोवृत्ति सर्वथा स्वस्थ थी। हैवलॉक ऐलिस तथा फ़ायडके ग्रन्थोंका पारायण उसने गम्भीरतापूर्वक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे किया था, न कि उन मनचले युवकोंकी तरह, जो मानसिक व्यभिचारके लिये इन ग्रन्थोंके पन्ने पलटते रहते हैं। स्वाध्याय-प्रवृत्तिसे भी अधिक प्रशंसनीय थी उसकी स्वतंत्र विचार-शैली। उसने अपने विवेककी तराजूको 'बावन तोले पाव रत्ती' ठीक रक्खा था और यदि वह जीवित रहता तो निस्सन्देह हिन्दीके सर्वोत्तम आलोचकोंमें उसकी गणना होती। उसकी स्पष्टवादिता तो चरम सीमाको पहुँच गई थी। अपने पूज्य पिताजीको उसने एक पत्रमें लिखा था:—

"तुमने यह तो लिखा कि तुम्हें ऐसा स्वप्न आया कि चिन्ता बहुत बढ़ गई, परन्तु यह नहीं लिखा कि स्वप्न क्या था ? यदि यह लिखते तो मैं मनोविश्लेषण-विज्ञानके सहारे उसका कुछ अर्थ लगाता और यह मालूम करता कि तुम्हारे अन्तस्तलमें क्या बात छिपी हुई है। स्वप्नोंके कारण

चिन्ता करनेकी वसीयत शायद मेरी स्वर्गीया माता तुम्हारे नाम लिख गई हैं, क्यों कि इस कारण तुम उन्हें बहुत बेवकूफ बनाया करते थे। स्वप्नमें शायद तुमने यह देखा होगा कि मैं मर गया हूँ अथवा अन्य ऐसे ही किसी प्रिय जनका वियोग देखा होगा। यदि ऐसा हो भी तो इसमें रंजकी कौन बात है? मेरे मरनेसे कोई दुनियाका काम चलना थोड़े ही बन्द हो जायगा। दुनिया जैसी चलती थी, सो चली जायगी। इसमें कोई फर्क नहीं होगा। जब तक जीऊँगा, तुम्हारी सेवा करूँगा और जो मैं अपना कर्तव्य समझूँगा, करता रहूँगा। यदि मैं देशद्रोह करूँ या कोई बहुत बुरा कार्य करता हुआ मरूँ तो रंज होना वाजिब है, परन्तु जब मैं अपना कर्तव्य करता हुआ मरूँगा तब तो तुम्हें खुशी होना चाहिये कि मेरा बेटा अपना कर्तव्य करता हुआ मरा और अपने कुलको उज्ज्वल करता गया। यदि मैं नालायक हूँ तो समझ लेना कि ऐसे नालायकका मरना ही अच्छा है। यह सब समझकर इन बातोंकी चिन्ता करना छोड़ दो।..."

एक दूसरे पत्रमें लिखा थाः—

"व्यर्थका रंज मत किया करो। याद आनेसे रोना क्यों आना चाहिये, यह मेरी समझमें नहीं आता। याद आनेपर तो आनन्द होना चाहिये, रंज क्यों? मेरी माताके साथ तुम्हारा जीवन सुखी था, दुखी नहीं। मैं अपनी माताका स्मरण करता हूँ तब तो मेरी तबीयत इतनी प्रसन्न होती है कि मानों मैं स्वर्ग-लोकमें विचर रहा हूँ। जब मैं याद करता हूँ कि मेरी माता मुझे किस तरह प्रेम करती थीं, कैसे दुलराती थीं, तब मुझे हर्ष होता है—दुःख नहीं। तुम्हें भी ऐसा ही होना चाहिये।...ने फिरसे विवाह करनेके लिये तुमसे कहा। उसका मुझे भी भय है कि कहीं तुम्हारा मन विवाह करनेका न हो जाय। तुम्हें मेरी माताका स्मरण करके दुःख होता है, यह अभी तक तुम्हारी मोहयुक्त मतिका प्रमाण है। जिस दिनसे तुम माताजीका स्मरण प्रेम और हर्षसे करने लगोगे तभीसे इस विषयकी सब शङ्काएँ दूर हो जायँगी। तभीसे मैं तुम्हें एक महापुरुष समझूँगा। तभी समझूँगा कि तुम्हारा प्रेम सांसारिक न रहकर आध्यात्मिक हो गया है। आशा है कि शीघ्र ही तुम इस मोहसे—इस बेवकूफीसे—छुट्टी पाओगे। यदि तुम्हें अपना हृदय कमजोर मालूम हो तो देवरी आदि जहाँ उस बातको स्मरण करानेवाले हों, वहाँ मत जाओ।"

साहित्यिक लिहाजके पीछे लट्ठ

हेमचन्द्र ईमानदारीके साथ अपने विचार प्रकट कर देनेमें विश्वास करता था। मुझे तो अच्छी खासी पर मधुर डाँट उसने बताई ही थी, पर हिन्दीके प्रतिभाशाली लेखक श्रीयुत जैनेन्द्रकुमारजीको तो एक पत्रमें खासी फटकार बतलाई थी। पत्रकी प्रतिलिपि (सो भी कटी-कुँटी और रफ) मौजूद है, पर पत्र इतना कठोर है कि अब उसे उद्धृत करना अनुचित होगा।

जैनेन्द्रजी और सियारामशरणजी

'सुधा' में बधुवर सियारामशरणजीकी पुस्तक 'नारी 'की आलोचना करते हुए जैनेन्द्रजीकी दो कमजोरियोंकी ओर हेमचन्द्रने अपनी विचारपूर्ण सम्मति इन शब्दोंमें दी थी:—

"जैनेन्द्रकुमारजी अत्यन्त उच्च श्रेणीके प्रतिभासम्पन्न कलाकार हैं, पर उनकी दार्शनिकता प्रतिक्रियात्मक है। वह जिस चीज़से भागते हैं, मानों वही बार-बार उनका पीछा करती है। एक तरफ तो वह बुद्धिवादका घोर विरोध और कार्य्यकारण-परम्पराकी उपेक्षा करते हैं और दूसरी तरफ इस विरोधके लिए बुद्धिका ही आश्रय लेते हैं। उनके नवीन उपन्यासोंमें सुसंगतिकी भी उपेक्षा की गई है, जो कलाका मूल है। हिन्दीके दुर्भाग्यसे उनके सिरपर एक किस्मका उन्माद-सा सवार हो गया है, जो उनका पीछा नहीं छोड़ता। परन्तु सियारामशरणजीकी दार्शनिकतामें ये दोष नहीं। उनकी दार्शनिकता चिन्तन, अनुभूति और विचारका सुसंगत, क्रमबद्ध और स्वाभाविक परिणाम है। वह हृदयग्राही है।..."

"जैनेन्द्रजी शायद ऐसे प्रथम कलाकार हैं, जिन्होंने हिन्दी भाषण-शैलीसे टकसालीपन दूर कर उसे उसकी स्वाभाविकतामें प्रतिष्ठित करनेकी कोशिश की और इस दृष्टिसे उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ बड़ी सुन्दर हुई। जहाँतक यह बात सरलतासे की गई, वहाँतक तो उन्हें सफलता भी मिली परन्तु जहाँ बरजोरी की गई, वहाँ भाषा भद्दी होने लगी और उसका rhythm नष्ट होने लगा। वे इस बातको भूल गये कि कलाकारके लिये स्वाभाविकतासे भी बढ़कर दुनियामें अधिक महत्त्वकी एक वस्तु है, और वह है सुन्दरता। असुन्दर वस्तु चाहे वह कितनी ही स्वाभाविक क्यों न हो वर्ज्य है। भाई सियारामशरण-जीकी भाषामें स्वाभाविकता और सुन्दरता दोनों ही एकरूप होकर विराजमान

है। साथ ही उनकी बुन्देलखंडी बोलीकी स्वाभाविक मधुरताका पुट भी उसमें दिया हुआ है।........"

हेमचन्द्रकी स्पष्टवादिताके ये उदाहरण हमारे आलोचकोंके लिये अनुकरणीय हैं। हेमचन्द्र जैनेन्द्रजीको बड़े भाईके समान ही आदरणीय मानता था, पर जजके आसनपर बैठनेके बाद वह अपने पूज्य दादाजीकी भी रियायत नही कर सकता था। साहित्यिक शिष्टताके पीछे वह लट्ठ लिये घूमता था क्योंकि उसकी दृष्टिमें यह नैतिक निर्बलताकी जननी थी।

प्रत्येक मानवका स्वतंत्र व्यक्तित्व

आज सम्पूर्ण संसारमें जो भयंकर विग्रह हो रहा है और जो अनाचार हो रहे हैं उन सबके मूलमें है कुछ मनुष्योंकी यह निन्दनीय प्रवृत्ति कि वे जनसमुदायको केवल अपने ढङ्गमें ढालना चाहते हैं, अपने ढर्रेपर चलाना चाहते हैं। और चूँकि संसारमें भेड़ोंका ही बाहुल्य है, इस लिये इन डिक्टेटरोंको अपने असदुद्देशमें सफलता भी मिल जाती है। इसीलिये किसी भी विवेकशील पाठककी तबीयत हेमचन्द्र जैसे युवकको देखकर खुश हो जाती, क्यों कि वह किसीकी भी भेड़ बननेको तय्यार नहीं था। अपने प्रिय विषय अराजकवादका भी मुझे कितना उथला ज्ञान है, इसका पता हेमचन्द्रके पत्रोंसे लगा यद्यपि मुझमें इतना नैतिक बल नहीं था कि उसके सामने अपनी हार मान लेता। "अपनी कहे जाना और दूसरेकी न सुनना" इस अमोघ अस्त्रसे जब मैं हेमके पूज्य दादाजीको ही अनेक वाद-विवादोंमें पराजित कर चुका था, तब हेमसे पराजय स्वीकार करनेकी उदारता मुझमें कहाँ थी? इतने दिनों बाद उसके पत्रोंको पढ़कर मैं अनुभव करता हूँ कि उसके द्वारा की हुई मेरी आयोजनाओंकी आलोचना यथार्थ थी।

प्रेमीजीकी यह भूल थी (और उसे स्वीकार करके उन्होंने प्रायश्चित्त भी कर लिया है) कि वे हेमको कोरमकोर अनुवादक या व्यवसायी बनाना चाहते थे जब कि उसकी प्रतिभा स्वाध्यायशील स्वतंत्र-विचारक बननेकी थी। अनेक माता-पिताओंसे यह भूल हो जाती है, इसलिये प्रेमीजीका अपराध क्षम्य ही था।

भगिनी निवेदिताने अपनी मृत्युके पहले किसी बौद्ध ग्रन्थसे एक प्रार्थना अँग्रेजीमें अनुवाद करके अपने मित्रोंको भेजी थी :—

" विश्वके समस्त प्राणी—बिना शत्रुओंके, बिना बाधाओंके, दुःखोंको दबाते हुए और आनन्द प्राप्त करते हुए स्वाधीनता-पूर्वक आगे बढ़ें—प्रत्येक अपने ही मार्गपर।

" पूर्वमें और पश्चिममें, उत्तर और दक्षिणमें विश्वके सब व्यक्ति—बिना शत्रुओंके......स्वाधीनतापूर्वक आगे बढ़ें—प्रत्येक अपने ही मार्गपर।"

प्रत्येक प्राणीको अपने पथपर अग्रसर होनेकी सुविधा देनेमें ही जगत्‌का कल्याण है।

एक झलक

साथके संस्मरणोंमें हेमचन्द्रके जीवनकी एक झलक दीख जाती है। विद्वद्वर्य पं० सुखलालजीके लेखमें हेमकी फकीरी प्रवृत्ति और फक्कड़पनके दर्शन होते हैं, तो पंडित महेन्द्रकुमारजीके संस्मरणोंमें हेमचन्द्र पंडितानीजीको विटामिन शास्त्रपर व्याख्यान देते हुए नजर आते हैं। पंडित दरबारीलालजीके लेखका निम्नलिखित अंश पढ़कर भला कौन ऐसा होगा जो इसके माधुर्यपर मुग्ध न हो जाय?

कभी-कभी प्रेमीजीके सामने ही हेमचन्द्र मुझसे कहता, " काय पंडितजी, दादा केत हैं के तें मूरख है, सो का मैं मूरख हों?"

मैं कहता, " नईं रे, तोरे बिरोबर समजदार हैं किते। दादा तो ऊँसइ केत रेत हैं!"

हेमचन्द्र तुरन्त प्रेमीजीसे कहता, " देखो दादा, पंडितजी का केत! तुम हमें मूरख बताउत रेत।"

प्रेमीजी हँसकर कहते, " वे तो तोरो दिल बढ़ाउत।" उस समय हेमचन्द्रकी मुस्कराहट देखनेलायक होती थी।

यह साहित्यिक विनोद कितना आकर्षक है!

बन्धुवर हज़ारीप्रसादजी द्विवेदीने अपने संस्मरणोंमें गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक अत्युत्तम कविताको उद्धृत कर जीवनकी ऊपरसे दीखनेवाली असफलताका रहस्योद्घाटन किया है और वास्तविक सफलताकी ओर इशारा किया है। श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालालजी बख्शीकी रचना एक विशेषज्ञकी कलमसे ही निकल सकती थी। थोड़ी-सी पंक्तियोंमें जादूका-सा असर करनेकी शक्ति उनकी लेखनीमें विद्यमान् है। बन्धुवर जैनेन्द्रजीने चार-पाँच पंक्तियोंमें मानो हेमके सम्पूर्ण चरितको अंकित कर दिया है:—

" मैंने बहुत जल्दी देख लिया कि यह अबोध हेम गहराईके साथ सुबोध है और सरलता उसके लिये इस कारण सहज है कि व्यर्थ चातुर्य्यके लिये उसके पास खाली जगह नहीं है। छोटी-ओछी बातोंमें उसका मन न था और चतुरोंके बीचमें अचतुर बननेमें उसे तनिक असुविधा न होती थी।"

श्रीयुत कृष्णलालजी वर्माने कई निजी प्रसंगोंपर प्रकाश डाला है और श्रीयुत कृष्णानन्दजी गुप्तकी पैनी दृष्टिकी तराजूपर हेमकी अध्ययनशीलता ठोस ही उतरी है। अन्य संस्मरण भी यथास्थान अपना महत्त्व रखते हैं।

दुःखोंकी गंगा

पर प्रेमीजीके संस्मरण तो मानों दुःखोंकी गंगा हैं। साहित्यमें कौन चीज़ स्थायी रहेगी, कौन अस्थायी, इसका अनुमान करना अत्यन्त कठिन है, पर इतना तो कहा जा सकता है कि ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा, बुद्धि-प्रधान चीज़ोंकी अपेक्षा हृदय-प्रधान रचनाएँ अधिकाधिक लोकप्रिय होती जायँगी। आजके महायुद्धके बाद भी, जिसमें लाखों पुरुष मारे गये हैं, जिसमें करोड़ों अनाथ तथा विधवाओंको विलाप कराया है, यदि मानव समाजका कठोर हृदय न पिघला तो यह अत्यन्त आश्चर्य्यकी बात होगी। हमारा दृढ़ विश्वास कि करुण रस अपनी खोई हुई सर्वोच्च पोज़ीशन फिर प्राप्त करेगा। इस दृष्टिसे अपने एकमात्र पुत्रके अनन्त वियोगमें लिखे गये प्रेमीजीके ये संस्मरण अपने असाधारण संयमके कारण युग-युगान्तर तक सहृदय साहित्यिकोंको आठ आठ आँसू रुलाते रहेंगे।

दुःखोंकी गंगाके ये पवित्र दर्शन हमारे साहित्यिक पापोंको धो डालें और भविष्यके प्रतिभाशाली स्वतंत्र विचार-प्रिय नवयुवकोंको अपने विकासके लिये भरपूर अवसर मिलें, यही हमारी प्रार्थना है।

कुण्डेश्वर
टीकमगढ़
१।२।४४

बनारसीदास चतुर्वेदी

स्व० हेमचन्द्र (सन् १९१२)

सम्पादककी ओरसे

प्रस्तुत पुस्तक स्व० हेमचंद्रजी मोदीके प्रति श्रद्धांजलिस्वरूप है और वह **बिक्रीके लिए नहीं, दिवंगत बन्धुके निकटस्थ व्यक्तियोंको भेंट करनेके लिए है**। इसमें जो उद्गार प्रकट किये गये हैं, वे हेमचंद्रजीके गुण-दोषों अथवा साहित्यिक प्रतिभाके विवेचनकी दृष्टिसे नहीं किये गये हैं। उनका ध्येय तो उस पुनीत आत्माके प्रति श्रद्धाके दो पुष्प अर्पित करना है और इसी भावनाको ध्यानमें रखकर इस पुस्तकको पढ़ना उचित होगा।

हेमचंद्रजीने लिखा तो बहुत है, लेकिन उनकी अधिकांश रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। इसलिए बहुत-से लोग नहीं जानते कि उनमें आसाधारण प्रतिभा थी। वे जीवित रहते तो कैसी-कैसी चीज़ें लिखते, इस बातको छोड़कर यदि हम उनके लिखे हुए लेखों और पुस्तकोंको देखें तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उनके प्रकाशित होने पर वे हिन्दी-साहित्यकी वृद्धि करेंगी। 'विशाल भारत' में प्रकाशित उनके लेखोंको पढ़कर श्रद्धेय पं० हरिशंकरजी शर्माने कहा था कि ये लेख आसानीसे ऊँची कक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंमें रक्खे जा सकते हैं। स्वामी शिवानंदजीके संस्मरणोंमें यह पढ़कर हमें आश्चर्य हुआ कि हेमचंद्रजीने केवल अठारह वर्षकी अवस्थामें अपनी 'ब्रह्मचर्य-दर्शन' पुस्तक लिख डाली थी।—वह पुस्तक जो स्वामीजीके शब्दोंमें 'प्रकाशित होनेपर लेखककी उज्ज्वल कीर्तिको चतुर्दिक फैलावेगी।'

हेमचंद्रजीने अनेक विषयोंका अध्ययन किया था और गहराईके साथ। कहानियाँ हम कई वर्षोंसे लिख रहे हैं, लेकिन हेमचंद्रजीद्वारा लिखित कहानियोंकी भूमिकाको पढ़कर हमें बड़ा अचरज हुआ। कितनी पुस्तकोंका उन्होंने स्वाध्याय कर लिया था! असलमें हेमचंद्रजीकी विशेषता ही यह थी कि जिस चीज़को वह उठाते थे, उसकी तह तक पहुँचनेका प्रयत्न करते थे।

उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। कहाँ स्वप्न और कहाँ अलंकार-शास्त्र! कहाँ ब्रह्मचर्य और कहाँ बुनियादी व्याकरण! कहाँ योग और कहाँ जल-चिकित्सा! जिस ओर उनका रुझान हुआ, उसी ओर चल पड़े और अपनी समस्त शक्ति उसी कलामें पारंगत होनेमें लगा दी। हठयोगकी कठिनतम

क्रिया वज्रोलीका अभ्यास छोड़ देना तो कोई बात न थी; लेकिन धुनके पक्के उस युवकके लिए सब कुछ सहज था।

हेमचन्द्रजीकी रचनायें

१. मंगलमय महावीर—(टी. एल. बस्वानीके लेखका अनुवाद) 'विशाल-भारत'में प्रकाशित
२. योग-विषयक-लेखमाला ,, 'अनेकांत' में ,,
३. श्रद्धांजलि (माताके स्वर्गवास पर) 'जैन-जगत' अंक ३ पृ. २५
४. शैतानकी पूजा ,, ,, ४ ,, २३
५. जाति-भेदकी वैज्ञानिक नींव ,, ,, ८ ,, १९
६. ब्रह्मचर्य, व्यभिचार ,, ,, १८ ,, १८
७. ब्रह्मचर्य, व्यभिचार और विवाह-संस्था ,, ,, २१ ,, १५
८. स्वप्न (अधूरा) अप्रकाशित
९. नारी (समालोचना) सुधा आषाढ़ ३१५ तु. सं.
१०. 'नवीनचिकित्सा-विज्ञान'की भूमिका
११. 'प्राकृतिक चिकित्सा'की भूमिका और परिशिष्ट
१२. 'उपवास-चिकित्सा'का परिशिष्ट
१३. साहित्य-शिक्षाका अध्ययन (पुस्तक) प्रकाशित
१४. गोदान, शाहजहाँ, और बुद्धदेवकी आलोचना (पुस्तक) ,,
१५. 'पाटणके प्रभुत्व'की भूमिका
१६. सहज हिन्दुस्तानी प्रथम भाग } प्रकाशित
१७. ,, ,, द्वितीय भाग }
१८. ,, ,, तृतीय भाग (अपूर्ण)
१९. ब्रह्मचर्यदर्शन (पुस्तक) अप्रकाशित
२०. कहानी-संग्रह और भूमिका अप्रकाशित
२१ हिन्दीका बुनियादी व्याकरण ,,
२२. सोपपत्तिक-जल-चिकित्सा-शास्त्र ,,
२३. संक्षिप्त जल-चिकित्सा प्रकाशित
२४. श्रीकांत-प्रथम पर्व (अनुवाद) ,,
२५. ,, द्वितीय ,, ,, ,,

२६. शरत् बाबूकी 'छवि' (तस्वीर) कहानीका अनुवाद प्रकाशित
२७. रवि बाबूके 'हिन्दी मर्मी कवि'का अनुवाद ,,
२८. साहित्य-शिक्षाका सम्पादन ,,
२९. युक्तिवादके प्रति बग़ावत हंस ,,
३०. साहित्य : अनुभूतिकी अभिव्यक्ति विशाल भारत अगस्त ४२
३१. मूल्य : उसका मनोवैज्ञानिक आधार ,, अक्टू. ४२
३२. रीति या शैली ,, दिस. ४२
३३. प्रतिभा : उसका स्वरूप ,, अप्रैल ४३
३४. रचनाका बाँकपन (अधूरा) अप्रकाशित

आवश्यकता इस बातकी है कि इन रचनाओंको विशेषज्ञोंद्वारा सम्पादित कराके प्रकाशित किया जाय। श्रद्धेय प्रेमीजीने ऐसा निश्चय भी कर लिया है और विश्वास है कि उनकी रचनाएँ शीघ्र ही हिन्दी-जगतके सामने आ जाँयगी।

हेमचन्द्रजीकी योजनाएँ

हेमचन्द्रजीके उर्वर मस्तिष्कमें अनेक योजनाओंका प्रादुर्भाव हुआ था। खेद है कि वे उन्हें कार्यरूपमें परिणत न कर सके। निस्संदेह साधारण युवकोंकी अपेक्षा वे कहीं अधिक दूरदर्शी थे और उनकी योजनाओंको यदि कार्यान्वित किया जाय तो वे हिन्दी-जगतके लिये कल्याणकारी सिद्ध होंगी। इन योजनाओंसे यह स्पष्ट है कि जहाँ उनका मस्तिष्क प्रायः उच्च विचारोंके धरातलपर रहता था, वहाँ व्यावहारिक विषयोंपर भी वे स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सकते थे।

सस्ती पुस्तकोंके प्रकाशनके

संबन्धमें उन्होंने अपने २८ अगस्त'३४ के पत्रमें प्रेमीजीको लिखा था—

"मैंने बैठे-बैठे एक स्कीम सोची है। यदि कोई भी दस फार्मकी पुस्तक न्यू ग्लेज कागज पर पाइकामें छपवाई जावे और बढ़िया आर्ट पेपरका तिरंगे चित्र सहित कवर लगाया जाय और करीब दस हजार प्रतियाँ छापी जायँ तो लागत छः पैसे प्रति पड़ती है। ऐसी पुस्तकें तीन या चार आने मूल्यपर व्हीलरके स्टालोंपर तथा फुटकर बुकसेलरोंके द्वारा बेची जाँय तो सहजमें वर्षमें ९-१० हजार प्रतियाँ निकल सकती हैं।

"मैंने सोचा है कि पहले इस स्कीमके अनुसार प्रेमचंद्रजी, डी. एल. राय आदि विख्यात लेखकोंकी कृतियाँ सीरियल रूपमें निकाली जायँ। पहले दस पुस्तकें निकाली जायँ और घूम-घूम कर बुकसेलरोंको दी जायँ और व्हीलरको ४०% कमीशन देकर उससे बिकवाई जायँ। एक दफे सारे हिंदुस्तानका चक्कर इसके प्रचारमें लगाना पड़ेगा।

यदि ये पुस्तकें चल गई तो बनारसके... आदिकी पुस्तकें चलना बंद हो जायँगी और 'छबीली भटियारी' आदिको कोई न पढ़ेगा। इस योजनासे सुरुचिका प्रचार होगा।"

मानव-जीवनमें ज्यों-ज्यों व्यस्तता बढ़ती जायगी वह ज़माना अब शीघ्र ही आनेवाला है, जब लोग छोटी-छोटी पुस्तकोंको अधिक पसंद करेंगे और तब भाई हेमचन्द्रजीकी इस सुरुचि-प्रचारक सस्ती पुस्तकोंकी योजनाका मूल्य मालूम पड़ेगा।

अपने १३ सितम्बर'३४ के पत्रमें उन्होंने लिखा था—

"...मेरे मनमें चार पाँच स्कीमें और भी हैं, जो सफल हो सकती हैं, यदि उनके लिए पूरा टाइम, आदमी और साधन मिलें। इन स्कीमोंको शुरू करके एक दफे इन्हें सफल बनानेके लिए मुझे सारे हिन्दुस्तानकी मुसाफिरी करनी है।... मेरा दिमाग़ अधिक चलता है, हाथ-पैर कम। एक साथ मैं एक कामसे अधिक कर भी नहीं सकता हूँ। मुझे सहारेकी बड़ी आवश्यकता है। यदि मुझे योग्य कार्यकर्ता मिल जायँ तो मेरा काम सबसे आगे बढ़ जाय।"

रीडरोंके संबंधमें भी हेमचंद्रजीकी एक योजना थी। वे जानते थे कि आजकल जो रीडरें बच्चोंको पढ़ाई जा रही हैं, उनमेंसे अधिकांशमें न तो बच्चोंकी रुचिका ही ध्यान रक्खा जाता है, न उपयोगिताका। उनका दृष्टिकोण भी बड़ा संकुचित होता है। अतः अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणको सामने रख कर उन्होंने रीडरें तैयार करनेकी जो स्कीम सोची थी, उसे उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिये—

"रीडरोंमें अनुवाद भी होगा और मौलिक भी। अनुवादको मौलिक बनाकर ही लिखा जायगा। दुनियाके बड़े बड़े लेखकों और विभूतियोंने बच्चोंके लिए लिखा है, उसमेंसे संग्रह करके प्रारंभिक रीडरें बनाई जायँगी। आगेकी रीडरोंमें हिन्दीके दूसरे बड़े लेखकोंकी रचनाएँ एक विशेष क्रमसे संग्रहीत होंगी। प्रत्येक लेखककी शैली, भाव आदिपर साहित्य-शास्त्रकी दृष्टिसे नोट दिये जाँयगे और बताया जायगा कि उसकी रचनाओंमें क्या विशेषता और सौन्दर्य है। रीडरें बनानेके पहले हिन्दीके सबसे बड़े अच्छे कोशपरसे शब्दोंका विभाजन किया जायगा और निश्चय किया जायगा कि उसमेंसे कितने शब्दोंका उपयोग पहली रीडरमें हो तथा आगेकी रीडरमें नये शब्द एक निर्दिष्ट संख्यामें ही उपयोगमें लाये जायँ। हरेक रीडरके अंतमें नये शब्दोंकी सूची भी दी जायगी। प्रारंभिक रीडरोंमें इस बातकी सावधानी रक्खी जायगी कि जिस प्रांतकी रीडरें बनाई जावें, उस प्रांतमें आम जनतामें प्रचलित शब्दोंके सुथरे रूपोंका ही अधिक उपयोगकिया जाय।"

कैंची और गौंदकी सहायतासे एक सप्ताहमें पाँच सात रीडरें तैयार करने-वालोंको देखना चाहिए कि यह कार्य कितना दायित्वपूर्ण और श्रमसाध्य है।

स्पष्टवादिता—

हेमचंद्रजीकी स्पष्टवादिताके अनेकों उदाहरण संस्मरणोंमें आये हैं। अपनी बातको निर्भीकतापूर्वक कह देना उनका स्वभाव ही बन गया था। प्रेमीजीके देवरीमें पुस्तकालय खोलनेके विचारकी उन्होंने कितनी निडरताके साथ अपने एक पत्रमें आलोचना की है—

" देवरीमें लाइब्रेरी खोलनेकी बात मुझे पसंद नहीं आई। चंद्रकांता, भूतनाथ और लंदनरहस्यके पाठक पैदा करना अपना उद्देश नहीं होना चाहिए। लाइब्रेरीमें अच्छी पुस्तकें रक्खोगे तो कोई पढ़ेगा नहीं। "

" यदि तुम्हारी इच्छा संस्था खोलनेकी हो तो ऐसी संस्था सरखेरे या उसके पास गौरझामरमें ही होना चाहिए जो कि मेरी माँकी, जिनकी कि स्मृतिमें तुम दान करना चाहते हो, जन्म-भूमि थी और जो उनको प्यारी थी। दान-पुण्यके नामपर भी मनुष्य नामादि कमाने, मान चाहने आदिके लिए कार्य करता है और अपने आपको धोखा देता है। यह काम अनेक बार वह जानबूझ कर नहीं करता, परन्तु उसके अन्तस्तलमें यह बात होती है। इसलिए स्वर्गीय माताजीके नामसे दान करनेके पहले यह विचार करना आवश्यक है कि यदि वे जीवित होतीं तो किस कार्यसे वे सबसे अधिक प्रसन्न होतीं। इस बातको विचार करके ही काम करना चाहिए।

" देवरीमें तुम्हारा जन्म हुआ है। इसलिए देवरीके लिए कुछ करनेकी भावना तुम्हारे मनमें आना स्वाभाविक है, परन्तु उसे दूसरेके सिरपर नहीं लादना चाहिए। मुझे इस बातका निश्चय है कि माँकी इच्छा लाइब्रेरी खुलवानेकी और फिर वह देवरीमें, अपनी जिन्दगीमें कभी नहीं हुई। उनकी सतत इच्छा यही रही थी कि उनके निकट सम्बन्धियोंकी हालत सुधरे। उनको रुपये-पैसेकी मदद दी जावे। उनके गाँवमें लोगोंकी हालत सुधरे। आदि। इस लिए यदि लाइब्रेरी खोलना है तो सरखेरे या गौरझामरमें खोलनी चाहिए देवरीमें नहीं। "

फिर ८ सितम्बर ३४ के पत्रमें—

" छोटी-मोटी दुकान चलानेके लिए तो हज़ारों आदमी विधाताने पैदा किये हैं, परन्तु बड़े काम करनेके लिए तुम्हारे सरीखे कम। अपनी शक्तिका अपव्यय मत करो। यदि तुम चाहो तो थोड़ासा परिश्रमकरके भी बहुत कुछ रुपया कमाया जा सकता है। "

अन्य कई पत्रोंमें भी बेलाग बात कहनेसे वह नहीं चूके। ८ अक्टूबर ३४ के पत्रमें उन्होंने लिखा था—

" यह बात ठीक है कि स्कीमें बनानेसे काम नहीं चलेगा, परन्तु यह भी ठीक है कि बिना स्कीमोंको उपयोगमें लाये काम न चलेगा। समयके अनुसार व्यापारकी रीतियाँ भी बदलना आवश्यक है। केवल विज्ञापनोंसे कुछ न होगा। "

उससे पहले १ अक्तूबर ३४ के पत्रमें लिखा था—

" मकान आदि खरीदनेमें रुपया लगाना व्यर्थ है। अपनी दुकान दिन-ब-दिन गिरती जा रही है। उसे फिरसे चमकानेके लिए नई योजनाओं और नये कामोंमें रुपया लगानेकी आवश्यकता है। पुरानी रफ्तारसे काम न होगा। "

पितृ-प्रेम—

इस सबसे यह न समझा जाय कि हेमचन्द्रको अपने पितासे प्रेम न था। वह उन्हें बेहद स्नेह करते थे। आवश्यकता पड़ने पर रोकते-रोकते उन्होंने प्रेमीजीके लिए अपना पाव भर रक्त दे डाला था। प्रेमीजीके स्वास्थ्यादिकी उन्हें कितनी चिन्ता रहती थी, इसका अनुमान आप उनके ५ अगस्त ३४ के सिंघई पन्नालालजीको लिखे गये पत्रसे कर सकते हैं। लिखा था:—

" कल शामकी गाड़ीसे पिताजी अमरावतीको चल दिये हैं। वहाँ पहुँचकर या तो वे आपके यहाँ ठहरेंगे, या जमनाप्रसादजीके यहाँ। यहाँ कुछ निश्चय नहीं था। उनको कुछ दिनोंसे फिर खाँसी ज़ोरसे चलने लगी है। कृपा करके ज़रा उनकी सँभाल रखियेगा। आप ही लोगोंके भरोसे मैंने उन्हें वहाँ जाने दिया है। यह समझ कर कि वे .खुद विद्वान् हैं, बुद्धिमान हैं, खाने-पीने-रहनेकी बातें उनके भरोसे न छोड़ दीजियेगा। अनेक दफे़ वे बिल्कुल बच्चोंकासा व्यवहार कर बैठते हैं। यह बात यदि हो सके तो जमना-प्रसादजीको भी समझा दीजिये। "

चिकित्सा-शास्त्रका अध्ययन और प्रयोग—

चिकित्सा-शास्त्रका हेमचंद्रजीने सूक्ष्म अध्ययन किया था। अपने ऊपर उन्होंने अनेक प्रयोग भी किये थे। पं० दरबारीलालजी 'सत्यभक्त' के संस्मरणोंमें यह पढ़ कर कि किसी दवाके प्रयोगके कारण ही उनकी मृत्यु हुई, हमें बड़ा खेद हुआ। एक गृहस्थको, जिसपर कुनबेभरकी जिम्मेदारी है, अपने जीवनपर खतरनाक प्रयोग कभी न करने चाहिए।

चिकित्सा-शास्त्रसम्बन्धी उनके ज्ञानके भी दो एक दृष्टांत लीजिये। पहली अक्टूबर ३४ के पत्रमें प्रेमीजीको लिखा था—

" पायोरियाके कारण कब्ज है, यह ख्याल गलत है। वास्तवमें कब्जके कारण पायोरिया होता है। कब्जके लिए त्रिफला आदिका चूर्ण खा लिया करो। आज कल अपने यहाँ मूली भी आती होगी। उसका रस भी नीबूके साथ पिया करो। कब्ज और पायोरिया दोनोंके लिए अच्छा है। कस्तूरीका सेवन भी करते जाते होगे। मकरध्वज और कस्तूरी दोनों ही ताकतकी ओषधियाँ हैं। इनके कारण भी कब्ज होता होगा। सभी ताकतकी दवाएँ कब्ज करती हैं।

" सुबह कस्तूरी और मकरध्वज शामको त्रिफला लिया करो। कोयलेको पीसकर उसमें कुइनेन मिलाकर मंजन किया करो।

भूख बढ़ानेके लिए छाछसे बढ़कर कोई औषध नहीं है। परन्तु छाछ तुम्हें अनुकूल नहीं है। फिर भी यदि तुम कस्तूरीकी मात्रा बढ़ा दो और कस्तूरी असली और खूब तेज़ हो तो छाछ नुकसान नहीं करेगा, यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ। कस्तूरीकी गर्मी छाछकी सर्दीको नष्ट कर देगी। यात्राके प्रसंगमें खाने पीनेमें गड़बड़ होनेसे भी भूख कम हो जाती है। लिखो तो मैं ' क्रव्याद रस ' भेज दूँ, जो कि भूख बढ़ानेवाला है "

फिर ८ अक्टूबर ३४ के पत्रमें—

" लेबोरेटरीमें पेशाबकी जाँच करानेकी कोई जरूरत नहीं। मूली न मिले तो अधा-झारेके क्षारका सेवन किया करो। किसी आयुर्वेदिक ग्रन्थमें उसका प्रयोग देख लेना। कोई प्रयोग न मिले तो पानी और शहदके साथ सुबह पी लिया करना। इससे लिवरकी शिकायत बिल्कुल मिट जायगी। पेशाब साफ़ आती रहे, इसका ख्याल रखना। जवाखारका प्रयोग भी अच्छा। जौकी रोटी खाना भी अच्छा है। परन्तु ये दोनों क्षार कुछ शीतल हैं। इस कारण कस्तूरी बंद न करना। कुमारी आसव भी अच्छा है, यदि मिल सके तो। लिखो तो मैं यहाँसे भेज दूँ। डाक्टरी जाँच आदिकी अपेक्षा इसमें अधिक बुद्धिमानी और कमखर्ची है। "

" ...कस्तूरी और मकरध्वजका सेवन कम न करना और धीरे धीरे बढ़ाते ही जाना। शरीरमें गर्मी अधिक बनाये रखनेकी कोशिश करते रहना। इससे दमा खाँसीके लौटनेका भय न रहेगा। बंबई आकर प्राणायामकी कसरत शुरू कर देना। इसके बगैर यह बीमारी जड़से न जायगी।

इस सबको पढ़नेसे ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई अनुभवी चिकित्सक सलाह दे रहा हो।

हिन्दी जगत्से प्रार्थना—

स्वर्गीय भाई हेमचन्द्रविषयक संस्मरणोंको और अभी अप्रकाशित रचनाओंको पढ़ते हुए हमारे मनमें एक बात बराबर खटकती रही है वह यह कि यदि हिन्दीके प्रतिष्ठित पत्र-सम्पादकोंने हेमचन्द्रकी प्रतिभाका यथोचित सम्मान किया होता तो उनकी अनेक रचनाऐं उनके जीवन-कालमें ही जनताके सम्मुख आ जातीं। पर अब पछतानेसे क्या होता है। फिर भी हम इतना तो कर ही सकते हैं कि भाई हेमचन्द्रकी रचनाओंकी जब वे प्रकाशित हों, विस्तृत आलोचना करें और उनका यथेष्ट प्रचार भी। इस प्रकार उनकी स्वर्गीय आत्माको कुछ-न-कुछ सन्तोष होगा।

इसके साथ एक बात और भी होनी चाहिए यानी प्रतिभाशाली नव-युवकोंको समयपर यथोचित प्रोत्साहन प्रदान किया जाय।

आभार—

इस पुस्तकका सारा कार्य मान्य पं० बनारसीदास चतुर्वेदीकी प्रेरणा और सहयोगसे हुआ है। मैं उनका ऋणी हूँ।

विद्वान लेखकोंका भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस पुस्तकके लिए अपने मूल्यवान् संस्मरण भेजनेकी कृपा की।

'मधुकर'-मैनेजर भाई सीतारामजी पाटोदियाने संस्मरणोंको स्नेह और उत्साहके साथ टाइप किया। उनका मैं आभारी हूँ।

श्रद्धेय प्रेमीजीसे जब मेरी प्रथम भेट हुई थी, उसी समय उनकी आत्मीयताने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया था और ज्यों-ज्यों उनके निकट सम्पर्कमें आता गया हूँ, उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई है। निसंदेह वे एक महान् पुरुष हैं। उनकी कुछ सेवा करनेकी इच्छा बहुत दिनोंसे रही है, पर ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण अवसरकी स्वप्नमें भी आशंका न थी। कालकी गति बड़ी विचित्र है।

कुण्डेश्वर (टीकमगढ़),
शिवरात्रि, २२ फर० ४४

—यशपाल

लेख-सूची

स्व० हेमचन्द्र (सन् १९४०)

पुत्र और पत्नी—चि० विद्याधर (पस्सू), चि० यशोधर (जस्सू), चम्पाबाई

१

हेमचन्द्र मोदी

महात्मा भगवानदीनजी

बाल मोदी

सन् १९१० में इटावेमें कोई जलसा था। उसमें पं०......जी सकुटुम्ब आये हुए थे। नाथूरामजी प्रेमी भी बाल मोदीके साथ पंडितजीके पास ठहरे हुए थे। मैं ठहरा तो कहीं और था, लेकिन पंडितजी और प्रेमीजीसे मिलने यदा कदा उनके पास जाया करता था। पंडितजीकी धर्मपत्नीका स्वभाव उग्र माना जाता था। पंडितजीके शिष्य ही नहीं पंडितजीके बराबरके पंडित भी उनके स्वभावके शिकार होनेसे बचनेकी कोशिशमें रहा करते थे। प्रेमीजी भी उनसे बहुत डरते रहते थे। पंडितजी और प्रेमीजीमें बड़ी घनिष्ठता थी, पंडितजीकी धर्मपत्नी इसलिये अक्सर बाल-मोदीको गोद खिलाया करतीं थीं। उनका रहन-सहन इतना सादा था कि किसीको अचानक यह ज्ञान होनेमें संदेह हो सकता था कि वह पंडितजीकी धर्मपत्नी हैं। पर मैं यह पहलेहीसे जानता था। एक दिनका जिक्र है कि वह बाल-मोदीको गोद खिला रही थीं और मैं पहुँच गया। बाल-मोदी बड़े जोर-जोरसे रो रहा था। उसको चुप करनेके उनके प्रयत्न निष्फल जा रहे थे। उनकी गोदमें आनेसे पहले वह अपनी माताकी गोदमें था और माताकी गोदसे चुप करनेके लिये ही छीना गया था। बाल-मोदीकी माताको दो-चार फटकारें भी खानी पड़ी थीं। पर पंडितजीकी धर्मपत्नी भी बाल-मोदीको चुप नहीं कर पा रहीं थीं। मैंने जब यह देखा तो बड़े विश्वासके साथ उनसे उस बालकको ऐसे ही छीना जैसे उन्होंने मेरी अनुपस्थितिमें उसकी माँसे छीना होगा। ऐसा करनेमें मेरे मुँहसे कोई शब्द नहीं निकला मगर मेरी आकृति उन्हीं शब्दोंको, जो

उन्होंने बाल-मोदीकी मातासे छीनते समय कहे होंगे, विकीर्ण कर रही थी। वे बोलीं कुछ नहीं और चुपचाप जरा भी चेहरेपर शिकन लाये बिना अपने काममें लग गईं। बाल-मोदी मेरी गोदीमें आते ही चुप हो गया। मैं नहीं समझता कि ऐसा क्यों हुआ। हस्तिनापुरका ब्रह्मचर्य-आश्रम तब तक स्थापित नहीं हुआ था। उसमें काम करनेके बाद तो मुझमें छोटे बालकोंको मना लेनेकी कला बेशक बहुत बढ़ गई थी, पर इस समय मुझे इस विशेष कार्यमें क्यों सफलता हुई और क्यों मुझमें इतना उत्साह पैदा हुआ कि मैं उन पंडितजीकी धर्मपत्नीसे, जिनसे सब डरते थे इस तरह बालकको छीन लेनेकी हिम्मत कर सका, मैं नहीं जानता। सोचने पर इस परिणामके सिवाय और किसी परिणामपर मैं नहीं पहुँच पाता कि बाल-मोदीसे मेरा पूर्वजन्मका कोई सम्बन्ध रहा होगा। यह बात भले ही किसीको न जँचे, पर मुझे इसके अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं दिखाई देती। मुझे स्मरण है कि जैसे ही मैंने पंडितजीकी धर्मपत्नीसे बाल-मोदीको छीना था, वैसे ही प्रेमीजी अपनी धर्मपत्नीसहित मेरे पास दौड़े हुए आये और बोले, "आप बड़े भाग्यशाली हैं।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

बोले, "पंडितजीके ऊँचे-से-ऊँचे दर्जेके दोस्त भी ऐसा काम बिला फटकार खाये नहीं कर सकते। हम नहीं समझते कि आपका ख्याल पंडितजीकी धर्मपत्नीने इतना क्यों किया?"

मैं बोला, "शायद मेरी दाढ़ीका रौब इसका कारण रहा होगा।"

वे बोले, "आप जैसी लम्बी-भरी दाढ़ियाँ वे कितनी ही बार खिजा चुकी हैं।"

मैं बोला, "मेरा अजनबीपन शायद इसका कारण हो।"

बोले, "वे किसीको अजनबी मानती ही नहीं।"

अब मैं क्या कहता? चुप रह गया। मैं जब उनसे बातें कर रहा था, बाल-मोदी मेरी गोदीमें था और खूब हँस रहा था। उसकी माँने उसे एक बार लेनेका प्रयत्न भी किया पर वह उनकी गोदीमें न गया।

कुछ मिनटोंकी यह दोस्ती दूसरे दिन खतम हो गई और फिर मैंने बाल-मोदीको देखा—

३

युवा मोदी

सन्' २६ के जूनके महीनेमें युवा मोदीसे फिर परिचय हुआ, बम्बईमें एक योगीराजके यहाँ। वे योगीराज सब लोगोंको योग-क्रियाओंका शिक्षण देते थे। वह भी इसी कामके लिये उनके पास गये थे। छुटपनके कुछ मिनटोंके परिचयके बाद युवा मोदी मुझे पहचान तो क्या सकते थे, परन्तु अपने पिताजीके बताये-समझाये चेहरे-मोहरेके अनुसार उन्हें मुझे पहचाननेमें कोई दिक्कत न हुई और मुझसे ऐसे ही मिले, मानो मैं उनका पूर्व परिचित हूँ। मैं उन्हें नहीं पहचान सका, पर अपनी आदतके अनुसार प्रेमसे मिलनेवालोंके साथ मैं भी उतने ही प्रेमसे मिलने लगता हूँ, पर इस सब दिखावेमें कहीं-न-कहींसे भीतरकी अजानकारी झाँक बैठती है और वैसा ही इस अवसरपर हुआ। युवा मोदी ताड़ गये और बोले, "मैं प्रेमीजीका पुत्र हूँ।" अब उमड़ा हृदय और लगा लिया मैंने उन्हें गले। अब कितना प्रेम उमड़ा और क्यों उमड़ा, इसका जवाब भी मेरे पास वही है, जो पहले दे चुका हूँ।

बाल-मोदी युवा मोदी हो गया था। उसके गुण जो उस समय चर्मचक्षु नहीं देख सकते थे, आज वे उनके सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। युवा मोदी योगीराज बननेमें लगे हुए थे। योगकी कठिन-से-कठिन क्रियाओंको उन्होंने सिद्ध कर लिया था और वज्रोलीकी धुनमें थे। वज्रोली हठयोगकी बड़ी कठिन क्रिया है, पर ब्रह्मचर्यकी है वह कुंजी। मैंने उन्हें इस कामसे रोका, पर उन्होंने उसके प्रतिकूल जो दलीलें दीं उनका मैं सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। और फिर मैंने उनसे उन क्रियाओंको छोड़नेकी बात कभी नहीं कही। मैं तीस दिन बंबई रहा और रोज ही उन योगीराजके यहाँ उनसे मिलता-जुलता था। मुझे वह बड़े होनहार जँचे। मुझे उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हो गई थीं। धुनके पक्के बहुत कम मिलते हैं और आजकलके जवान जवानीमें ब्रह्मचर्यका साधन करना तो एक ओर ब्रह्मचर्यकी बात सुननेसे भी आनाकानी करते हैं, तिसपर वह जुट गये थे हठयोगकी क्रियाओंमें। यह ठीक है कि वह हठयोग सीख कर साधू नहीं बनना चाहते थे, बनना चाहते थे सच्चे गृहस्थ योगिराज। उनके आदर्श थे कृष्ण।

मैं नहीं जानता कि उन्होंने कब और क्यों इस योग-साधनको छोड़ दिया। संभव है कि योगीराजने ही कुछ बतानेमें आनाकानी की हो या उन्हें इस क्रियामें कहीं कोई निस्सारता जंच गई हो, यों तो वह छोड़नेवाले थे नहीं।

जून खत्म होने पर मैं बंबईसे चल दिया और फिर सन् ४० में उन्हें देखा—

पिता मोदी

अब मोदी बापकी गद्दी सँभालने योग्य हो चुके थे और एक प्रकारसे सँभाल ही रहे थे। लिखनेकी कलाका कुछ मसाला बापसे उड़ा चुके थे और बहुत कुछ अपने आप भी कमा लिया था। इस धुनमें वे वैसे ही साबित हुए, जैसे हठयोगकी धुनमें। गृहस्थीका काम वे करते थे, पर उसमें उन्हें इतना लगाव नहीं था जितना इस उमरके और लोगोंका होता है। पर इस उम्रके और लोगोंको जितना गृहस्थीके प्रति कर्तव्य-पालन आता है उनसे वह कहीं ज्यादा कर्तव्यशील थे और यहाँ उनका आदर्श थे जनक।

अपने पीछे वह अपनी पत्नी और दो बच्चे छोड़ गये हैं। यदि उनकी पत्नी चम्पा (जिससे मेरा खूब परिचय है और जो मुझे पितातुल्य समझती है) अपने पतिकी आत्माको ठीक-ठीक पहचान गई थी तब तो मुझे कुछ कहना नहीं है, लेकिन अगर नहीं पहचान पाई थी तो मेरी इन पंक्तियोंके द्वारा पहचाननेकी कोशिश करे और उन्हें जीवित जैसा समझते हुए अपने कर्तव्यमें लगी रहकर समाजको उन जैसे एक नहीं, दो दे जाय।

जहाँ तक मैं समझता हूँ हेमको संसारको छोड़नेकी जल्दी नहीं थी और ऐसे आदमीको जल्दी हो भी नहीं सकती। मैं तो यही कहूँगा कि ऐसी आत्माकी कहीं और ज्यादा जरूरत रही होगी। इस लिये वह वहीं चला गया। इसमें किसीको दुख माननेकी जरूरत नहीं है, पर लोग तो उनका-सा दिल नहीं रखते हैं। वे अपना दिल रखते हैं और उसी दिलसे उस आत्माका श्राद्ध करते हैं। कोई आँखोंसे मोती बहाकर, कोई उँगलियोंसे कलम चलाकर, कोई जिह्वासे शब्द निकालकर, कोई हाथके मैल धनका सदुपयोग करके। मोदी अब हममें नहीं हैं। किन्हीं औरके बीचमें होंगे, पर इससे क्या? हमारे बीचमें तो नहीं हैं।

" हमारे बीचमें नहीं है " जो इस बातके पक्षपाती हैं, वे उनका श्राद्ध करें। " हैं, कहीं हैं, " जो इस बातके पक्षपाती हैं, वे प्रशान्त बनें, उनकी आत्माको आगे बढ़नेकी इच्छा करते हुए उनकी याद करें।

दिल्ली।]

२

पुत्र-रत्न

पं० सुखलालजी

सुयोग्य माता पिताके पुत्रोंमें 'सु' कम होते हैं, 'कु' अधिक। भाई हेमचन्द्र उन विरल 'सु'में था। प्रेमीजीके साहित्य-प्रेम और ऐतिहासिक लेखोंके कारण प्रारंभमें उन्हें उनकी पुस्तकोंसे ही जानता था। कल्पना इतनी ही थी कि प्रेमीजीकी ऐतिहासिक दृष्टि सम्प्रदाय-कलुषित नहीं है। उनका साहित्यानुराग एक-देशीय नहीं है और खासकर उनका हिन्दी-भाषाधिकार अनुकरणीय है। पर जबसे उनका प्रत्यक्ष परिचय (करीब २६ वर्ष पहले) हुआ तबसे उनके कई गुण असाधारण प्रतीत हुए। उनकी पत्नीकी भी कई विशेषताएँ देखीं, जो पर्दानशीन प्रथावाले देशोंकी अपढ़ या कमपढ़ स्त्रियोंमें सुलभ नहीं। प्रेमीजी और उनकी पत्नी रमा बहनका एक सामान्य गुण तो यह था कि वे दोनों बिलकुल सरल चित्त और सादगी-पसन्द थे। हेमचन्द्र ज्यों-ज्यों उम्रमें बढ़ता गया, उससे मेरा परिचय भी उतना ही अधिक बढ़ता गया। यहाँतक कि बम्बई जानेपर जिनसे बिना मिले मैं सन्तुष्ट नहीं होता था, उनमेंसे एक हेमचन्द्र भी था। उसके प्रति मेरा आकर्षण मात्र गुणजन्य था। मैं उसे 'आचार्य हेमचन्द्र' कहता था और विचारपूर्वक यह भी कहता था कि हेमचन्द्र माता-पिता दोनोंके सद्गुणोंकी विकसित मूर्ति तो है ही, पर उससे कुछ अधिक भी है। उसकी सरलता अन्यत्र विरल है। उसके वास्ते कोई बात छिपानेकी नहीं थी और न अन्यथा कहनेकी। कभी प्रेमीजी सरल भावसे कोई बात कहते थे तो हेमचन्द्र उसका भाष्य यह कहकर प्रायः कर देता था कि दादा, इतना और कहो। एक बार मैंने कहा, "हेमचन्द्र, तुम्हारे अभी तो एक ही पुत्र है। दूसरी संतान हुई तो बम्बई जैसे शहरमें कितनी जवाबदेही तुम दोनोंकी बढ़ जायगी, जानते हो?" उसने कहा, "सच बात यह है पंडितजी, कि हम दोनों दिन गिननेमें भूल गये। अन्यथा असंयमपर अधिकार ही करते। आपने जो बात कही है, वह मेरे भी ध्यानमें है।" मैंने बात मजाकमें कही थी, पर उसका जवाब सच्चा और सीधा था।

वह इतना अधिक विश्वासी था कि दूसरोंकी बातको कभी अविश्वसनीय माननेको तब तक तैयार नहीं होता था जब तक उसे वैसा सबूत नहीं मिले। अनेक बार मैंने कहा, "हेमचन्द्र, दादा अपनी सम्पत्ति तुम्हें न देकर तुम्हारे पुत्रोंके नाम करेंगे, क्योंकि तुम ढंगसे कमाते नहीं हो और खर्चीले भी अधिक हो।" वह ऐसे कथनको सत्य मानकर ही आगे चर्चा चलाता था, जो बहुत मनोरंजक होती थी। उसकी प्रकृति सदा प्रसन्न थी। वह हँसना ही जानता था और कहता था, "फजूल उदास होनेसे क्या फायदा!"

उसका अध्ययन बहुमुखी था और वह था प्रयोग-वीर। उसने योगकी प्रक्रियाका भी अभ्यास किया और वैद्यक तथा नवीन वैज्ञानिक चिकित्साओंका भी। अस्पष्ट स्मरण है कि उसने इस विषयपर अपना कुछ लिखा भी सुनाया था, जो बहुश्रुतत्वका सूचक था। वह अनुवादक और लेखक तो था ही। प्रेमीजी उसकी कृतियोंमें त्रुटि निकालते तब अकसर वह कहता कि अच्छा, पंडितजीकी सम्मति लेंगे। मेरी राय अपने अनुकूल पाकर वह प्रेमीजीको परास्त करता। तब मैं कहता कि 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' और यह भी कहता कि पिता भारवि कविमें त्रुटि ही देखता था, फिर भी वह महाकवि ही था।

हेमचन्द्रकी जैसी सेवावृत्ति और उदारता मैंने बहुत कममें देखी है। प्रेमीजी इतने बीमार कि उपचार और खर्च करते-करते निराश हो गये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि हेमचन्द्र मेरे वास्ते अन्धाधुन्ध खर्च करता है। मैं बचूँगा नहीं और वह आगे क्या करेगा? हेमचन्द्रने मुझसे चौपाटीपर अकेलेमें कहा, "पंडितजी, यदि मैं बिलकुल अकिंचन हो जाऊँगा तो भी दादाको बचानेके लिये कुछ भी कोर-कसर न रक्खूँगा। फिर उसने एक दिनका किस्सा सुनाया जब कि अधिकाधिक फी वाले डाक्टरोंको और उनके कम्पाउन्डरोंको घर पर बुलाकर एक दिनमें उसने सौसे अधिक खर्च कर डाले थे। अनेक सहस्रका व्यय तो किया, पर जब प्रेमीजी बच गये तब मुझसे बोला, "देखिए न मेरा विश्वास। मैं डाक्टरोंको आधी रात मनमाँगी फीस देकर न लाता और दादाका कहना मानता तो क्या होता?"

वह अपने आप भी खान-पान और ओषधियोंके विविध प्रयोग किया करता था। कभी केले और दूध पर ही महीनों बिताता, कभी और किसी चीजपर। उसे पुस्तक पढ़कर विश्वास हो कि अमुक वस्तु लाभदायक है तो

फिर हज़ार मनाही करने पर भी वह उसका प्रयोग बिना किये न मानता था। अच्छी-से-अच्छी दवाइयोंका चुनाव, संग्रह और उपयोग भी करता था, पर विशेषता यह कि यदि किसीको जरूरत हुई तो वह अपनी कीमती-से-कीमती चीज भी देखते-देखते दे डालता था।

वह भोजनमें खूब सुरुचिपूर्ण सामग्री तैयार करता था और जो अतिथि आते थे उनका भी सत्कार उसी तरह करता था। प्रेमीजीकी दुकान ही नहीं, घर भी अतिथि और विद्वानोंका धाम बना रहता था। कोई विद्वान् आया, लेखक आया, वक्ता आया, कवि आया कि चलो प्रेमीजीके घर। उनका घर तो था छोटा, पर दिल सबका बड़ा था। अतएव जो आए, निसंकोच उनके यहाँ ठहर गये और जब देखो तब पिता-पुत्र दोनों ही आगुन्तकोंके साथ विविध विषयक चर्चामें लीन। आगन्तुक वहाँ आतिथ्य ही नहीं पाते थे, बल्कि अनेक नई बातें भी उन्हें मालूम हो जाती थीं। एक ओर प्रेमीजीकी बहुश्रुतता और परिपक्वता थी तो दूसरी ओर हेमचन्द्रकी निराली और नवीन दृष्टि। मैंने अनेक हिन्दीके प्रसिद्ध कवि और लेखकोंका परिचय प्रेमीजीके घर ही प्राप्त किया। अतिथिका सारा भार उठानेका श्रेय हेमचन्द्र और उसकी पत्नीको था। मैंने कई बार कहा, "मैं तुम्हारे घर आता हूँ तो मेरे अनेक मित्र भी आते हैं, जिससे तुम्हारा आतिथ्य-भार बढ़ता है।" इस पर हेम सदा हँसकर यही कहता, "इसमें भार क्या? दूध मिल ही जाता है, आम-मोसंबी और नीबूका मैं परीक्षक हूँ। छाछमें तो धरा ही क्या है? और चाय सीधी सादी वस्तु है।"

वह नए-नए डाक्टरों और चिकित्सकोंका भी ध्यान रखता था। एक बार मुझसे बोला कि एक असाधारण जर्मन यहूदी डाक्टर आया है, जो चर्मरोगका प्रोफेसर है। मुझे वह उनके पास कई बार ले गया। कोई उससे कुछ काम लेना चाहता हो और उसने हिचकिचाहट दिखाई हो, ऐसा मैं नहीं जानता।

वह स्वयं बड़ा कुतूहली और विनोदी था। एक बार ज़ोन टिकिट लेकर कामसे जोधपुरको रवाना हुआ। अहमदाबादमें मुझसे मिला और पुनः आनेका कहकर चला गया, लेकिन जोधपुर न ठहर कर मिठाई लेकर आबू गया तो वर्षा अधिक। वहाँसे तुरन्त लौटकर अहमदाबाद आया। किस्सा सुनाया। मैंने कहा, "यहाँ रहोगे तब तक तो मिठाई बिगड़ जायगी। चम्पा और बच्चे खाने भी न पायेंगे।" वह चटसे उसी दिन बम्बई गया और

मिठाई देकर फिर अहमदाबाद दूसरे ही रोज लौट आया। बोला, " देखिए, अहमदाबादका आतिथ्य भी न छूटा और घरवाले भी मिठाई खाते होंगे।"

मैंने कहा, " अभी तो पन्द्रह रोज़ टिकिटके बाकी हैं। रोज यहाँ मिठाई खाओ और एक पच्चीस सेरका पुस्तकोंका बण्डल लेकर बंबई रख आओ। हमारा पैसा बच जायगा, तुम्हें रोज नई-नई स्वादपूर्ण चीजें मिलेंगी। इस तरह समय भी बीत जायगा और ज़ोन टिकिट भी सफल होगा।" मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही जब उसने मेरी विनोदपूर्ण बातको भी कार्यमें परिणत करनेकी सच्ची तत्परता दिखलाई।

हेमचन्द्र फकीर-प्रकृतिका था। मुझसे कहता, " दादा फजूल ही फिक्र करते हैं। हम अपना काम करते जायँ, फिर चिन्ता क्यों ? "

उसमें मतान्धताकी तो गन्ध ही न थी। उसे नया-नया पढ़ना, नए-नए विषयोंपर लिखना और उनपर सोचना भाता था। प्रेमीजी झुँझलाते थे कि यह किसी विषयमें पारगामी नहीं बनता तो वह कहता कि आप पंडितजीसे तो पूछिए कि अध्ययन एक-देशीय ठीक है कि सर्वदेशीय ?

इतने छोटेसे घर और दायरेमें पलकर भी उसने जो बहुमुखी विकास किया था और जो अनेकोंका चित्त जीत लेनेका असाधारणत्व पाया था, वह सुयोग्य माता-पिताओंकी सब सन्तानोंके लिये सुलभ नहीं। इसीसे मैंने हेमचन्द्रको पुत्र नहीं, पर ' पुत्र-रत्न ' कहा है।

जब उसके निधनका समाचार मिला तो आघातके साथ हृदयसे यही उद्गार निकला कि असाधारण गुणवाले होनहार व्यक्तियोंमेंसे बहुत ही कम चिरजीवी होते हैं। हेमचन्द्रकी प्रकृतिमें धुन थी जिसे मैं एक गुण मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि प्रकृतिमें धुन न हो तो कोई अपने सद्गुणोंका विकास नहीं कर सकता। हेमचन्द्र आज इस लोकमें नहीं है, पर उसके स्थूल और सूक्ष्म अनेक प्रतीक विद्यमान् हैं।

बनारस]

३

स्वर्गीय हेमचन्द्रजी

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शास्त्राचार्य

हेमचन्द्रजीके साथ मुझे सिर्फ दो दिन रहनेका अवसर मिला था। जब वे शान्तिनिकेतन आए थे तो मैं कलकत्ते गया था। लौटनेपर मालूम हुआ कि वे गेस्ट-हाउसमें ठहरे हैं। मैं उसी समय उनके पास पहुँचा और 'हिन्दी-भवन' ले आया। मुझे ऐसा लगा था कि मेरी अनुपस्थितिमें उन्हें कष्ट हुआ होगा और आश्रम देखनेमें असुविधा उठानी पड़ी होगी। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने उनसे पहली बार जो उत्तर पाया उसने मुझे चक्करमें डाल दिया।

मैंने पूछा, "कल आपने आश्रम घूम-फिर कर कुछ देखा?"

उन्होंने बिना भूमिकाके उत्तर दिया, "आश्रम क्या देखना है? मैं आश्रम देखने नहीं आया।"

इस विषयमें कुछ और कहे बिना ही उन्होंने उस नवीन पुस्तकके बारेमें अपनी राय प्रकट की, जिसे वे कलसे ही पढ़ रहे थे और आज प्रायः समाप्त कर चुके थे। मैं चुपचाप सुन रहा था और वे उस पुस्तकके वक्तव्यकी आलोचना कर रहे थे। मैं थोड़ी देरमें ऊब गया, परन्तु वे उसकी ही बात करते रहे। मैंने हँसकर कहा, "आपको शायद यह भ्रम है कि मैं पुस्तकी चर्चामें ही दिन-रात लगा रहता हूँ, पर मुझे पुस्तकी चर्चामें रस कम मिला करता है, आइए, कुछ गप्प मारें।" परन्तु हेमचन्द्रको अपने विषयसे फुरसत नहीं थी, गेस्ट-हाउसका भृत्य उनका बिस्तर सँभालकर 'हिन्दी-भवन' की ओर चला और हम दोनों उसी पुस्तकके विषयमें उलझे हुए उसके पीछे हो लिये। आध घंटेके भीतर मैंने आश्चर्यके साथ अनुभव किया कि किसी पुस्तकको यह व्यक्ति कितने अभिनिवेशके साथ पढ़ता है, मैंने यह भी लक्ष्य किया कि वे पुस्तकसे अभिभूत नहीं हैं। उसकी अगल-बगलकी युक्तियोंको देखते रहनेके अभ्यस्त हैं, परन्तु ठीक उसके विरुद्धसे आनेवाली युक्तिकी ओरसे बेखबर हैं। मैंने उनको उस पुस्तकके विषयसे बाहर खींच लानेके लिये ही ठीक उल्टी दिशासे आक्रमण किया। मैंने हँसते हुए कहा, "भाई, गलत जगहसे शुरू

किए हुए, गलत दिशाको जानेवाले और गलत ढँगसे समाप्त होनेवाले इन विषयोंको इतना तूल क्यों देते हो ? इसके लिये जितनी भी सूक्ष्म युक्तियाँ आप ढूँढ़ते रहें, यह गलत ही रहेगा। ऋण संख्याको हजारों-लाखों धन-संख्यासे गुणा करते रहें, फल ऋण ही होगा।" और फिर मैं जोरसे हँस पड़ा। मेरा उद्देश्य शास्त्रार्थ करना नहीं था। केवल पुस्तकी तर्कसे उन्हें दूर हटा लाना ही अभिप्रेत था। वे जरूर कुछ चकराये, थोड़ी देर तक चुप रहकर बोले, "सही आपके मतसे क्या है ?" मैंने रस लेते हुए कहा, "यही भक्ति, प्रेम, पूजा।" मेरा उद्देश्य सिद्ध हुआ, हेमचन्द्रजीके सिरसे उस पुस्तकका नशा उतरने लगा। अत्यन्त बालकोचित सरलताके साथ उन्होंने स्वीकार किया कि भक्ति बड़ी चीज है। फिर पता नहीं, कैसे होमियोपैथी-चिकित्साका प्रसंग उठ गया और उन्होंने बताया कि उसपर उनका विश्वास है और कई गुरुजनोंके विरोध होते हुए भी वे अमुक-अमुक विषयमें दृढ़ताके साथ विश्वास रखते हैं। घंटे भर तक मैं उनके साथ इन्हीं बातोंपर विचार करता रहा। उनका अध्ययन विशाल था और यद्यपि संग्रहीत विचार उनके मस्तिष्कमें अभी तक सामञ्जस्य नहीं बना सके थे, पर उनके अपने हो चुके थे। मुझे ठीक याद नहीं आ रहा है कि किस एक बातपर उन्होंने दो परस्पर विरोधी बातें कहीं और याद दिलाने पर सरलता-पूर्वक मान गए कि उन्होंने दोनों तरहकी बातें पढ़ी हैं और दोनों ही उनके विचारोंमें दाखिल हो चुकी हैं।

हेमचन्द्रका यह प्रथम परिचय बिलकुल अप्रत्याशित ढंगसे हुआ। वे आश्रम देखने नहीं आए थे, शान्तिनिकेतनमें चलनेवाली शिक्षापद्धतिके गुण-दोषोंकी परखको उत्सुक नहीं थे, यहाँके उन विद्वानोंसे मिलनेकी भी उन्हें कोई बेचैनी नहीं थी, जो बाहर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। मैं हैरान था कि वे फिर किस उद्देश्यसे इतनी दूर आये थे। असलमें उनमें एक अजीब भोलापन था। वे जब शान्तिनिकेतनके लिये चल पड़े तो निश्चय ही कोई-न-कोई उत्सुकता उनके चित्तमें थी, पर जब नई पुस्तकमें उलझ गये तो वह उत्सुकता गौण हो गई और पुस्तकगत उत्सुकता प्रधान हो गई। मुझे ऐसा लगा कि पढ़नेमें उनका नैसर्गिक अनुराग था। वे किसी पुस्तकको उसकी प्रत्येक विशेषताके साथ पढ़ लेते थे। यहाँतक कि उन्हें याद था कि किस प्रसिद्ध पुस्तकमालाकी पुस्तकोंपर सीरीज़की पुस्तकोंकी संख्या लिखी रहती है और किसपर नहीं लिखी रहती। कौन विलायती प्रकाशक पुस्तकका दाम

किस पृष्ठपर छापता है और जब नहीं छापता तो उसका उद्देश्य क्या होता है। उन्होंने पुस्तकोंके अन्य पहलुओंपर भी विचार किया था। ओवर प्रोडक्शन या अतिरिक्त प्रकाशनकी फिलासफीकी ज्ञान-क्षेत्रमें जो प्रतिक्रिया हुई है, उससे वे पूर्ण-सचेत थे और इस विषयपर लगभग आध घंटे तक बात करते रहे। अपना मत उन्होंने स्पष्ट नहीं बताया, पर मैं अगर अधिक छेड़ता तो मेरा अनुमान है कि वे प्रकाशनके नियंत्रणपर आसानीसे पहुँच जाते, क्योंकि उनके तर्कोंकी स्वाभाविक परिणति उधर ही जा रही थी। मुझे उनकी बातोंमें बादमें बड़ा रस आने लगा। उनके दिमागमें कई योजनाएँ थीं। दुर्भाग्यवश वे कार्यरूपमें परिणत होनेसे रह गईं।

मैं कह चुका हूँ कि उनसे मेरा परिचय बहुत थोड़ा ही हुआ था। उतने परिचयको मैं व्यक्तित्वके अध्ययनके लिये पर्याप्त नहीं समझता। फिर हेमचन्द्रका व्यक्तित्व तो अभी कलिकाकी अवस्थामें ही था। फिर भी मुझे लगा कि इस आदमीमें एक लापरवाहीकी मस्ती है।

'विशाल-भारत'में मेरी एक पुस्तककी आलोचना निकली थी। आलोचक महाशयने पुस्तकके विषयकी कोई आलोचना न करके भाषा और शैलीकी ही निन्दा या प्रशंसा की थी। मुझे इस बातका खेद जरूर था, क्योंकि आलोचकके पांडित्यपर मेरा विश्वास था और मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने मेरी बातोंको गंभीरतापूर्वक विचारने योग्य नहीं समझा है, केवल ऊपरी बातोंकी चर्चा करके छुट्टी ले ली है। मैंने हेमचन्द्रजीसे यह बात कही; उन्होंने आलोचना देखी नहीं थी। उनको ऐसा लगा कि पुस्तककी कठोर निंदा हुई है और मुझे इसी बातकी चिन्ता है। बोले, "परवाह क्या है! यही तो ठीक है। होने दीजिये न निंदात्मक आलोचना। थोड़ी गर्मागर्म चर्चा होनी ही चाहिये।" मैंने उन्हें फिरसे अपनी बात समझाई। कहा कि मुझे इस बातका दुख नहीं है कि पुस्तककी निंदा हुई। वह तो कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण बात नहीं, पर विद्वान् लोगोंकी हिन्दीके प्रति उपेक्षाभावका दुख मुझे जरूर है। वे विषयकी गहराईमें जो नहीं उतरते, वह उपेक्षाके कारण ही। गहराईमें उतरकर कोई मेरी पुस्तककी धज्जियाँ उड़ा दे तो भी मैं दुःखित नहीं हूँगा। पर उपेक्षा तो समूची हिन्दी-भाषी जनताके कल्याणकी बाधक है। हेमचन्द्रजीने मेरी बात ध्यानसे सुनी। और जो जवाब दिया वह उनके साहित्यिक व्यक्तित्वका सुन्दर परिचय है। "हम

लोग यदि गंभीर और शक्तिशाली साहित्य लिखेंगे और फिर भी लोग उपेक्षा करेंगे तो उपेक्षा करनेवाले ही उपेक्षित हो जायँगे।" मुझे यह वाक्य शायद इसलिये ज्यादा पसन्द आया कि मैं स्वयं भी इसी विचारसे सहमत हूँ। जो लोग प्रवर्द्धमान हिन्दी-साहित्यकी उपेक्षा कर रहे हैं वे बुरी तरह उपेक्षित होंगे। हिन्दीका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। इस भाषाने जो शक्ति अर्जन की है वह किसी राजशक्तिकी उँगली पकड़कर नहीं। अपने आपकी शक्तिसे निरन्तर शक्तिशाली बननेवाली इस भाषाका आश्रय लिये बिना अब कोई भी हिन्दुस्तानी अपने ज्ञान, कर्म या सेवाको देशव्यापी नहीं बना सकता। हेमचन्द्रने इस सत्यको पाया था। मैं सोचता हूँ कि इतने बड़े सत्यका साक्षात्कार अब भी बड़े-बड़े विद्वान् कहे जानेवाले लोग क्यों नहीं कर पाते?

हेमचन्द्र वह फूल थे जो कि खिलनेके पहले ही मुरझा गया। हम उनकी प्रतिभाका लाभ नहीं उठा सके, पर उनकी चिन्ता व्यर्थ नहीं जायगी। कविने गाया है—

"जीवनमें जो पूजाएँ समाप्त नहीं हो सकीं, मैं ठीक जानता हूँ, वे खो नहीं गई हैं और जो फूल खिलनेके पहले ही झड़ गया, जो नदी मरुभूमिमें भटक गई, मैं ठीक जानता हूँ, वे भी खो नहीं गये है। आज भी जीवनमें जो कुछ पीछे रह गया है, मैं ठीक जानता हूँ, वह मिथ्या नहीं हुआ है। मेरा जो कुछ अनागत है, वह सब तुम्हारी वीणाके तारोंमें बज रहा है, मैं जानता हूँ, वह भी खो नहीं गया है:—

जीवने यत पूजा होलो ना सारा
जानि हे जानि ताओ हय नि हारा।
ये फूल ना फूटिते झरेछे धरणीते
ये नदी मरुपथे हाराल धारा
जानि हे जानि ताओ हय नि हारा।
जीवने आजो याहा रयेछे पिछे
जानि हे जानि ताओ हय नि मिछे
तोमार बीना तारे बाजिछे तारा
जानि हे जानि ताओ हय नि हारा।

(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

शान्ति-निकेतन]

४

स्वर्गीय हेम

नाथूराम प्रेमी

२२ अक्टूबर १९३२ को जब हेमकी माताका स्वर्गवास हुआ, तब ऐसा मालूम हुआ कि जल्दी ही मेरी भी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी। उस असह्य शोकके आवेगको मैं न सँभाल सका और शय्यागत हो गया। किसीको भी आशा न थी कि मैं बच जाऊँगा, परन्तु उस समय हेमने ही न मरने दिया और लगभग एक वर्ष तक अक्लान्त सेवा-शुश्रूषा करके और रुपयोंको पानीकी तरह बहाकर मुझे खड़ा कर दिया। अब सोचता हूँ कि क्या यही दिन देखनेके लिए विधाताने मुझे जीवित रक्खा था? जिसने मुझे मरने न दिया, उसीका मरण अपने सामने देखना मेरे भाग्यमें लिख रक्खा था?

स्व० हेम हस्त-सामुद्रिक-शास्त्रका पंडित था। मेरी हस्त-रेखाएँ देखकर अक्सर कहा करता था कि दादा, तुम्हारी सब अलर्फें कट गई हैं। अब तुम नहीं मर सकते और न मैं तुम्हें मरने दूँगा। मैं हँसकर कह देता, "हाँ तू क्यों मरने देगा? तुझे तो अपनी दूकानमें जोतनेके लिये एक बूढ़ा बैल चाहिए न!"

वह व्यवसायी बननेके लिए पैदा नहीं हुआ था। व्यवसाय-बुद्धि उसमें नहीं थी। वह सदा ही अपने अध्ययन और मननमें मस्त रहा, दूकानदारीकी तरफ़ उसका लक्ष्य न देखकर मैं जब कभी झुँझला उठता और उसे सख्त-सुस्त कह बैठता तब वह उत्तर देता, "दादा, मुझे तुम्हारी दूकान नहीं चाहिए। मेरी जरूरतें ही क्या हैं? उनको पूरा करने लायक भी क्या मैं न कमा सकूँगा? तुम यह जो रात-दिन परिश्रम करते हो, सो मेरे लिए नहीं, अपने पोतोंके लिए करते हो। मैं कहाँ चाहता हूँ कि तुम इतना परिश्रम करो?"

हेमका जन्म अगहन बदी ४ बुधवार सं० १९६६ (सन् १९०९) को देवरी (सागर) में हुआ था। अपनी माताका वह इकलौता बेटा था।

उसका पालन-पोषण बम्बईमें हुआ और यहींपर शिक्षा पाई। अठारह वर्षकी उम्रमें १९२७ में बम्बईके मारवाड़ी विद्यालय (हाई स्कूल)से उसने मैट्रिक पास किया और फिर सेंट ज़ेवियर कालेजमें पढ़ना शुरू किया। कॉलेजकी पहली ही वार्षिक परीक्षामें गणितमें कमज़ोर होनेसे वह फ़ेल हो गया। चूँ कि इसके पहले वह कभी फ़ेल नहीं हुआ था, सदा अच्छे नम्बरोंमें पास होता रहा था, इसलिए फेल होनेसे उसे चोट पहुँची और तब उसने परीक्षाओंके लिए पढ़ना छोड़ दिया। उसकी इच्छाके विरुद्ध मैंने भी कोई प्रयत्न नहीं किया।

उसकी सारी शिक्षा बम्बईमें ही हुई। बीचमें सन् १९२४ में कुछ महीनों तक वह सागरके गवर्नमेण्ट हाई स्कूलमें भी पढ़ा था, परन्तु वहाँ उसका स्वास्थ्य खराब हो गया और तब लाचार होकर उसे बम्बई बुला लेना पड़ा।

मैं स्वयं शिक्षक रह चुका था। हर्बर्ट स्पेन्सर का 'शिक्षा-शास्त्र,' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरके शिक्षा-संबंधी निबन्ध और दूसरे शिक्षा-ग्रन्थोंको भी मैंने पढ़ा था। इसलिए मैं हेमकी शिक्षाके बारेमें बहुत ही सजग रहा। अवकाशकी कमीसे यद्यपि मैं स्वयं तो उसे न पढ़ा सकता था, परन्तु जो कुछ समय मिलता था उसमें उसकी जिज्ञासा-वृत्तिको तृप्त करनेका प्रयत्न करता था। सन् १९१२में जब मैंने जॉन स्टुअर्ट मिलकी आत्म-कथाका अनुवाद किया, तब मिलके पिताका यह विचार मेरे हृदयमें दृढ़ताके साथ बैठ गया कि बच्चोंके दिमागमें परम्परासे चले आये हुए अनिर्णीत या अर्ध-सत्य विचार न ठूँस देना चाहिए और उन्हें स्वयं विचारक बननेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। उन दिनों मैं जैन साहित्यका संपादन-प्रकाशन करता था और जैन-समाजके एक पत्रका सम्पादक भी था। फिर भी मैंने हेमको जैन-पाठशालामें पढ़ने नहीं भेजा और न उसे जैन-धर्मकी शिक्षा देनेका ही प्रयत्न किया।

मेरा मन इस विचारको कभी अभ्रान्त सत्य माननेके लिए तैयार नहीं हुआ कि केवल धार्मिक शिक्षा दे देनेसे ही लड़के सच्चरित्र बन जाते हैं। उन दिनों लोगोंको पूरा विश्वास था और अब भी कम नहीं हुआ है कि अँग्रेजी-शिक्षाके साथ धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध न हो तो लड़के अवश्य बिगड़ जाते हैं, परन्तु मैंने इसे नहीं माना और इसके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप भी नहीं करना पड़ा। हेमका चरित्र उसके साथके जैनधर्मकी शिक्षा पाये हुए अनेक लड़कोंसे बहुत ऊँचा और पवित्र रहा और वयस्क होनेपर जैन-दर्शनका ज्ञान तो अपने

आप ही उसने यथेष्ट प्राप्त कर लिया था। हाँ, साम्प्रदायिक कट्टरतासे वह अवश्य दूर रहा।

लड़के जैसे लोगोंके बीच रहते हैं और जैसे विचार-वातावरणमें पलते हैं, वैसे ही बनते हैं। सौभाग्यसे हेमको सच्चरित्र और सद्विचारशील लोगोंके ही बीच रहना पड़ा। वह कभी घरसे दूर बोर्डिंग हाउसोंमें भी नहीं रहा और इन्हीं परिस्थितियोंमें उसके चरित्रका निर्माण हुआ।

इससे एक कमी उसमें अवश्य रह गई। वह चुस्त चालाक और व्यवहार-कुशल न बन सका। वह बहुत ही भोला, सीधा और अन्तर-बाह्य एक-सा रहा।

उसकी सती-साध्वी माताका ही उसके चरित्रपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा क्योंकि वही उसके लिए सबसे अधिक निकटकी थी और अकेला पुत्र होनेसे उसका भी सारा ध्यान उसीपर केन्द्रित रहता था।

एक बार हेमने अपनी माँसे पड़ौसकी एक स्त्रीकी ऐसी कुचेष्टाकी बात कही, जिसकी किसीको कल्पना भी न हो सकती थी। दूसरोंने उसे सही न माना, परन्तु माँने दृढ़ताके साथ कहा, " मेरा हेम कभी झूठ नहीं बोलता। " और अन्तमें वह बात सत्य निकली। झूठ बोलना वह सीखा ही न था। अप्रिय सत्य बोलनेमें भी उसे कभी हिचक न हुई। कभी कभी तो उसकी सच्चाई मुझे अत्यन्त संकटमें डाल देती थी।

कालेजमें वह एक ही साल पढ़ा था, परन्तु स्वतन्त्र अध्ययनसे अँग्रेज़ीकी योग्यता उसने खूब बढ़ा ली थी। संस्कृतको उसने दूसरी भाषाके तौरपर पढ़ा था, परन्तु संस्कृत-ग्रन्थोंको समझनेमें उसे कठिनाई नहीं होती थी। मराठी और गुजरातीके सिवाय उसने बंगला भी सीख ली थी। उसके अध्ययनका क्षेत्र विशाल था। सबसे पहले उसे योगका शौक लगा। योग-विषयक जितने भी ग्रन्थ उसे मिल सके, उन्हें पढ़ा और एक योगाश्रममें योगकी क्रियाओंको भी सीखा। योगके प्रायः सभी आसन उसे सिद्ध हो गये थे और नेती-धोती आदि क्रियाएँ भी करने लगा था। अपने शरीर पर उसने इतना काबू प्राप्त कर लिया था कि अपनी इच्छा-शक्तिसे वह कानकी लौंडी हिला सकता था और किसी अंग-पर बैठी हुई मक्खीको वह स्थान हिलाकर उड़ा देता था! योगके अध्ययनके सिलसिलेमें वेदों, उपनिषदों, जैन सम्प्रदायके योग और तंत्र-विषयक ग्रन्थोंको भी उसने पढ़ा और पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारके आग्रहसे ' अनेकान्त ' के

लिए लगभग पचास-साठ पृष्ठकी एक लेख-माला भी लिखी, जिसके दो-तीन लेख ही प्रकाशित हो पाये और 'अनेकान्त' बन्द हो गया। लेख-मालाका शेष अंश कहाँ गया, अबतक पता न चला।

इसी समय हस्त-सामुद्रिकका उसे शौक लगा। इस विषयके भी हिन्दी, अँग्रेजी और संस्कृतमें प्राचीन और नवीन श्रेणीके जितने ग्रन्थ मिल सके, उन सबको उसने पढ़ा और इस विद्यामें निपुणता प्राप्त की। उसके सभी मिलने-जुलनेवाले उसे अपने हाथ दिखलाया करते थे और उसके फलितपर विश्वास करते थे। ज्योतिष-शास्त्रका भी उसने कुछ अध्ययन किया था, यह उसकी एक नोटबुकसे पता लगता है।

मैं चिरकालका रोगी हूँ। न जाने कितनी बार बड़ी-बड़ी बीमारियाँ भोग चुका हूँ और कब्जका रोग तो उसे भी मुझसे उत्तराधिकारमें मिला था। इस लिए उसका ध्यान चिकित्सा-शास्त्रकी ओर गया। पहले प्राकृतिक चिकित्साओं—उपवास-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टीकी चिकित्सा, ताप-चिकित्सा आदिके और फिर आयुर्वेदके ग्रन्थ पढ़े। अन्तमें होमियोपैथी भी उसने सीखी। इन सब शास्त्रोंपर उसने कितना गहरा विचार किया था, इसका पता उसकी लिखी हुई नवीन चिकित्सा-विज्ञान आदि ग्रन्थोंकी भूमिकाओंसे लग सकता है। डा० केलागकी 'रेशनल हेड्रोथिरेपी' तो उसे इतनी पसन्द आई कि उसके आधारसे 'सोपपत्तिक जल-चिकित्सा-शास्त्र' नामक एक ग्रन्थ ही लिख डाला, जो अभीतक अप्रकाशित पड़ा है। उसके बाद उसने होमियोपैथीके ग्रन्थ पढ़े और अपनी मृत्युसे एक वर्ष पहले जब कलकत्ते गया, तब होमियोपैथीके बंगला और अँग्रेजीके अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ और दवाओंके बक्स खरीद लाया और अपने परिचितों तथा दूसरे लोगोंकी चिकित्सा भी करने लगा। चालीसगाँवमें जितने दिनों रहा, वह आसपासके गरीबोंको होमियोपैथीकी दवाईयाँ मुफ्त वितरण करता रहा।

मेरे लिए सबसे बड़े दुःखकी बात वह थी कि वह सब तरहके उपचारोंका प्रयोग स्वयं अपने ऊपर किया करता था। वह बहुत साहसी था और मैं भीरु। मैं कहता, "भैया, बिना डाक्टरों और वैद्योंकी रायके कोई प्रयोग करनेमें खतरा है।"

वह कहता, "डाक्टर-वैद्य भी और क्या करते हैं ? वे भी तो प्रयोग ही करते हैं।"

मेरा कोई वश न चलता और वह मनमानी किया करता। उसके भोजन-सम्बन्धी प्रयोगोंके मारे तो सारा घर परेशान रहता।

चिकित्सा-शास्त्रोंके सिलसिलेमें ही उसने मनोविज्ञान, यौन-मनोविज्ञान और फ्रायडके ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया। हैवलाक ऐलिसके ग्रन्थोंका तो उसने अनेक बार पारायण किया था।

पहले वह गाँधीवादका परम भक्त रहा। परन्तु पीछे कार्ल मार्क्स और ट्राटस्की आदिके ग्रन्थ पढ़नेसे उसका मन समाजवादकी ओर झुक गया। एम० एन० राय के 'इंडिपेंडेंट'का वह नियमित पाठक रहा।

बंबईमें वर्धाकी 'हिन्दी-प्रचार-सभा' की ओरसे अन्य-भाषा-भाषियोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए कई क्लासें चलती हैं। इन क्लासोंके उच्च श्रेणीके विद्यार्थियोंको वह नियमित रूपसे पढ़ाता रहा। यों वह लापरवाह था, समयपर कोई काम न कर सकता था, परन्तु इस काममें उसने कभी ढील न की और समयकी पूरी पाबन्दी की। इसी पढ़ानेके सिलसिलेमें उसने अपने विद्यार्थियोंके लिये 'साहित्य-शिक्षाका अध्ययन' तथा 'गोदान तथा शाहजहाँ और बुद्धदेव'की आलोचना लिखी और अपनी साहित्यिक योग्यता बढ़ानेका प्रयत्न किया। अलंकार-शास्त्र पढ़ाते समय उसने महसूस किया कि हिन्दीमें अलंकार-पर कोई अच्छा ग्रन्थ नहीं है। जो हैं, वे ऐसे लोगोंके लिखे हुए हैं जो स्वयं उससे अनभिज्ञ हैं। अतएव उसने इस विषयका अध्ययन करना शुरू किया। संस्कृत और अँग्रेजीमें उसे जितने ग्रन्थ मिल सके, उन्हें संग्रह किया और पढ़ा। चालीसगाँवमें इस विषयकी सारी सामग्रीके साथ वह यह निश्चय करके गया था कि वहाँ एकान्तमें इस कामको कर डालेगा, परन्तु दैवको यह मंजूर न था। वह इस विषयके दो-तीन सौ पृष्ठके नोट्स लिखे हुए छोड़कर चल दिया।

विशाल-भारतमें उसके लिखे हुए जो चार लेख प्रकाशित हुए हैं और पाँचवाँ लेख जो अधूरा लिखा पड़ा है वे उसके साहित्यिक अध्ययनकी गहराईका पता देते हैं।

हिन्दीकी कहानियोंका वह एक ऐसा विशाल संग्रह प्रकाशित कराना चाहता था, जिसमें अलंकार-प्रधान, विचार-प्रधान, भावना-प्रधान, विनोद-प्रधान, घटना-प्रधान, इतिहास-प्रधान, विज्ञान-प्रधान, युद्ध-साहस-रोमांच-प्रधान आदि विविध प्रकारकी कहानियाँ रहें और साथ ही प्रत्येक कहानीकी आलोचना। इसकी एक विस्तृत भूमिका भी वह लिख रहा था, जो करीब-करीब

पूरी हो गई थी। बहुत-सी कहानियोंकी आलोचना भी लिख चुका था। मुझसे आग्रह कर रहा था कि मैं लेखकोंसे पत्र-व्यवहार करके प्रकाशित करनेकी आज्ञा प्राप्त कर लूँ। मैं टाल रहा था कि पहले आलोचनायें तो पूरी हो लें, परन्तु उनके पूरे होनेके पहले ही वह पूरा हो गया।

उसकी लिखी हुई 'ब्रह्मचर्य-दर्शन' नामकी सम्पूर्ण पुस्तक अभी पिछले महीनेमें ही मुझे 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' नामक सुप्रसिद्ध पुस्तकके लेखक स्वामी शिवानन्दजीसे प्राप्त हुई है। स्वामीजीकी उसपर बहुत कृपा और ममता थी, इसलिए अपनी यह चीज वह उन्हें पढ़ने और आवश्यक संशोधन करनेके लिये दे गया था। मुझे इसका पता भी न था। अभी जब स्वामीजीने उसकी मृत्युका समाचार सुना, तब मुझे पुस्तक लाकर दी और बहुत ही दुख प्रकाशित किया। अब यह पुस्तक यथासंभव जल्दी ही प्रकाशित हो जायगी। इस विषयकी अन्य सभी पुस्तकोंसे वह अपनी एक विशेषता रखती है।

अनुवाद-कार्यकी ओर उसकी रुचि नहीं थी। मैंने बहुत कोशिश की कि वह कुछ अच्छी पुस्तकोंके अनुवाद हिन्दीमें करे, परन्तु वह मौलिक लेखक बनना चाहता था। अनुवाद करनेमें उसे डर था कि कहीं मैं अनुवादक बनकर ही न रह जाऊँ। शायद सबसे पहले श्रद्धेय पं० बनारसीदासजीकी प्रेरणासे 'विशाल भारत' के लिए साधु टी० एल० वास्वानीके अँगरेजी लेख 'भगवान् महावीर' का उसने अनुवाद किया था और मेरे बहुत जोर देने पर उसने शरत्-बाबूके 'श्रीकान्त' के पहले दो पर्वोंका और 'छवि' नामक कहानीका अनुवाद किया। 'साहित्य-शिक्षा' का सम्पादन करते समय रवि बाबूके 'हिन्दीके मर्मी कवि' नामक निबन्धका अनुवाद भी उसने किया था। ये सभी अनुवाद बहुत ही यथार्थ और सुन्दर हुए हैं।

पाठ्य-पुस्तकें लिखनेकी ओर भी उसका ध्यान गया। 'सहज हिन्दुस्तानी' के दो भागोंके लिखनेमें उसने बहुत परिश्रम किया था। तीसरा भाग भी क़रीब-क़रीब तैयार कर चुका था परन्तु टैक्स्ट-बुक-कमेटीके रवैयेको देखकर उसने उसे फिर नहीं छपाया। उसका लिखा हुआ एक 'हिन्दीका बुनियादी व्याकरण' भी पड़ा है।

प्रूफ रीडिंगके काममें उससे मुझे बहुत सहायता मिलती थी। पिछले आठ-दस वर्षोंमें प्रकाशित हुए सभी ग्रन्थोंके संशोधनमें उसका हाथ रहा है।

हेमचन्द्र सदा बालक ही रहा। अन्य पिता जिस तरह अपने सयाने

लड़केको बालक समझते रहते हैं, उस तरह नहीं, सचमुच ही उसका लड़कपन कभी नहीं गया। घर-गृहस्थीके कामोंमें ही नहीं, बाहरके तमाम व्यवहारोंमें भी उसका लड़कपन तैरता रहता था।

उसकी स्पष्टवादिताके मारे मैं तंग था। कभी-कभी तो बड़े संकटमें पड़ जाता था। उसकी स्पष्टवादिताके कुछ प्रसंग याद आ रहे हैं:—

१—एक सज्जन मुझे अपनी लिखी हुई एक पुस्तक दे गये और कह गये कि आप इसे पढ़िए और अपनी राय दीजिए। मुझे वह चीज पसन्द न थी, परन्तु मुझमें स्पष्ट कहनेका साहस न था। कई दिन बाद जब वे आये तब मैंने टाल देनेके लिए कहा कि मुझे पढ़नेको अवकाश न मिल सका। हेम वहीं खड़ा था। चट कह उठा "दादा, कल तो तुम्हें सारे दिन फ़ुरसत रही। और तुम तो कहते थे कि पुस्तक अच्छी नहीं है।" मुझपर घड़ों पानी पड़ गया और वे सज्जन चुपचाप अपनी पुस्तक लेकर चल दिये।

२—एक वयोवृद्ध सज्जन दूकानमें मिलनेके लिये आये। उनका एक साहित्य-ग्रन्थ उसी समय प्रकाशित हुआ था। मैं तो उसे सरसरी तौरसे ही देख पाया था, परन्तु हेम चूँकि उसी विषयका अध्ययन कर रहा था, इस लिए उसने उसे आद्योपान्त पढ़ा था। मैं उक्त सज्जनको धन्यवाद दे रहा था और इस वृद्धावस्थामें भी ऐसा उत्तम ग्रन्थ लिख सकनेकी प्रशंसा कर रहा था कि हेमने कहीं बाहरसे आकर खड़े खड़े यह सुन लिया और वह बीचमें ही बोल उठा, "और आपकी धृष्टता और साहसकी भी प्रशंसा करनी चाहिए जो...महाशयके अँग्रेजी......ग्रन्थसे अपनी पुस्तकका अधिकांश भरकर भी उनके ही कुछ सही मतोंका ग़लत खंडन करके अपनी मौलिकता प्रकट करनेका प्रयत्न किया है।" मेरी उस समयकी स्थितिका पाठक अनुमान कर सकते हैं।

३—स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतरायजी जैन विलायत जानेके लिए आये थे और ही० गु० जैन बोर्डिंग हाऊसमें ठहरे हुए थे। हेमचन्द्र उनके डेरे पर लगातार कई दिन तक गया और उनकी बातचीतसे बहुत प्रभावित हुआ। पिछले दिन उन्होंने अपनी अँग्रेजी पुस्तक 'फर्स्ट फाउण्डर ऑफ दी जैनिज्म' के फार्म पढ़नेके लिए दिये, जो उसी समय प्रकाशित हो रही थी। तीन-चार दिनके बाद बैरिस्टर साहब दूकानपर आये। उस समय और भी दो-तीन गण्यमान सज्जन बैठे हुए थे। बैरिस्टर साहबने अपनी उक्त पुस्तकके बारेमें पूछा। हेमने उत्तरमें जो कुछ कहा, उसे सुननेके लिए न मैं

तैयार था और न वे। उसने बिना हिचकिचाहटके कह डाला, "मुझे तो इसमें कोई नई बात पढ़नेको मिली नहीं। हिन्दीके 'आदिपुराण 'मेंसे ऋषभ-देवकी कथाको ही आपने अँग्रेजीमें लिख दिया है।"

मैंने बादमें कहा, "भैया, न जाने तुम्हें तमीज कब आयेगी! बड़ोंकी इज्जत करनी होती है।"

वह बोला, "क्या ठकुरसुहाती कहना ही तमीजदारी कहलाती है?"

मेरी गल्तियों और दोषोंको कहनेमें भी वह कभी न चूकता था। कभी कभी तो मैं अपनेको अपमानित समझकर अत्यन्त दुखी हो जाता था। मेरे साथ बात करनेमें वह इतना निस्संकोच था कि न जाननेवाले यह समझ ही न पाते थे कि ये पिता-पुत्र हैं।

उसके बीमार होनेकी खबर पाकर जब मैं चालीसगाँव पहुँचा तब मैंने अपने उसी समय प्रकाशित हुए 'जैन-साहित्य और इतिहास' की प्रति उसे दी' जो उसकी स्वर्गीया माताको उत्सर्ग किया गया है। उसके प्रारम्भमें हेमचन्द्रकी ओरसे ये पँक्तियाँ छपी हुई हैं—"मेरी स्वर्गीया माताकी मृत्युके समय पिताजीने दो हजार रुपया किसी शुभकार्यमें लगानेका जो संकल्प किया था, यह ग्रन्थ उन्हीं रुपयोंसे प्रकाशित किया जा रहा है...।" इन्हें पढ़कर वह बोला, "दादा, इससे तुमने मेरी माताका क्या उपकार किया? इससे तो तुमने एक तरहसे अपनी ही प्रतिष्ठाका पोषण किया है।" बात कड़वी थी, परन्तु स्पष्ट और सत्य थी। क्षुब्ध होकर भी मैं चुप रह गया।

यों तो वह अपनी मनमानी करनेवाला अबाध्य पुत्र था, परन्तु भीतरसे मुझे प्राणोंसे भी अधिक चाहता था। पिछली बीमारीके समय जब डा० करोड़ेके यहाँ दमेका इंजक्शन लेने बाँदरा गया, तब मेरे शरीरमें खून न रहा था। डा० ने कहा कि किसी जवान आदमीके खूनकी जरूरत है। हेमने तत्काल ही अपनी बाँह बढ़ा दी और मेरे रोकते रोकते अपने शरीरका आधा पौंड रक्त हँसते हँसते दे दिया! मेरे लिए वह सब कुछ करनेको सदा तैयार रहा।

अब जब हेम नहीं रहा, तब सोचता हूँ तो मेरे अपराधोंकी परम्परा सामने आकर खड़ी हो जाती है और पश्चात्तापके मारे हृदय दग्ध होने लगता है। मेरा सबसे बड़ा अपराध यह है कि मैं उसकी योग्यताका मूल्य ठीक-ठीक नहीं आँक सका और उसको आगे बढ़नेमें उत्साहित न करके उल्टा रोकता रहा। हमेशा यही कहता रहा, "अभी और ठहरो...अपना

ज्ञान और भी परिपक्व हो जाने दो...यह तुमने ठीक नहीं लिखा...इसमें ये दोष मालूम होते हैं। " इत्यादि। इससे उसे बड़ा दुख होता था और कभी कभी तो वह अत्यन्त निराश हो जाता था। एक बार तो उसने अपना लिखा हुआ एक विस्तृत निबन्ध मेरे सामने ही उठाकर सड़कपर फेंक दिया था और फफक-फफककर रोने लगा था। उस अपराधकी या गलतीकी गुरुता अब मालूम होती है। काश उस समय मैंने उसे उत्साहित किया होता और आगे बढ़ने दिया होता! अब तक तो उसके द्वारा न जाने कितना साहित्य-निर्माण हो गया होता।

मैंने सदा यह प्रयत्न किया कि वह एक व्यवहार-कुशल आदमी बन जाय और मेरे बाद अपना कारबार सँभाल ले। परन्तु यह कभी न सोचा कि मनुष्य विभिन्न प्रकृति लेकर उत्पन्न होते हैं। हरएक हरएक काम नहीं कर सकता। वास्तवमें वह व्यवसायके लिए उत्पन्न ही नहीं हुआ था। वह विचारक था और उसके दिमागमें विचार ही घूमा करते थे। उनके कारण वह प्रायः अन्यमनस्क बना रहता था और जरूरी-से-जरूरी काम भूल जाता था। अपने पहननेके कपड़े भी दूसरोंकी सहायताके बिना वह नहीं पा सकता था। टोपियाँ इतनी खोईं कि उसने टोपी लगाना ही छोड़ दिया। फौंटेनपेनोंका खोया जाना तो एक मामूली बात हो गई थी।

अपनी माताका वह परम भक्त था और उसीके चरित्रका उसपर सबसे अधिक प्रभाव था। माताकी मृत्युके उपलक्ष्यमें 'जैन-जगत्' (१ दिसम्बर १९३२) में उसने अपनी 'श्रद्धांजलि' अर्पित की थी, उसे पढ़कर आज भी मैं अपने आँसू नहीं रोक सकता। उसकी माताको मेरे द्वारा जो कष्ट मिले, जो अवहेलना मिली उनके लिए उसने मुझे कभी क्षमा नहीं किया और जब जब मौका मिला, उसने उपालम्भ दिये बिना न छोड़ा। मेरी उस समयकी विवशता, कामका अत्यधिक बोझा, समयका अभाव आदि कारण उसे कभी पर्याप्त नहीं मालूम हुए।

हेमका ब्याह सन् १९३० में हुआ था। पत्नी चम्पा यद्यपि अधिक पढ़ी-लिखी नहीं मिली, फिर भी उसने अपनी गृहस्थी सँभाल ली और दोनों एक दूसरेसे सदा सन्तुष्ट ही रहे। अपने पीछे वह दो पुत्र (यशोधर और विद्याधर) छोड़ गया है जो क्रमशः ग्यारह और आठ वर्षके हैं और जिन्हें देख देखकर मुझे जीना है।

बंबई।]

५

वह हेम !

श्री जैनेन्द्रकुमार

याद पड़ता है कि कराची-कॉंग्रेसके बाद बम्बई जाना हुआ तब पहली बार हेमचन्द्रसे मिलना हुआ। प्रेमीजी तब घाटकोपर रहते थे। हेमचन्द्र मुझसे उम्रमें छोटा कितना था, यह मैंने मालूम नहीं किया। अंतर विशेष न होगा, पर हेमने मुझे पहले ही दिनसे इस तरह अपनेसे बड़ा मान लिया कि मुझे उसे अपनेसे छोटा माननेमें कोई अड़चन न हुई। हेमकी यह खूबी मुझे उस समय तो दयनीय ही लगी थी, पर ज्यों ज्यों दिन बीतते गये, मुझे वह स्पृहणीय ही होती गई और आज जब वह नहीं है, व्यक्तिमें अनायास यह स्वयं छोटा बननेकी विशेषता इतनी महत्त्वपूर्ण मालूम होती है कि दूसरी बहुत कम बातोंको मैं उसकी तुलनामें रख पाता हूँ। हेममें बहुत कुछ था परन्तु उस भले आदमीने कभी यह न जाना कि उसमें कुछ भी है। उसका व्यवहार सरल बालकोंका-सा था और अपनेसे छोटोंसे भी अनायास वह छोटा बन रहता था।

कहना होगा कि पहली भेंटमें मुझे हेमपर करुणा हुई। इसमें त्रुटि मेरी और श्रेय उसका था। वह इतना निश्छल और सरल था कि जैसे शिशु। उधर मैं था आत्म-ग्रस्त। लेकिन मैंने देखा कि वह अपनी वयके हिसाबसे बहुत अधिक जानकार है। एकाधिक विषयोंमें उसका प्रवेश है और व्यावहारिक तथ्योंके बारेमें उसका परिचय ईर्ष्याके योग्य है। रेलसे जाना है तो ट्रेनका समय उससे पूछ लीजिये। उसी आसानीसे स्वास्थ्यके विषयमें अमुक पश्चिमी आचार्यका क्या मत है, यह भी हेमकी स्मृति बता देगी। उसे चहुँमुखी रस था और एक ओर लगकर मानों उसके धुरतक पहुँच जाना चाहता था।

मैंने बहुत जल्दी देख लिया कि यह अबोध हेम गहराईके साथ सुबोध है और सरलता उसके लिये इस कारण सहज है कि व्यर्थ चातुर्यके लिए उसके

पास खाली जगह नहीं है। छोटी-ओछी बातोंमें उसका मन न था और चतुरोंके बीचमें अचतुर बननेमें उसे तनिक असुविधा न होती थी। सन्' ३० से शुरू होकर अंततक मेरा उससे परिचय रहा। परिचय हेल-मेलसे होकर अभिन्नतातक बढ़ता गया और उसके प्रति मेरा आश्चर्य भी यह देखकर बढ़ता गया कि कभी भूले और ढीले क्षणमें भी उसके मुँहसे कोई खोटी या ओछी बात नहीं निकलती है।

बहसमें उसे हराना आसान न था। फिर भी वितण्डामें वह कभी न उतरता था। कितना भी लम्बा विवाद चले, तर्कसे उतरकर व्यंगपर वह कभी न आता था और कटुता उसके लिये असंभव ही थी। अपने पितासे भी बहस उसे अप्रिय न थी। पर इस बीसवीं सदीमें उसके जैसा आज्ञापालक पुत्र मैंने दूसरा देखा है, यह सहसा याद नहीं पड़ता। मैंने पिताके साथ उसकी बहसें सुनी हैं। उनके पुनरावर्तनमें अधिक कालक्षेप भी नहीं होता था। पर उस कारण पुत्रोचित कर्तव्य-पालनमें तनिक भी क्षति हुई है, यह मैं हेमके विषयमें असंभव मानता हूँ।

एक बात हेममें खास थी, वह धुन। संकीर्णता तो उसमें नामको भी न थी। साहित्यकी उसे सहज परख थी और साहित्यको वह शास्त्रकी ओरसे नहीं, जीवनकी ओरसे जाँचता था। वह दुनियाके हाल-चालके बारेमें बेहद सजग रहता था। रेडियोपर विदेशोंसे खबर आनेका वक्त हो तो असंभव था कि आप हेमको रेडियोपर न पायें। महमान अपनेको सँभाले और घरके दूसरे लोग भी जो चाहे करते हों, पर हेमके लिये सब पीछे, बी० बी० सी० की खबर पहले। अखबारी किस्मके आदमी भी ताजा-से-ताजा मिनटकी खबरके शौकीन होते हैं, पर उन्हें तो यह चीज ऐसी है जैसे गलेकी टाई। हेम उन वाचालोंमें न था। ये खबरें उसमें नीचे उतरती थीं और सामयिक और राजनैतिक अध्ययनमें अपना स्थान पानेके अनन्तर मानो उससे भी गहरे स्तर यानी सांस्कृतिक विवेचनमें भी किंचित् अपना रस पहुँचाती थी। हेम सचमुच उन बौद्धिकोंमेंसे था जो परिणमनशील घटनाओंको अपरिवर्त शाश्वत सत्यके मेलमें देखनेकी चेष्टा करते रहते हैं। वह पक्का आदर्शवादी था। पर किसी आदर्शमें बन्द न था, क्योंकि नाना घटनाओंमें प्रतिक्षण घटित होते रहनेवाले तथ्यके प्रति आँख न मूँद सकता था। केवल आदर्शवादी निषेधक होते हैं, जो प्रचारक और उपदेष्टा बनते हैं। मानों उन्हें जानना है ही नहीं।

बताना ही बताना है। आदर्शवादका यह बड़ा खतरा है। हेम इस खतरेसे बरी था। वह कितने ही वर्ष जीता, कट्टर न बन पाता, क्योंकि तत्त्वशास्त्रमें श्रद्धाकी यह कल्पनाकी आँख मूँदकर बहिर्जगतके प्रति उदासीन या तन्द्रिल बन रहनेकी सम्भावना हेमके जीवनमें न थी।

हेमको इस ऊँचे पैमानेसे नापनेकी लाचारी मेरे लिये इसलिए है कि सचमुच मैं अनुभव करता हूँ कि हेम लौकिक पदार्थों—धनमें, भोगमें घिर कर रहनेवाला जीव न था। उसमें वृत्ति ऊँची थी। इसीसे कुशलोंके बीचमें वह अकुशल दीख आता था। मैंने उसकी उम्रके बहुत कम लोगोंको गली-बाजारकी या इस-उसकी भली-बुरी खबरोंके प्रति इतना उदासीन और अरसिक देखा है। जीवनके निम्न पहलुओंकी ओर उसकी रुचि या वृत्ति न जाती थी। उसकी प्रकृति निश्चित रूपसे उर्ध्वमुखी थी।

मेहनती वह अद्‌भुत था और विश्वासके अनुसार नई लीकपर बढ़नेमें वह झिझकता न था। भाषाको एक स्थिर पन्क्चुएशन देनेमें हेमका भाग किसीसे कम नहीं है। उसने उस सम्बधमें अत्यन्त स्पष्ट और सुस्थिर अपनी एक धारणा तैयार की थी और 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर'की अनेक पुस्तकोंकी भाषामें पन्क्चुएशनकी सुघरता उसकी देन है। मुझे लगता है कि मेरी पुस्तकोंमें अगर कहीं वैसी चुस्ती है तो वह हेमकी बदौलत। भाषाकी उसे अच्छी परख थी और अच्छा वैज्ञानिक ज्ञान था।

व्यवहारमें वह अत्यन्त प्रामाणिक, निर्लेप और सहृदय था। वह सच्चा सहृदय था। पैसेके सम्बन्धमें उदार और विद्वानोंके प्रति श्रद्धालु था।

एक बारकी बात है कि मैं बम्बईसे वर्धा गया। वहाँ पहुँचते ही मालूम हुआ कि अगर मुझे बापू (गान्धीजी)से मिलना जरूरी हो तो वह कह गये हैं कि मैं पूना आ पहुँचूँ। लाचार उसी शाम मैं पूना चल दिया। कल्यानपर तीन घण्टेका वक्त फिजूल जाता था। सीधा बम्बई चला जाऊँ तो वहाँ भी पैंतालीस मिनट मिल जाते थे। इस तरह बम्बई पहुँच बराबरके प्लेटफार्मपर खड़ी पूनाकी गाड़ीमें अपना सामान रख घड़ी हाथमें ले मैं हीराबाग आगया। प्रेमीजी मिले नहीं और मुझे तभी लौटना था। हेम मेरे साथ आया, स्टेशन-पर हम पहुँचते हैं कि हमारे देखते-देखते पूनाकी गाड़ी छूट गई। अब क्या हो? गाड़ीमें सामान था, इसकी तो फिक्र न थी, पर गाँधीजी राह देखते होंगे, इसकी बड़ी चिन्ता थी। मैं तो एकाध मिनट किंविमूढ़-सा खड़ा रह

गया। उस समय हेमने बाँहसे पकड़कर मुझे खींचा और कहा कि चलो टैक्सीसे दादर चलते हैं, कुछ ऊपर देना कहेंगे तो टैक्सी रेलसे पहले हमें पहुँचा देगी।

मैं हेमकी तरफ देखता रह गया। कहा कि बम्बईकी सड़कोंकी भीड़—भला कैसे संभव है कि टैक्सी हमें पहले ले जाय? उसने कुछ नहीं सुना और बाहर आकर झटपट टैक्सीवालेसे बात की और हम टैक्सीसे रवाना हुए।

हम दादर प्लेटफार्मपर पहुँच चुके कि तब रेल आई।

इस सारी झटपटमें हेमसे चलते समय एक बात कहनेका मौका न आया और मुझे माळूम होता है कि मुझे गाड़ी मिलानेके उपरान्त उसे भी कुछ कहनेको शेष न था।

अंतिम भेंट सन् ४१ में वह थी जब मैं फिर पूनाके लिये रेलमें सवार हुआ था। हम लोग कोई पौन घंटे पहले स्टेशनपर आ गये। हेम लाल कोट पहने था, छतरी हाथमें थी, टोपी बेढंगी थी, जाने हम क्या-क्या बातें कर रहे थे। जरूर वे पासकी बातें न थीं और स्वार्थसे बहुत दूरकी थीं। उसे उन्हीं बातोंमें रस था। वह दुनियाको नई, बदली हुई और सुधरी हुई देखना चाहता था। वह उसी बदलाव और सुधारके लिये रहना चाहता था। उसके मनमें आशाएँ थीं और हाथमें अध्यवसाय था और हृदयमें प्रेम था, उसे सचमुच कुछ करना था। प्रेमीजीको भी निश्चित करना ही था और अपनी गृहस्थीको भी पालना था। पर नहीं, उससे आगे भी उसे करना था। उस आगेकी बातमें उसे कम लगन न थी। मैं जानता हूँ, उसकी आशा मुझमें आशा भरती थी। मैं जानता था कि हेम मुझ निकम्मेसे काफी काम लेना रहेगा, पर यह न जानता था कि यह भेंट अंतिम होनेवाली है और उसीको कहीं दूसरी जगह कामपर बुला लिया जानेवाला है। हम व्यक्तियोंको जानते हैं, वे हमारी आँखों आगे जनमते हैं, जीते हैं, मरते हैं। किस विधानके अन्तर्गत अमुक समय जी आते हैं और दूसरे अमुक समय चल बसते हैं, माळूम नहीं, पर अपनी निजतामें यह कहनेका साहस भी मुझे नहीं होता है कि वह विधान ही कुछ नहीं है। अतर्क्य तो है, पर जरूर उसमें कोई गहरा तर्क है। हेम उठ गया, यह खबर जब सुनी तो बहुत अनहोनी लगी। लगा कि यह हो कैसे सकता है। पर यदि हुआ ही है तो किसी न किसी प्रकार हेमकी सार्थकता भी उसमें थी।

मुझे वह अपने लाल कोट, हाथकी छतरी और बेढंगी टोपी समेत याद आता है। बच्चोंसे खेलता, उनकी माँ चम्पाको हँसीमें टालता और कान लगाकर रेडियो सुनता हुआ वह मुझे याद आता है और मैं आपके इस सत्प्रयत्नको पसन्द करता हूँ कि उसकी याद स्थायी रहे, क्योंकि सचमुच वह व्यक्ति निर्भय था और सरल और ऊँचा देखनेवाला था। उसके संस्मरण हममें गंभीरता और पवित्रता ही लायँगे।

दिल्ली]

६

हेमचन्द्रके लिये मेरे चार आँसू

बा० अजितप्रसाद जैन एम्० ए०, एल्एल्० बी०.

श्रद्धेय पंडित नाथूराम प्रेमीकी आँखोंका तारा, प्यारा, दुलारा, एकमात्र पुत्र चढ़ती जवानीमें सहसा परलोक सिधार गया।

मैंने उसको जनवरी १९४१ में बम्बईमें देखा था, जब वह मुझे अपने घर ले गया था। उसने अपना रेडियो-सेट दिखलाया, सुनाया, समझाया। अपनी किताबें दिखलाईं। अनेक विषयोंपर देर तक बातें करता रहा। उसके मनमें साहित्य-सेवाकी बड़ी-बड़ी उमंगें थीं। उसने बड़े बड़े मनसूबे बाँध रक्खे थे। मैंने देखा कि वह एक प्रतिभाशाली, असामान्य, होनहार युवक है। मुझे उससे बड़ी आशा थी।

"फूल तो कुछ दिन बहार-ए-जां-फिज़ा दिखला गए।
हसरत उन गुंचोंपे है जो बिन खिले मुरझा गए।"

अजिताश्रम, लखनऊ]

७

भाई हेम

प्रो० हीरालाल जैन एम० ए०, एलएल० बी०

आदर्श जीवनके सभी गुण तो हमें शायद ही कभी एक व्यक्तिमें दृष्टिगोचर हो सकें, पर किसी मनुष्यमें कभी कुछ ऐसे गुण दिखाई दे जाते हैं, जिनकी हमारे हृदयपर एक अमिट छाप लग जाती है और जब उस व्यक्तिका ध्यान आता है, उन सद्‌गुणोंकी स्मृति जाग उठती है। पूज्य पं० नाथूरामजी प्रेमीसे मेरा साहित्यिक और हार्दिक संबंध बहुत दिनोंका है। उसी नाते उनके सुपुत्र बाबू हेमचन्द्रके साक्षात् परिचयके उनके जीवनमें मुझे चार-पाँच सुअवसर मिले, जिनसे उनके स्वभाव और गुणोंकी कुछ स्पष्ट जानकारी हो सकी। उनके कुछ गुण मेरे हृदयपर खास असर कर गये हैं।

पहली बात जो हेम बाबूके जीवनमें मैंने देखी वह थी उनकी सादगी। न कोई उन्हें खाने-पीनेका खास शौक था, न पहरने-ओढ़नेका और न पान-तमाखू आदिका। किसी बातमें दिखाऊपनको तो वे कतई नापसन्द करते थे। चीज अच्छी दीखती है या लोग उसे अच्छी कहते हैं और उसकी ओर आकर्षित होते हैं, इतने मात्रसे कोई वस्तु उन्हें पसन्द नहीं आती थी, जब तक कि उस वस्तुके उपयोगका उन्हें विश्वास न हो जाय, और यदि उसकी उपयोगिता उनकी समझमें आगई तो भले ही लोग उसे बुरा कहें, वे उसे छोड़नेवाले न थे। उनके चुनावमें रुचि और उपयोगिताका वैषम्य या संघर्ष था ही नहीं। मैं जब जब बंबई गया और उन्हें साथ लेकर बाजारमें वस्तुओंका चुनाव करने लगा तो ऐसे अनेक अवसर आये जब मेरे मनमें दुविधा उत्पन्न हो जाती थी, " यह चीज अच्छी दीखती है, पर यह अधिक उपयोगी मालूम पड़ती है। किसे लूँ, किसे न लूँ?" हेमचन्द्रसे पूछा तो उनके मनमें इस विषयमें कभी कोई शंका ही नहीं पाई, उन्होंने झट कह दिया, " वही लो जो अधिक उपयोगी है।" यदि मैंने कहा कि वह कुछ मँहगी है और अभी मैं उतना खर्च नहीं करना चाहता तो वे बिना किसी हिचकिचाहटके झट कह देते तो फिर अभी शायद उसके बिना काम भी चल सकता है, इसलिये

अभी यह वस्तु लीजिये ही मत। फिर देखा जायगा। उनकी यह वृत्ति इतनी निश्चित और ठीक हो गई थी कि उसके कारण वे कभी कभी एक थोड़ी जरूरतकी पूर्तिके लिये अधिक मँहगी चीज खरीद लेते थे। इसका फल यह होता था कि यदि वे पूर्णतः उपयोगी वस्तु खरीद नहीं सकते थे तो वे उसके बिना ही रह जाना पसन्द करते थे। पर केवल दिखाऊ या कम उपयोगी वस्तु ले लेना तो उनके स्वभावमें था ही नहीं। खाने-पीने आदिमें भी अपने अध्ययन और अनुभव द्वारा उन्हें जिस वस्तुकी उपयोगिता अधिक दिखाई दी, बस वे उसीपर जम जाते थे, चाहे कुटुम्बमें दूसरे किसीको वह पसन्द आवे चाहे न आवे और चाहे कोई उसे बुरा कहे या भला। यह बात उनके पिताजीको पसन्द न आती थी और कभी कभी प्रेमीजीने मुझसे इसकी शिकायत भी की। पर जब मैंने उसका विश्लेषण करके देखा तो पाया कि वह वृत्ति किसी शौक और दिखावटकी ओर झुकावका परिणाम नहीं थी, किन्तु वही ठोस उपयोगवादिताका रूप थी, इसीसे कभी इसके विषयमें उन्हें ताना देनेको जी नहीं चाहा और जब कभी उस विषयकी कोई चर्चा की तो उनके शुद्ध तर्कमें कोई दोष न पा सका।

बहुखर्चीलेपनका संबंध प्रायः शौकीनीके साथ पाया जाता है, पर हेम बाबूकी प्रकृतिमें उसका संबंध सादगी और उपयोगिताके साथ था, शौकीनीके साथ जरा भी नहीं।

हेमचन्द्रका दूसरा गुण था स्पष्टवादिता, जो उनकी पूर्वोक्त वृत्तिसे अच्छी तरह मेल खाता था। सच बातको न तो वे दबा सकते थे और न उसे मुलम्मा चढ़ाकर ही प्रकट करना उन्हें आता था। वे 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' के पक्षपाती न थे, क्योंकि इसे वे अपनी और दूसरोंकी वंचना कहते थे। यदि किसीने अपनी कृतिके विषयमें उनका मत चाहा, तो वे उसे लाग-लपेटके साथ नहीं कह सकते थे। उनका कोई चाहे जितना नजदीकी या सम्मानका पात्र क्यों न हो, उनके मुँहपर यह कहनेमें हिचकिचाहट न होती थी कि आपकी अमुक बात या वस्तु मुझे पसन्द नहीं आई। इससे कभी कभी प्रेमीजीको बड़ा दुख भी हुआ, क्योंकि प्रेमीजीके स्वभावमें किसीको अपनी बातसे दुख पहुँचाना है ही नहीं, पर प्रयत्न करने पर भी वे हेमचन्द्रकी इस प्रकृतिको बदल नहीं सके। हेमचन्द्र मान भी जाते थे कि यदि वे वैसा न

कहते तो दूसरेको दुख न पहुँचता, पर वे तुरन्त ही कह देते थे, "क्या करूँ, मुझसे और प्रकार बनता ही नहीं।"

हेम बाबूके जिस तीसरे गुणकी मुझे विशेष रूपसे याद आती है वह थी उनकी लगन। वे जिस ओर झुकते, उसे उसकी चरम सीमा तक पहुँचाये बिना रुकना नहीं जानते थे। उन्होंने आरोग्य-शास्त्रका अध्ययन किया तो यहाँ तक कि उसपर एक चिकित्साविषयक ग्रन्थ ही लिख डाला, जिसमे उन्होंने अपने विशाल अध्ययन और सूक्ष्म चिन्तनका अच्छा परिचय दिया है। फिर वे पुरुषत्व और स्त्रीत्वके शास्त्रीय अध्ययनकी ओर झुके। बस बड़ेसे बड़े और मँहगेसे मँहगे ग्रन्थ भी वे संग्रह करने लगे और पढ़-पढ़कर उनपर लेख भी लिखने लगे। उन्हें फिर अलंकार शास्त्रने आकर्षित किया तो उसका भी हिन्दी, अँग्रेजी और संस्कृतका समस्त उच्चतम साहित्य उनकी मेजपर बिराजमान होने लगा और उनके गंभीर चिन्तनका विषय बन गया। वे पढ़ लेने मात्रसे संतुष्ट नहीं हो जाते थे, किन्तु उनका मनन कर करके हृदयमें उसका समीकरण करनेका प्रयत्न भी करते थे। अलंकार-शास्त्रके चिन्तनमें वे मग्न थे, जब विधिने उन्हें स्वयं स्वर्गका अलंकार बना लेनेका निश्चय कर लिया। पश्चात् जब मैं प्रेमीजीके आश्वासनके लिये उनके पास चालीसगाँव पहुँचा तब मैंने स्वर्गीय हेमचन्द्रके उक्त विषयपर कुछ अधूरे लेख देखे, जिससे पता चला कि वे उस विषयका ऊपर ही ऊपर नहीं, किन्तु तलस्पर्शी अध्ययन कर रहे थे और उसका निचोड़ भी जनताके सम्मुख उपस्थित कर देना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने तद्विषयक इतने ग्रन्थ और लेखादि एकत्र कर लिये थे कि उनमेंसे कुछका तो स्वयं मुझे उससे पूर्व परिचय नहीं हो पाया था। उन लेखोंको व्यवस्थित कर प्रेमीजी प्रकाशित करा देनेका विचार कर रहे थे।

भाई हेमचन्द्रके इन गुणोंका विस्मरण नहीं होता और जब भी प्रसंग आ जाता है तब वे एक साथ हृदयमें हिलोरे लेने लगते हैं। पर क्या किया जाय ? उस गुणी आत्माका हमारे लिये इतना ही संयोग बदा था किसी कविने ठीक ही कहा है:—

जाकी यहाँ चाहना है ताकी वहाँ चाहना है।
जाकी यहाँ चाह ना है ताकी वहाँ चाह ना है॥

अमरावती]

८

अधखिली कली

पं० दरबारीलाल 'सत्यभक्त'

किसी व्यक्तिको देखनेके लिये जैसे कुछ निकटता जरूरी है, उसी प्रकार कुछ दूरी भी। आँखसे दूरकी चीज जैसे दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार आँखोंसे सटी हुई चीज भी नहीं दिखाई देती। हेमचन्द्र इतना नजदीक था कि उसके जीवनकी विशेषताओंपर नजर ही नहीं गई। वात्सल्यमें गुण-दोष सब डूबे रहे।

जब मैं रहनेके लिए बंबई आया तब मैंने हेमचंद्रको 'खबरोंका खज़ाना'के रूपमें पाया। बंबईके बाज़ारके बारेमें या और किसी वस्तुके बारेमें पूछता तो हेमचंद्रसे उसका सही उत्तर मिलता। पहले तो ज़रूरतके अनुसार ही मैंने कुछ बातें पूछीं। पीछे तो परीक्षा लेने लगा—अच्छा बताओ हेमचंद्र, परेलके पास कौनसा सिनेमा-हाउस है और उसमें क्या खेल चल रहा है? उत्तर एकदम सही। आखिर मुझे कहना पड़ा—तुम तो 'खबरोंके खज़ाना हो।' हेमचंद्रने मुस्करा दिया। इसमें संदेह नहीं कि हेमचंद्रकी स्मरण-शक्ति काफ़ी अच्छी थी। पीछेसे उसका शास्त्रीय विषयोंमें खूब उपयोग हुआ।

हेमचन्द्रका शिक्षण कॉलेजके फर्स्ट ईयर तक ही हुआ था। पर इतनी-सी पूँजीसे ही उसने अपना ज्ञान-भांडार काफ़ी बढ़ा लिया था। वेद, उपनिषद् तथा अन्य संस्कृत साहित्यका उसने अच्छा अध्ययन किया था। अँग्रेजी-साहित्यका भी खूब आलोडन किया था। अँग्रेजीमें उसकी रुचिका विषय था विज्ञानकी विविध शाखाएँ। काम-विज्ञान, ज्योतिष, विविध चिकित्सा-पद्धतियाँ आदिका गहरा अध्ययन किया था, और यही नहीं कि पुस्तकें पढ़ीं और रख दीं। नहीं, वह हरेक पुस्तकके विस्तृत नोट तैयार करता था। इस प्रकारके नोटोंकी उसकी एक लाइब्रेरी ही बन गई थी। हेमचन्द्र इस बारेमें असाधारण परिश्रमी था।

प्रेमीजीको उससे अगाध प्रेम था, पर पितृधर्मके लिहाज़से उन्होंने उसके मुँहपर तारीफ़ कभी नहीं की। यहाँ तक कि प्रेमीजीकी कड़ाई, जो कि हितै-

चिताके कारण पैदा हुई थी, मुझे भी खटक जाती थी। कभी कभी प्रेमीजीके सामने ही हेमचन्द्र मुझसे कहता, " काय पंडितजी, दादा कैत हैं के तें मूरख है। सो का मैं मूरख हों? *" मैं कहता, " नई रे, तोरे बराबर समजदार है किते? दादा तो ऊसई कत रत हैं। " तब हेमचन्द्र तुरन्त प्रेमीजीसे कहता, " देखो दादा, पंडितजी का कत हैं? तुम तो हमैं मूरखई बताउत रेत हो। "

प्रेमीजी हँसकर कहते, " वे तो तोरो दिल बढ़ाउत हैं। "

उस समय हेमचन्द्रकी मुसकराहट देखने लायक होती थी। हेमचन्द्र कभी तो गंभीर हो जाता था, कभी हँसता रहता था। पर हम लोगोंको हर हालतमें मज़ा ही आता था।

हेमचन्द्रमें स्पष्टवादिता बहुत जबर्दस्त थी। बड़ेसे बड़े विद्वानों और व्यक्तित्ववालोंके सामने उनकी मानसिक कमजोरियोंको उघाड़ देनेमें उसे संकोच न होता था। हाँलाकि उसका यह व्यवहार शिष्टाचारके विरुद्ध होता था, पर प्राय: लक्ष्यशून्य न होता था। आज मैं सोचता हूँ कि अगर वह जिन्दा रहता तो कलाकारके रूपमें न सही, किन्तु एक स्पष्टवादीके रूपमें वह मोपां-सांकी राहपर दिखाई देता।

बहुतसे लोग दिल-बहलावके लिए किताबें पढ़ते हैं। इससे आगे बढ़कर कुछ लोग कुछ सीखनेके लिए। इससे भी आगे बढ़कर कुछ लोग सीखी हुई बातें दुनियाको सिखाते हैं, अर्थात् इधरका माल ढोकर उधर पहुँचाते हैं, पर हेमचन्द्रका तर्ज निराला था। वह हरेक बात सीखकर अपने ऊपर उसका प्रयोग करके उसकी सचाई जान लेना चाहता था और फिर उसका परि-वर्द्धित और संशोधित रूप दुनियाको देना चाहता था। वैज्ञानिकों सरीखी जिज्ञासा, विचारकता, सत्यप्रियता, निर्भयता और बहादुरी उसमें भरी हुई थी, और इसी बहादुरीने उसके प्राण ले लिये।

इस प्रकारके प्रयोगोंमें कई बार वह मरते-मरते बचा, पर एक प्रयोगमें वह सदाके लिए चल दिया, आज भी वह सारी घटना सिनेमाकी तरह आँखोंके सामने नाचती है।

---

* हम लोग जब आपसमें बातचीत करते थे तो ठेठ बुन्देलखंडीमें ही करते थे। यही कारण है कि जब मैं बर्षों बाद भी घरकी तरफ जाता था तब बुन्देलखंडीमें बातचीत तो क्या, व्याख्यान भी दे सकता था और देता था।

३२

उन दिनों बम-वर्षाके डरसे बंबई खाली हो रही थी। प्रेमीजीने भी अपना बहुत-सा स्टाक चालीसगाँव भेज दिया था और हेमचन्द्र, चम्पा वगैरह वहीं रहते थे। मैंने हेमचन्द्रको बहुत दिनोंसे देखा नहीं था। इसलिये दौरेपर घूमता हुआ एक दिन चालीसगाँव उतर पड़ा। हेमचन्द्रने मेरे साथ भोजन किया। थोड़ी देर बाद उसे बुखार आ गया, मैं जब बुखार देख ही रहा था तो उसने कहा, " पंडितजी, चिन्ताकी कोई बात नहीं। मैंने तो एक दवाको जाँचनेके लिये प्रयोग किया है, इसलिये मुझे बुखार आया है, सवेरेसे ही थोड़ी-थोड़ी हरारत थी। "

मैंने जरा डाँट बताकर कहा, " जब सवेरेसे हरारत थी तो तूने भोजन क्यों किया ? "

बुखारमें भी उसने मुसकराकर कहा, " पंडितजी, बहुत दिनमें तो आपके साथ भोजन करनेका मौका मिला। उसे कैसा छोड़ देता ? "

आँखोंसे नकली रोष दिखानेके सिवाय मैं और क्या कहता ? पर उस दिन किसे मालूम था कि वह साधारण ज्वर ही कालज्वर है और उसका यह प्रयोग ही उसकी बहादुरी और सत्यप्रियताकी अन्तिम कहानी है ?

हेमचन्द्रमें निर्मोहता भी असाधारण थी। प्रेमीजी तो कभी-कभी उसकी इस बातसे खीज जाते थे और लापर्वाही समझते थे। मैं भी ' हाँ-मैं-हाँ ' मिला देता था, पर वास्तवमें उसकी निर्मोहता उसकी लापर्वाही नहीं, किन्तु योगी-जीवनका एक अंश था। वह धनसे ही निर्मोह नहीं था, पर जीवनसे भी निर्मोह था। इसी लिये तो वह जानको जोखिममें डालकर बार-बार प्रयोग करता रहता था। हम लोगोंने उसके इस रूपको नहीं पहचाना, इस बातको लेकर उसे मूर्ख और लापर्वाह ही कहा और उत्तरमें वह सदा मुस्कराता ही रहा।

हेमचन्द्र जीवनकी अधखिली कली थी, वह खिले और महके कि इसके पहले ही कालने उसे तोड़ डाला। इसमें उसका दुर्भाग्य कितना था, कौन जाने, पर उसके पीछे रहनेवाले ऐसे लोगोंकी संख्या काफी है, जिनका यह महान् दुर्भाग्य है।

सत्याश्रम, वर्धा।]

१

बालक हेमचन्द्र

श्री रामचन्द्र वर्मा

पहले पहल मैंने हेमचन्द्रको उस समय देखा था, जब वे निरे बालक थे, उस समय उनकी अवस्था बारह या तेरह वर्षकी थी। 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा'के एक विशेष कार्यसे मुझे बंबई जाना पड़ा था और वहाँ प्रायः तीन सप्ताह तक रुकना पड़ा था। बंबईमें मैं सदा प्रेमीजीके यहाँ ही ठहरता हूँ। अतः 'बालक हेमचन्द्र'को मैंने अत्यन्त समीपसे देखा था। हेमचन्द्रको देखना मानो उनके साथ एक अदृश्य मधुर सूत्रमें बँधना था। उस समय हेमचन्द्रके प्रति मेरे मनमें जो वात्सल्यपूर्ण प्रेम उत्पन्न हुआ था, वह उत्तरोत्तर इतना बढ़ता गया कि अन्तमें उनके निधनके घोर दुःखद समाचारने मुझे उसी प्रकार रुलाया जिस प्रकार किसी परम आत्मीयका निधन रुलाता है। पर रोना ही हाथ रहा !

शहरोंमें और विशेषतः बम्बईसरीखे बड़े शहरोंमें रहनेवाले बालक साधारणतः बहुत ही चतुर और चलते हुए होते हैं, पर बालक हेमचन्द्रमें यह बात नहीं थी। बम्बईकी हवा उन्हें कहींसे भी नहीं छू सकी थी। वे वैसे ही निरीह, वैसे ही सरल, वैसे ही भोले-भाले और वैसे ही शुद्ध-हृदय थे जैसे देहातोंमें रहनेवाले भले घरके बालक होते हैं अथवा जैसे प्राचीन तपोवनोंमें रहनेवाले ऋषिकुमार होते होंगे—नितान्त निःशब्द और निष्कपट—बालकोंके लिये आदर्श। भला ऐसे बालकको कौन हृदयसे लगाकर न रखना चाहेगा ? अतः यदि बालक हेमचन्द्रने मेरे मनमें स्थायी रूपसे घर कर लिया तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

हेमचन्द्रका सीधापन हर बातमें हर व्यवहारमें टपकता था। इतना, अधिक सीधापन, जिसके कारण बालक मूर्खतक कहे जा सकते हैं। परन्तु नहीं, हेमचन्द्र सीधे होने पर भी मूर्ख नहीं थे। उनकी बातों और कार्योंमें एक विलक्षण प्रतिभा थी, जो मेघाच्छन्न आकाशमें दमकनेवाली दामिनीके समान रह-रह

कर दीप्त हो उठती थी। इसीलिये हम लोग उन्हें परिहासमें प्रायः 'पण्डित-राज हेमचन्द्र' कहा करते थे। अवश्य ही इस 'पण्डितराज'में कुछ व्यंग्य भी होता था। 'बालक हेमचन्द्र'की समझमें चाहे उस व्यंग्यका ठीक-ठीक भाव न आता हो, परन्तु वयस्क हेमचन्द्र तो वह व्यंग्य अच्छी तरह समझते ही थे, पर फिर भी उनके मनमें उस व्यंग्यके कारण कभी नाममात्रको भी मैल मैंने नहीं देखा।

इसके बाद फिर एक-दो बार मुझे बंबई जाना पड़ा, पर दो ही चार दिनों-के लिये। मैं बराबर देखता था कि पूर्ण युवक हो जाने पर भी हेमचन्द्र बालक ही रहे। उनका बाल-स्वभाव आजन्म उनके साथ रहा। उन्होंने अच्छी शिक्षा पाई, अच्छा ज्ञान प्राप्त किया, अच्छा अध्ययन किया और सदा बहुत अच्छे अच्छे आदर्श अपने सामने रखे। परन्तु रहे वे आजन्म बालक ही। और बालक भी कैसे ? अनुकरणीय, आदरणीय और प्रशंसनीय।

अन्तिम बार मैंने अपने परम प्रिय 'बालक हेमचन्द्र'को देखा सन् १९४१ में उनकी परलोक-यात्रासे सात-आठ महीने पहले और वह भी इतने अधिक समीपसे देखा, जितने अधिक समीपसे पहले कभी नहीं देखा था। उस समय मुझे पूरे तीन मास बम्बई रहना पड़ा था और वह भी उन्हींके यहाँ। दिन-रातका साथ, आठों पहरकी बातचीत। भला इससे अधिक सान्निध्य और क्या हो सकता था ! उस समय तक उनका यथेष्ट बौद्धिक विकास हो चुका था। अनेक विषयोंका वे अध्ययन कर चुके थे और अच्छा अध्ययन कर चुके थे। विद्या, सदाचार, देशप्रेम आदि अनेक गुणोंने उनमें घर कर लिया था और उन्हें अच्छा खासा आदर्शवादी बना दिया था। परन्तु लौकिक व्यवहारमें उस समय भी वह बालक ही थे। गुण तो उनमें बहुतसे थे, परन्तु सबसे बड़ा गुण, जो मेरी दृष्टिमें आया, वह था उनका सदा सब बातोंमें प्रकट होनेवाला सहज और विशुद्ध बाल्यभाव। इसीलिये आज भी मैं उन्हें 'बालक हेमचन्द्र' के रूपमें ही स्मरण कर रहा हूँ। आजसे साल भर पहले उनकी जो स्मृति परम मनोहर और परम सुखद होती थी वही आज मुझे इतना अधीर कर रही है कि आँखोंमें आँसू आ रहे हैं और आगे लिखनेकी शक्ति ही मैं अपने आपमें नहीं पाता हूँ।

दो ही तीन दिनोंमें मुझे फिर बम्बई जाना है। प्रायः यही सोचता हूँ कि बम्बई कैसे जाऊँगा ? कैसे 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' कार्यालयमें और कैसे

प्रेमीजीके घरमें पैर रखूँगा ? कैसे प्रेमीजीको और कैसे बिचारी लक्ष्मी बहूको धैर्य दिलाऊँगा ? यहाँ तो स्वयं ही धैर्य छूटा जाता है। हाँ, दोनों बच्चों (जस्सू और पस्सू) को अवश्य दौड़कर गले लगाऊँगा और ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा कि वे उन्हें दीर्घजीवी और सब प्रकारसे सुयोग्य बनावें। परन्तु वह चमकता हुआ तारा अब कहाँ दिखाई देगा ?

काल, निष्ठुर काल ! तूने देवता स्वरूप प्रेमीजीपर दया नहीं की, लक्ष्मी-स्वरूपा बहू और नादान बच्चोंपर भी तरस न खाया और मित्रों तथा परि-चितोंके उस बहुत बड़े मंडलकी ओर भी ध्यान नहीं दिया, जो होनहार हेमचन्द्रसे अनेक बड़े-बड़े कार्योंकी आशा रखता था। अकाल ही में तूने उन्हें कवलित कर लिया। अपनी गति तू ही जाने। हम लोग तो वज्रका प्रहार सह ही चुके।

काशी,
१८ दिसम्बर, १९४३।

१०

हेम

श्री कृष्णलाल वर्मा

जिस समय स्वर्गीय हेमचन्द्रका विचार आता है, आँखोंके सामने एक भोली-भाली सूरत आ खड़ी होती है। वह चुप है और मन उसके होठ खुलवानेको व्याकुल हो उठता है।

जिस समय किसी भी व्यक्तिके निष्पक्ष और स्पष्ट आलोचककी तलाश होती है, हेमचन्द्र याद आता है, जब किसीकी साहित्यिक कृतिके गुण-दोषोंके संबंधमें साफ राय देने या सुननेकी जरूरत होती है, हेमचन्द्रकी आवश्यकताका अनुभव होता है, जब कभी किसी तरहका विवाद खड़ा कर उसके लिये अनेक विद्वानोंके विचार जाननेकी इच्छा होती है, हृदय हेमचन्द्रको ढूँढ़ने निकल पड़ता है।

हेम माता-पिताका भक्त था, पर कभी किसीका अनुचित दबाव नहीं मानता था। अगर उसे मालूम होता था कि उसके दद्दा (पिता) या और कोई किसी तरहकी अनुचित बात, जो दुनियवी व्यवहारोंके अनुसार उचित, परन्तु उच्च नैतिक सिद्धान्तोंके अनुसार अनुचित, करता था तो वह तुरन्त उन्हें रोक देता था। उस समय वह कभी यह नहीं सोचता था कि बाहरी आदमीके सामने ऐसी बात कहनेसे मेरे पिताका या गुरुजनोंका अपमान होता है। उसे जब यह बात सुझाई जाती थी तब वह कहता था, " आगमें हाथ देनेसे आग जलाती ही है, इसी तरह अनुचित करनेसे अपमान होता ही है। इसमें निज-परका ख्याल रखना अपने उच्च सिद्धान्तोंसे नीचे गिरना है। "

जो कुछ कहना होता था, वह साफ-साफ कहता था। लाग-लपेट, उसमें कुछ नहीं रखता था। उसका मंतव्य था:—

साफ़ दिल कहते हैं मुँह पै, इस तरहसे साफ़-साफ़।
आयना कहता है मुँह पै, जिस तरहसे साफ़-साफ़ ॥

वह दर्पणकी तरह सामनेवालेका यथार्थ स्वरूप बतानेवाला और आयनेकी तरह ही साफ दिलवाला था।

आरंभमें जब मैं बंबई आया था तब उसने दो-चार अक्षर मुझसे सीखे थे। इसके सिवाय श्रद्धेय प्रेमीजीका मेरे प्रति कृपापूर्ण व्यवहार रहा है। इन कारणोंसे वह मेरी इज्जत करता था। मनकी अनेक बातें मुझसे कह देता था और अपने विश्वासोंके विरुद्ध कुछ कहनेपर लड़ भी लेता था। उसकी बहुत-सी बातें मुझे याद हैं, उन्हींमेंसे कुछ बातें यहाँ दे रहा हूँ।

१

एक दिन मैं अपनी आराम कुर्सीपर लेटा कुछ पढ़ रहा था कि हेम अचानक मेरे सामने आकर खड़ा हो गया।

मैंने कहा, " आओ-आओ, बैठो। आज किधरसे भूल पड़े ? "

वह कुछ गुस्सेमें था। बोला, " मैं सीधा आया हूँ और पूछने आया हूँ कि आप मेरे दादा (पिताजी) की निंदा क्यों करते हैं ? "

मैं सीधा होकर बैठ गया और बोला, " मामला क्या है ? बैठो और शान्तिसे कहो। हुआ क्या है। "

वह बैठता हुआ बोला, " आप कहते हैं कि प्रेमीजी लोगोंको जाति-पाँति तोड़नेका उपदेश देते हैं, परन्तु खुदने उस उपदेशके विरुद्ध आचरण किया है। वह बड़े स्वार्थी हैं, आप ऊँचे बने रहना चाहते हैं और दूसरोंको नीचे धकेल कर सुधारक बननेकी डींग हाँकते हैं। "

मैंने कहा, " देखो भाई, इसमें पहला वाक्य मेरा है, दूसरा रिपोर्ट देनेवालेका। "

वह बोला, " यह भी गलत है कि दादा अन्य जातिकी लड़कीसे मेरा ब्याह करानेको राजी नहीं थे। उन्होंने तो मुझे अन्य जातिकी लड़की बतलाई भी थी, पर मुझे वह पसंद न आई। इसमें उनका क्या अपराध ? दादा अपने विचारोंके मालिक हैं, मैं अपने विचारोंका। "

" तो तुम अन्तर्जातीय ब्याह पसन्द नहीं करते ? "

" करता हूँ, पर लड़की तो पसन्द आनी चाहिये। गैर-जातिकी लड़कीसे ब्याह करनेका मतलब यह तो नहीं है कि चाहे जैसी लड़कीसे शादी कर ली जाय ? "

मैंने हेमचन्द्रकी आँखोंमें आँखें डालकर पूछा, "यही कारण है या और कुछ?"

थोड़ी देर वह सिर झुकाये बैठा रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, "और भी कारण है।"

"क्या?"

"मैं अपनी बऊको (माताको) प्रसन्न करना चाहता था। वह नहीं चाहती थीं कि गैर-जातिकी लड़कीसे मेरी शादी हो। आप जानते हैं कि दादाने मेरे कक्काका ब्याह एक विधवाके साथ कर दिया है। इससे जातिमें हमारा बड़ा विरोध हुआ और अपमान भी। पुरुष सब कुछ सह सकते हैं, परन्तु स्त्रियोंके लिये ऐसी बातें सहन करना बड़ी कठिन बात है। सुधारकी भावना दादामें जितनी प्रबल है, बऊमें उतनी नहीं। वह दादाका कहना मानती हैं, पर अपने मनको मसोस कर। इसीलिये मैंने यह निश्चय किया था कि बऊकी इच्छाके अनुसार चलूँगा। पर दादाको तो यह कह नहीं सकता था। मैंने निश्चय किया कि जितनी गैर-जातिकी लड़कियाँ मुझे बताई जायँगीं, सबको नापसंद करूँगा।"

"दूसरी बात यह हुई कि लोग कहने लगे कि अब प्रेमीजीके लड़केको परवारकी लड़की नहीं मिल सकती। परवारकी तो क्या, गैर जातिके अच्छे खानदानकी लड़की मिलना भी नामुमकिन है। इस बातने दादाको उत्तेजित कर दिया और वे भी परवारकी लड़कीसे ही मेरी शादी करनेका विचार करने लगे। यद्यपि उनको डर था कि सुधारके विचारोंके विरुद्ध चलनेसे लोग उनकी निंदा करेंगे, परन्तु अपने अनेक इष्ट मित्रोंकी सलाहसे उन्होंने मेरी शादी परवारकी लड़कीके साथ ही निश्चित की। बऊकी दुःखसे बुझी हुई आँखें आनन्दकी ज्योतिसे जगमगा उठीं। उसने बड़े प्रेमसे मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए कहा, अब निंदा करनेवाली औरतोंसे कह सकूँगी कि देखो, मेरे हेमको परवारकी ही लड़की मिली है और वह भी ऐसी वैसी नहीं, सोने जैसी।" कहते-कहते हेमचन्द्रकी आँखें चमक उठीं। उसके चेहरे पर आनन्दकी रेखाएँ दिखाई दीं।

हेमचन्द्रकी इस मातृभक्तिका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। मेरी माँ मुझे बचपन ही में छोड़कर चली गई थी। इसलिये न मुझे मातृस्नेह मिला, न मातृभक्ति ही। मैंने हेमचन्द्रकी पीठ ठोकी और कहा, "हेम, मैं तुमको बधाई

देता हूँ। यह भावना आदरकी वस्तु है। बुद्धिवाद इसके सामने तुच्छ है। आजसे मैं इस संबंधमें तुम्हारे दादाकी कभी आलोचना न करूँगा। इतना ही नहीं, आलोचना करनेवालोंको भी निरुत्साह करूँगा। ”

मेरी बात सुनकर हेमचन्द्रको ऐसी प्रसन्नता हुई मानो उसने एक किला फतह कर लिया हो। उसकी आँखोंमें पानी था।

अब तक यह बात किसीसे नहीं कही थी, पर अब हेम नाराजी या खुशीकी परिधिके बाहर जा चुका है। इससे उसे कहनेमें मुझे भय नहीं।

पीछेसे मुझे मालूम हुआ कि प्रेमीजीने अपने भाईकी शादी विधवाके साथ कराई थी, इसलिये परवार लोग और दूसरे दिगंबर-जैन काफी नाराज थे। जब एक परवारकी लड़कीसे हेमचन्द्रकी शादीकी बातचीत शुरू हुई तो बंबईसे स्व०...ने बुन्देलखंडके एक सुप्रसिद्ध पंडितको जिनका परवार समाजपर बहुत अधिक प्रभाव था, लिखा ‘ तुम प्रेमीजीके विरुद्ध परवारोंमें कोई आन्दोलन क्यों नहीं करते ? जान पड़ता है कि तुम भी धर्मद्रोही हो गये हो और विधवा-विवाहको ठीक समझते हो। यदि ऐसा नहीं है तो तुम क्यों प्रयत्न नहीं करते कि प्रेमीजीके लड़केको कोई लड़की न दे और अगर कोई देनेको राजी हो जाय, तो उस शादीमें कोई परवार-बच्चा शामिल न हो ! ’

इसपर पंडितजीने सागर, दमोह, कटनी, जबलपुर आदि स्थानोंमें जाकर पंचायतें एकत्र कीं और प्रेमीजीके लड़केकी शादीमें शामिल न होनेका जोरदार आन्दोलन किया, परन्तु इसका कोई विशेष फल नहीं हुआ। दमोहमें शादी हो गई और बड़ी शानके साथ हुई। सैकड़ों आदमी शादीमें शामिल हुए। विरोधी चुपचाप देखते रहनेके सिवाय कुछ न कर सके।

२

उस दिन चौपाटीपर हिन्दी प्रचार सभा, बम्बईके ऑफिसमें सभा थी। अध्यक्ष महोदयने कहा, “आजकल भाषा इतनी मुश्किल बनाई जा रही है कि लोग न आसानीसे बोल सकते हैं और न समझ ही सकते हैं। वर्धाकी सभाका नाम ‘ राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति ’, कितना कठिन है ! अगर इसका नाम ‘ हिन्दुस्तानी फैलानेवाली सभा ’ होता तो अच्छा था। ”

हेमचन्द्र बोला, “ हमें कोई आपत्ति न होती यदि इस हिन्दुस्तानी फैलानेकी बातके पीछे फारसी-अरबीके शब्दोंको फैलाने और संस्कृतके शब्दोंको चुन-चुन कर निकाल बाहर करने अथवा उनको अपभ्रंश करनेकी

भावना काम न करती होती। उदाहरणके तौर पर 'हिन्दुस्तानी बोर्ड' बंबईने जो किताबें मंजूर की हैं उनके नाम लिए जा सकते है। और तो जाने दीजिये, 'देश' जैसे सीधे-सादे शब्दको भी उसमें 'देस' करके लिखा है, परन्तु फारसी-अरबी शब्दोंका शुद्ध उच्चारण करनेके लिए अक्षरोंके नीचे लगनेवाले बिंदु भी कहीं छूटने न पाये। हिन्दू विद्यार्थियोंको पढ़ानेके लिये इस हिंदुस्तानीका उपयोग है, परन्तु मुसलमानोंको वही फारसी-अरबी शब्दोंसे भरी उर्दू भाषा सिखाई जा रही है और कहा जाता है यही हिन्दुस्तानी है। खेद इस बातका है कि हिन्दुस्तानी-टेक्स्ट-बुक-कमेटीके हिन्दू मेम्बर भी इस दावेको स्वीकार करते हैं। परन्तु हिन्दू यदि कहते हैं कि हमारी हिन्दी-भाषा ही हिन्दुस्तानी है तो उनका यह दावा अस्वीकृत होता है और इस दावेके विरुद्ध इस बोर्डके हिन्दू मेम्बर ही अधिक बोलते हैं। यह हमारा और राष्ट्रका दुर्भाग्य है......"

अध्यक्ष महोदय एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। हेमचन्द्रकी 'सहज हिन्दुस्तानी' पुस्तक मंजूर करानेमें इन्होंने भी मदद दी थी। अगर कोई व्यवहार-कुशल आदमी होता तो कभी ऐसी बात न बोलता, परन्तु हिन्दीका वह सेवक निर्भयतापूर्वक उनके मुँहपर साफ बातें बोल गया। उसने इस बातका विचार न किया कि ये मेरी पुस्तकको अगले साल स्वीकृत पुस्तकोंकी सूचीसे निकलवा सकते हैं। और हुआ भी यही। अगले साल 'सहज हिन्दुस्तानी' का दूसरा भाग मंजूर नहीं हुआ।

२

लगभग बीस-बाईस बरससे मैं हिन्दी प्रचारका काम कर रहा हूँ। इस काममें मेरे अनेक सहायक रहे हैं। हेमचन्द्र भी मेरा एक सहायक था। एक बार क्लासमें अलंकार बताते हुए उसने 'चंद्र-मुख' शब्दमें रूपक अलंकार बता दिया। अलंकार दूसरे सज्जन पढ़ाते थे, परन्तु किसी विद्यार्थीके पूछने पर उसने जवाब दे दिया था। जब मुझे यह बात मालूम हुई तो एकान्तमें मैंने उससे कहा, "'चन्द्र-मुख' रूपक नहीं होता, वाचकधर्मलुप्ता उपमा अलंकार होता है।"

हेमचन्द्र बड़ा नाराज हुआ। बोला, "क्यों नहीं हो सकता? अवश्य हो सकता है। इसका आधार तो अर्थ करनेवालेपर है।" मैंने अलंकारोंकी पुस्तकोंमेंसे कई उदाहरण बताए और कहा, 'मुख-चन्द्र' रूपक होता है, 'चन्द्र-मुख' नहीं। मगर वह किसी तरह इस बातको माननेके लिये तैयार नहीं हुआ।

तब मेरी जबानसे निकल गया, " जब तुम अलंकारोंके जानकार नहीं हो तो क्यों अलंकारोंके पंडितोंकी बात नहीं मानते ? "

" वे पंडित नहीं, मूर्ख हैं। " कहकर किताबें पटक कर वह चला गया। मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैंने सोचा, क्यों व्यर्थ उसे नाराज किया ? पर मुझे उससे स्नेह था। इसीसे ऐसी बात कह गया।

• दो टर्न वह क्लासमें पढ़ाने न आया तो मैं उसे मनाने गया। मैं कुछ कहूँ इसके पहले ही वह हँसकर बोला, " आप समझे होंगे कि मैं गुस्सेके मारे पढ़ाने नहीं आया, परन्तु यह सच नहीं है। इनकम्-टैक्सकी बलाने मुझे बही-खातोंमें इस कदर जोत रखा है कि सिर ऊँचा करनेका भी अवकाश नहीं है। आपने मुझे ' अजान ' कहा तब सचमुच ही बड़ा क्रोध आया था, परन्तु उसने मेरा उपकार ही किया। मैं अलंकार-शास्त्रका अध्ययन करने लगा हूँ। यह देखिए, पुस्तकें। " मैंने शैल्फमें संस्कृत, इंग्लिश और हिन्दीकी आठ-दस अलंकारकी पुस्तकें देखीं। मुझे आनन्द हुआ। मैंने कहा, " मैं तो तुमसे माफी माँगने आया था, पर अब देखता हूँ कि उसकी जरूरत नहीं है। अब तुम्हें अपनी भूल मालूम हो जायगी और "......वह बीचहीमें बोल उठा, " और आपके समान पुस्तकोंपर ही विश्वास रखनेवालोंको यह बता सकूँगा कि ' चन्द्र-मुख ' शब्दमें रूपक अलंकार भी हो सकता है ! "

मैंने कहा, " तथास्तु। ' पुंक्षु ' शब्दको सही सिद्ध करनेके लिये सारस्वत व्याकरण बना था। तुम ' चन्द्र-मुख 'को रूपक सिद्ध करनेके लिये एक नवीन अलंकार-शास्त्र बनाना। "

" और आपको उसी शास्त्रके अनुसार अलंकार सिखाना होगा। " कहकर वह हँसने लगा।

मैंने कहा, " जरूर सिखाऊँगा। " मगर क्या पता था कि दुर्दैव अन्तरिक्षमें खड़ा हमारे वार्तालापको सुनकर हँस रहा था !

उस धुनके धनीने बड़े उत्साहके साथ अलंकार-शास्त्रका आरंभ किया था और पूर्व निश्चयके अनुसार पुस्तकका बहुत-सा भाग लिख भी डाला, पर अदृश्यको स्वीकार न था कि हेम अपनी इच्छा पूरी करता।

४

जब हेमचन्द्र ' सहज हिन्दुस्तानी ' पुस्तक लिख रहा था, उस समयकी बात है। हम लोग नासिक गये हुए थे। हिन्दुस्तानीके संबंधमें बातें करते

हुए मैंने कहा, " करीब डेढ़-दो लाख शब्द संस्कृत, फारसी, अरबी और पुरानी हिन्दीके हैं। उन सबको और उनके अलावा प्रान्तीय शब्दोंको भी इस हिन्दुस्तानीमें स्थान मिल सकता है और मिलना चाहिए। हिन्दुस्तानी सभी प्रान्तवालोंके लिये बन रही है। इसलिये यह जरूरी नहीं है कि सिर्फ हिन्दी, संस्कृत और फारसी-अरबीके शब्दोंका ही इस भाषामें उपयोग हो। मान लो कि इनका ही उपयोग किया जाय, पर ये इतने अधिक हैं कि हरेक लेखक अपनी इच्छाके अनुसार शब्दोंका उपयोग करेगा। इसका फल यह होगा कि प्रान्तीय लोगोंको, जो हिन्दुस्तानी सीखते हैं या सीखेंगे, बड़ी दिक्कत होगी, और हिन्दुस्तानीका भी कोई स्थान निश्चित न होगा। इसलिये इस बातकी आवश्यकता है कि बेसिक इंग्लिशकी तरह बेसिक हिन्दुस्तानी तैयार हो। उसमें उर्दूमें आनेवाले शब्दोंका एक सेट हो और हिन्दीमें आनेवाले शब्दोंका भी एक सेट हो। उन दो सेटोंको हिन्दुस्तानीके प्रचारमें रस लेनेवाले विद्वानोंके पास भेजा जाय। वे जब उसको एकमतसे या बहुमतसे पसन्द कर लें तब उन्हीं दो सेटोंके समूहको हिन्दुस्तानी माना जाय और उन्हीं शब्दोंका उपयोग कर टेक्स्ट-बुक्स लिखाई जायँ।"

हेमचन्द्रने कहा " आप और मैं इस संबंधमें एक ही तरहके विचार रखते हैं। मैंने बेसिक इंग्लिशकी पुस्तकें भी मँगवाई हैं। मैं चाहता था कि इन्हींके आधारपर 'सहज हिन्दुस्तानी' तैयार करूँ। परन्तु जब मैंने उस काममें हाथ डाला तो मुझे शब्द चुननेका काम बड़ा कठिन मालूम हुआ, इसलिये यह इरादा छोड़ दिया और साधारण बोलचालके शब्दोंका उपयोग कर यह सहज हिन्दुस्तानी तैयार की है।" उस समय उसने मुझे एक बेसिक इंग्लिशकी पुस्तक भी बताई।

शब्दोंका लिंग बतानेके लिये उसने एक नया रास्ता चुना और अपनी 'सहज हिन्दुस्तानी' में उसका उपयोग किया। वह रास्ता यह था–(का) फूल, (की) किताब, इत्यादि। मैंने उससे कहा " यह क्या व्यर्थकी झंझट लगाई है! 'का,' 'की' शब्द क्यों हर शब्दके साथ जोड़ रहे हो?"

" आप लोगोंको, जो नये विचारोंसे भागते हैं, नई बात व्यर्थ मालूम होती है। दादाने भी यही कहा था। और भी एक-दो आदमियोंने इसके लिये मेरा यह कहकर उपहास किया था कि यह श्री हेमचन्द्रकी 'का-की' है। परन्तु आप लोग यह नहीं जानते कि फ्रेंच भाषामें यह तरीका बहुत

पहलेसे काम आ रहा है। करोड़ों फ्रैंच-भाषा सीखनेवालोंको यह तरीका व्यर्थ न मालूम हुआ तो हिन्दुस्तानियोंको यह क्यों व्यर्थ मालूम होना चाहिये ? मैं प्रसिद्धिप्राप्त मनुष्य नहीं हूँ। इसलिये मेरी बात आपको व्यर्थ मालूम होती है, पर यही बात यदि कोई लब्धप्रतिष्ठ लेखक कहता तो आप लोग उसको इस नई खोजके लिये शायद पी एच० डी० की डिग्री दे डालते ! " यह कहकर कुछ क्षण वह मेरी तरफ देखता रहा। फिर बोला " अनुभव बतायगा कि शब्दोंके लिंग ध्यानमें रखनेका यह तरीका व्यर्थ है या लाभदायक। मैं इसको जरूर रहने दूँगा।"

मैंने कहा " भाई, शान्तिसे इसका विचार करना चाहिये।"

वह बोला " मैंने बहुत विचार कर लिया है। आप मेरे दृष्टिकोणसे विचार कीजिये।"

आज जब हिन्दी सीखे हुए मराठी या गुजराती भाई बहिनोंको 'मेरा किताब' 'मेरा आँख' बोलते सुनता हूँ तब मुझे हेमचन्द्र याद आता है। मैं सोचता हूँ यदि हेमचन्द्रका शब्द–लिंग याद रखनेका तरीका चालू हो जाता तो ऐसी भूलें न होतीं।

भोजन करनेके बाद हम लोग फिर बेसिककी चर्चा करने लगे। अन्तमें इस निर्णयपर पहुँचे कि हेमचन्द्र बेसिक हिन्दीके लिये एक व्याकरण तैयार करे और इन पंक्तियोंका लेखक बेसिकके लिये शब्दोंका संग्रह करे। श्रद्धेय प्रेमीजीसे मालूम हुआ कि हेमचन्द्र अपना काम पूरा करके गया है। शब्दोंका संग्रह भी तैयार है, परन्तु उसको छपाकर प्रकाशमें लानेका उत्साह इन पंक्तियोंका लेखक अब अपनेमें नहीं पा रहा है।

५

कई बरस हुए, मैंने एक हिन्दुस्तानी डिक्शनरी लिखनेका काम आरंभ किया था। एक बार हेमचन्द्रसे इस संबंधमें चर्चा हुई। उसने बड़े उत्साहसे उसका स्वागत किया। उसने सलाह दी कि इस कोशमें संस्कृतके साथ फारसी अरबी शब्द भी सब आ जाने चाहिये। ऐसा करनेसे एक ही कोशमें हिन्दुस्तानीके सभी शब्द मिल सकेंगे। हिन्दुस्तानी जबानमें हिन्दू लोग संस्कृतके शब्दोंका अधिक उपयोग करेंगे और मुसलमान लोग फारसी-अरबीका। पढ़नेवाले इस कोशकी मददसे दोनों तरहके लेखकोंको अच्छी तरहसे समझ सकेंगे।

मुझे उसकी बात पसन्द आई । मैंने फारसी-अरबीके दो-तीन कोश मँगवाये और अब संस्कृत और हिन्दीके साथ उनको भी स्थान देता जा रहा हूँ ।

एक बार उसने पूछा, " कोशका कितना काम हुआ है ? "

मैंने कहा, " ऐसे ही धीरे-धीरे चल रहा है । "

वह बोला, " आप बड़े आलसी हैं । इस गतिसे तो आप सारी उम्रमें भी पूरा न कर सकेंगे । "

मैंने कहा, " भाई, पूरा करके छपानेके लिये पैसे कहाँ हैं ? कोई प्रकाशक इतना बड़ा कोश छापनेको तैयार होगा नहीं । अगर कोई हो भी गया तो... "

वह बोल उठा, " तो वह आपको आपकी इच्छाके अनुसार पैसा नहीं देगा । इसलिये आप उसे कोश न देंगे । यही बात है न ? "

मैंने कहा, " बात तो तुम ठीक कहते हो । "

वह बोला, " अगर पैसेके लिये आप यह काम करते हैं तो मैं कहूँगा कि आप इसे बंद कर दें । पैसे आपको तुरन्त कोई इस तरहके कोशके लिये न देगा । कारण, इस तरहके कोश जल्दीसे बिकते नहीं हैं । यदि नामके लिये और अध्ययनशील लोगोंको सहायता देनेके लिये यह कोश तैयार करते हैं तो जहाँ तक हो सके शीघ्र ही इस कामको पूरा कीजिए । मैं इसे छपाऊँगा । आपकी मेहनत और मेरा रुपया । हम दोनों बहुत दिनों तक हिन्दी संसारमें जीते रहेंगे । "

" तुमने अपने दादासे पूछ लिया है ? "

" अपने दादाको मैं जानता हूँ । वे कभी इन्कार न करेंगे । क्या आप नहीं जानते कि वे अपने सुख और स्वास्थ्यका बलिदान करके भी जो धन कमा रहे हैं, वह किसके लिए है ? सिर्फ मेरे लिये, मेरे आरामके लिये । हरेक किताब अब वे मेरी सलाहसे छपाते हैं । हरेक चीज अब मुझसे पूछ कर करते हैं । मेरे सिरमें जरा-सा दर्द हो जाता है तो दादा व्याकुल हो उठते हैं और डॉक्टरोंके पास दौड़े जाते हैं । एक-एक पैसेको सँभालनेवाले दादा मेरी तकलीफ मिटानेके लिये अपनी थैलीका मुँह खोल देते हैं । मेरी जरा-सी तकलीफ उनकी नींद हराम कर देती है । ऐसे मेरे दादा हैं । आपने मेरा तिरस्कार करनेवाले उनके ऊपरी रूपको देखा है, पर मेरे लिये जीवन भरकी कमाईको ही नहीं, बल्कि अपने जीवनको भी नष्ट कर देनेवाले उनके

अन्तरंगको नहीं जाना है। इसीलिये आप ऐसा सवाल करते हैं। वे नारियलके समान हैं। ऊपरसे कठोर, अन्दरसे मीठे।"

मैं तो उसके इस भाषणको सुनकर दंग रह गया। मैंने कई बार उसे यह कहते सुना था कि दादा मेरी कोई बात नहीं मानते। मेरे हर काममें दोष ही ढूँढ़ा करते हैं। मुझे कोई साहित्यिक काम नहीं करने देते। मैं जब कभी कुछ लिखता हूँ, वे गलतियाँ निकाल-निकालकर मुझे निरुत्साह कर देते हैं। मुझे वे सुबहसे शाम तक दुकानके काममें जुटा रहनेवाला बैल बनाना चाहते हैं। वगैरा-वगैरा।

मैं उसकी तरफ एकटक देख रहा था। दृष्टिमें अविश्वास था। वह इसे समझकर बोला, "मैंने कई बार आपके सामने अपने दादाकी बुराई की है, पर वह मेरी गलती थी। वे जो कुछ मुझे कहते रहे हैं, वह मेरे कल्याणहीके लिये। अब तक मैं इस बातको नहीं समझता था। अब मैं इसे समझता हूँ। अगर वे मेरे कामोंमें, और खासकरके साहित्यिक कामोंमें दोष न निकालते रहते तो न मैं अध्ययनशील बनता और न किसी कामको अच्छी तरहसे कर ही पाता। मेरे जैसे दादा बहुत ही कम लोगोंको मिलते हैं वर्माजी!"

उसका बोलते-बोलते हृदय भर आया था। उसकी आँखोंमें भी पानी चमकने लगा था। मैंने कहा, "तुम ठीक कहते हो भाई, तुम्हारे दादा जैसे पिता किसी भाग्यशालीको ही मिलते हैं।"

"और वर्माजी," वह बोला, "मैंने कई बार अपने इन्हीं दादाका अपमान किया है। एकान्तमें ही नहीं, दूसरे लोगोंके सामने भी। क्या आप नहीं समझते मेरे जैसा दुष्ट लड़का किसी विरलेहीको मिला होगा!" मुझे ऐसा महसूस हुआ मानों वह प्रायश्चित्त कर रहा है। मुझे क्या पता था कि वह अब दुनियासे संबंध तोड़नेकी तैयारी कर रहा है! मैंने कहा, "बस-बस, ये फिजूलकी बातें रहने दो। कोई मतलबकी बात करो।"

वह बोला, "मैंने मतलबकी बातें ही तो की हैं। ये बातें सुनकर आपका यह भ्रम जाता रहेगा कि दादा मेरी बात न मानेंगे। मतलबकी बातें तो हमेशा ही किया करते हैं, कभी-कभी दिलकी बातें भी तो होनी चाहिये। लड़ाई जोरोंपर है। हिंदुस्थान बर्मासे दूर नहीं। कदाचित् हमपर भी कभी बम पड़ें और फिर हम अपने दिलकी बात न कर सकें।"

ऐसा जान पड़ता है कि अपनी भूलोंकी तरफ कभी नजर न डालनेवाले

हेमसे थोड़े दिनोंमें आकर उसे ले जानेवाले यमने ही ये सारी बातें कहलाई थीं। शायद साफदिल लोगोंको मौतकी चढ़ाईका हाल पहलेसे ही मालूम हो जाता है।

"देखिए, हमने चालीसगाँवमें एक बंगला किराये लिया है। हम लोग वहीं रहेंगे। आप भी आइये। बड़ी अच्छी जगह है। मुझे बहुत पसन्द है। हवा पानी भी स्वास्थ्यकर है। मैं अपना बहुत-सा साहित्यिक काम वहाँ रहकर पूरा कर सकूँगा। यहाँ कुछ नहीं कर पाता..."

बीचमें ही मैंने टोककर परिहाससे कहा, "यूँ क्यों नहीं कहते कि बमका डर यहाँसे भगा रहा है!"

वह हँस पड़ा और बोला, "आपने भी तो दादाको सलाह दी थी कि यहाँसे चले जाइए। और सारा शहर ही जब भागा जा रहा है तब हम ही यहाँ क्यों रहें? हम दुनियासे अलग तो नहीं हैं न? और मौत..." (मौत शब्दका उच्चारण करते समय उसके चेहरे पर कुछ तिरस्कारके भाव थे) "वह जब ले जाना चाहेगी तब कहीं न छोड़ेगी। मैं उसके लिये हर समय तैयार हूँ।"

न मालूम क्यों मुझे मौतकी बात उस समय अच्छी नहीं लगी। मैं तो अकसर छोटे-बड़ोंसे कहता रहा हूँ कि मौतके लिये जो हर समय तैयार रहता है, वही बहादुर है, परन्तु यही बात हेमके मुँहसे उस दिन सुनकर न मालूम कैसा लगा। मैंने खड़े होते हुए पूछा, "तुम लोग कब जाओगे?"

"आठ दस दिनमें चले जायेंगे।" फिर शिकायतके स्वरमें बोला, "इन दादाका क्या किया जाय? कहते हैं कि तुम लोग चले जाओ। मैं अकेला यहीं रहूँगा। दादाको यहाँ अकेला ऐसी हालतमें छोड़कर जानेको जी नहीं चाहता। न मालूम मनमें कैसे-कैसे विचार आते हैं।"

मैंने कहा, "चिन्ताकी कोई बात नहीं है। सब ठीक ही होगा। दादा भी जरूर तुम्हारे साथ रहेंगे।"

६

चालीसगाँव जानेके दो रोज पहले हेम मिला था। बोला, "मैं परसों जा रहा हूँ। मैंने आपका आलस भगानेका एक तरीका सोचा है। कोश जितना तैयार हुआ है, मुझे दे दीजिये। मैं देखकर प्रेसमें भेज दूँगा। जब छपना शुरू हो जायगा तो आपको जल्दी पूरा करना ही पड़ेगा।"

मैंने कहा, " अभी तुम्हारी रायके अनुसार आरंभकी सूचीमें अरबी-फारसीके शब्द तो लिखने हैं । "

वह बोला, " वे पीछे परिशिष्टमें दे दिये जायेंगे । आप कल पहली कापी लेते आइए । "

मैं बोला, " भाई, मैंने जरूरी सामान उदयपुर भेज दिया है । उसमें कोश भी चला गया है । "

" अच्छा ! " कहकर वह एकटक मेरी तरफ देखने लगा । उस दृष्टिमें शिकायत थी या अविश्वास, मैं कुछ नहीं समझ पाया । वह उठते हुए बोला, " तब मैं चलता हूँ । शायद मैं आपका कोश न छपा सकूँ । " वह चला गया ।

उसका अंतिम वाक्य मुझे बहुत अखरा । मैंने सोचा, जनाबने अपने दादासे पूछा होगा और दादाने डाँट बताई होगी । इसी लिये इन्कार करनेका यह एक तरीका निकाल लिया । अरे भाई, मैंने कहा ही कब था कि तुम छपा दो ! मैं जानता हूँ कि बाजारमें खपतीं हैं प्रसिद्ध लेखकोंकी अथवा यूनीवर्सिटीके बड़े-बड़े डिग्रियोंवालोंकी पुस्तकें । मुझ जैसोंकी पुस्तक खरीदेगा कौन ? और न खपनेवाली पुस्तक प्रकाशक क्यों छापेगा ?

गर्मियोंकी छुट्टीसे लौटकर बंबई आया तो 'न्यू भारत प्रिंटींग प्रेस'के मालिक रघुनाथरावने कहा " वर्माजी, आपने प्रेमीजीके लड़के हेमचन्द्रकी बात सुनी ? "

मैंने पूछा, " क्या ? "

" उसका देहान्त हो गया । "

सुनकर मैं सन्न-सा रह गया । कुर्सीपर बैठा आकाशकी तरफ देखता रहा । आँखोंमें आँसू आये जान इधर-उधरकी बातें आरंभ कीं, फिर चला आया ।

" शायद मैं आपका कोश न छपा सकूँ " इस वाक्यका अभिप्राय उस दिन मैंने गलत समझा था और गलतीके सबब मैंने हेमपर दोष भी लगा दिया था । आज उसका सही अर्थ समझा हूँ । उसका अभिप्राय था कि मैं इस धराधामको छोड़कर जानेवाला हूँ, इसलिये मैं आपका काम न कर सकूँगा । अपनी भूलके लिये मुझे आज बड़ा पश्चात्ताप है ।

बंबई १५-१-४४]

११

अतीतकी स्मृति

प्रो० जगदीशचन्द्र जैन शास्त्री एम० ए०

जब मैं बंबईमें आया, मेरा सबसे पहला मित्र हेमचन्द्र था। मैं जो कुछ अखबारके लिये लिखता, हेमचन्द्रको दिखा लेता। उसे देखकर वह मुझे लेखक बननेके लिये उत्साहित करता। कभी प्रेमीजी हम दोनोंको साथ देख लेते तो कहते, "पंडितजी, आप भी क्या इससे सलाह लेते हैं? इसे क्या आता-जाता है? कहाँ आप, कहाँ यह! यह किस लायक है!" मेरे दिलमें प्रेमीजीके ये वाक्य चुभ जाते। मैं कहता, "यह बात नहीं, प्रेमीजी, आप जानते नहीं, हेमचन्द्रकी आप कदर नहीं करते, शायद इसलिये कि आप उसके पिता हैं। आगे चलकर यह बहुत-कुछ करेगा।" इसपर भोला हेमचन्द्र बड़ा खुश होता और कहता, "दद्दा मुझे हमेशा यही कहा करते हैं।" इस तरह हम दोनों एक दूसरेके अधिक सन्निकट आते गये।

जब मेरा हेमचन्द्रसे प्रथम परिचय हुआ तो मैं समझता था कि हेमचन्द्र बम्बईमें रहा है, इसलिये बहुत-सी बातें जानता है, परन्तु ज्यों ज्यों मैं उसके घनिष्ठ परिचयमें आया, मुझे मालूम हुआ कि उसकी योग्यता बड़े बड़े डिग्रीधारियोंसे कहीं अधिक है। मानसशास्त्रका उसका गहरा अध्ययन था। सेक्स साइकोलोजी (यौन-मनोविज्ञान) के ऊपर वह हेवलोक ऐलिस, फ्रायड आदि विद्वानोंके सब ग्रन्थ पढ़ गया था। मार्क्सका तो वह बड़ा भक्त था। साम्यवादके ऊपर उसने बहुत-कुछ पढ़ा-लिखा था। अपने दद्दाको जब वह प्राचीन ग्रन्थोंकी छानबीन करनेमें व्यस्त देखता तो अक्सर बुन्देलखण्डीमें कहा करता, "दद्दा, तुम भी क्या गड़े मुर्दे उखाड़नेमें अपना समय खराब किया करते हो, इसमें क्या रक्खा है कि पुष्पदंत फलां सदीमें हुए, अमुक ग्रन्थ जाली है, अमुक श्लोक क्षेपक है? इन सब बातोंसे समाजका कोई लाभ नहीं। आप क्यों 'माणिकचन्द्र-जैन-ग्रन्थ-माला'में मार्क्सका साहित्य प्रकाशित नहीं करते?" मैं हेमचन्द्रकी बातकी दाद देता, प्रेमीजी मुस्कराते हुए कहते, "देखा पंडितजी!"

हेमचन्द्रने वैद्यक और डाक्टरीका बहुत अच्छा अभ्यास किया था। आधुनिकसे आधुनिक दवाका नाम उसे मालूम था। बहुतोंकी चिकित्सा उसने की थी, उसके घरपर जब कोई बीमार हो जाता तो वही चिकित्सा करता था। जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, दुग्ध-चिकित्सा आदिका तो उसने विशेष अध्ययन किया था। योग, प्राणायाम आदिके उसने अनेक प्रयोग किये थे और दूसरोंसे करवाये थे। हस्त-सामुद्रिक-शास्त्रका तो वह पंडित था। साहित्यमें उसने कविता अलंकार आदिका अध्ययन किया था। कोई छोटी-सी बात होती तो उसकी छान-बीन करनेके लिये वह आकाश-पाताल एक करनेको हमेशा उद्यत रहता। वह बेसिक इंग्लिशके ढंगपर 'बेसिक हिन्दुस्तानी' तैयार कर रहा था।

उसके मित्रोंको जब किसी चीजकी आवश्यकता होती तो वे हेमचन्द्रके पास पहुँचते। एक बार मैं सीनेकी मशीन खरीदना चाहता था। पहुँचा हेमचन्द्रके पास। बस वह अपना सब काम बीचमें छोड़कर मेरे साथ हो लिया और दसियों दुकानें छान डालीं।

* * * *

हेमचन्द्र बड़ा सहृदय था। उसकी आत्मा कोमल थी और कपट तो उसको छू तक नहीं गया था। यही कारण था कि लोग उसके गुणोंकी पहचाने बगैर उसकी हँसी उड़ाया करते थे। मगर हेमचन्द्र इन सब बातोंकी परवा न करता था। भोलापन उसमें हद दर्जेका था और इस कारण वह कभी-कभी हास्योत्पादक स्थिति उत्पन्न कर देता था। एक बार श्मशानकी बात है कि प्रेमीजीके हाथमें मधुमक्खी काट गई। लोगोंने कहा कि किसीके पास दियासलाई हो तो काटेपर लगा दो। हेमचन्द्रने झटसे अपनी जेबसे दिया-सलाई निकाली और उसे जलाकर प्रेमीजीके हाथके पास ले आया! इसपर श्मशानमें भी लोगोंकी हँसी न रुक सकी।

हेमचन्द्र अपनी धुनका बहुत पक्का था। जो बात उसके दिलमें आजाती, उसे करके ही छोड़ता। उसके निश्चयसे उसे डिगाना बड़ी टेढ़ी खीर थी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि दुकानको आगे बढ़ाना चाहिये। बस फिर क्या था, टाइपकी मशीन खरीद ली, गद्देदार कुर्सियाँ, मेजें जमा दीं और अँग्रेजीमें पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। पूछनेपर बोला, "मैं दुकानको अप टू डेट बनाना चाहता हूँ। हम लोग क्या अँग्रेजी कम्पनियोंसे कम हैं?"

हेमचन्द्रसे समाजको बड़ी-बड़ी आशाएँ थी। उसके हृदयमें नवयुवकोंका उत्साह था, भावुकता थी और आवेग था। अपने थोड़े-से जीवनमें उसने अपनी भावनाओंको कार्यान्वित करनेके लिये बहुत-कुछ किया, बहुत भटका और बहुत धूल छानी। इस उमरमें इतना बहुत कम आदमी कर पाते हैं। यह सब होनेपर भी उसे अभिमान न था, गर्वका लवलेश न था। अपनी समालोचना, टीका-टिप्पणी सुननेके लिये वह हमेशा तैयार रहता था।

हेमचन्द्रको फाउनटेन पेन खोनेकी बहुत आदत थी। उसने अनेकों कीमती कलम खोये होंगे। दद्दा बहुत झल्लाते मगर हेमचन्द्रके मुखपर जरा भी विकार न आ पाता। वह हँसता-हँसता कहता, "दद्दा, हम क्या करें! अब खो गया तो खो जाने दो। तुम इतनी चिन्ता क्यों करते हो!" हेमचन्द्रकी यह निस्पृहता देखकर मैं अवाक् हो जाता।

हेमचन्द्र आज नहीं है। वह अपने वृद्ध पिता तथा पत्नी और बच्चोंको रोता छोड़ इस दुनियाके वैभवको लात मार कर चला गया है, परन्तु वह अपने पीछे बहुत-कुछ छोड़ गया है। अपने बाहुबलसे उसने जो कमाया जो ज्ञानसंचित किया, वह प्रकाशित होनेपर चिरस्थायी होगा और जिनके सम्पर्कमें वह आया उनके लिये तो उसकी स्मृति अमर है।

बंबई]

१२

स्वर्गीय हेमचन्द्र

पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

श्रद्धेय पं० सुखलालजीसे जब कभी प्रेमीजीकी चर्चा होती थी, कहते थे, “हेमचन्द्र प्रेमीजी और अपनी माँकी साधुता, सरलता और सहृदयताके परमाणुओंकी प्रतिमूर्ति है।” इस समय तक न तो मैं श्रद्धेय प्रेमीजीसे ही मिला था, न हेमचन्द्रसे ही।

पूनासे न्यायकुमुदचन्द्रके पाठान्तर लेकर बम्बई आया। हीराबागमें दुकान-पर छरहरे प्रसन्नमुख युवकसे पूछा, “प्रेमीजी कहाँ हैं?” उसने सस्मित कहा, “आइए पंडितजी, दादा अभी आते हैं। आपकी बाट तो कलसे देख रहे हैं।” हमउमर हेमचन्द्रके इस प्रथम परिचयके चन्द शब्दोंने उसी समय इतनी आत्मीयता उत्पन्न कर दी कि प्रेमीजीसे भी अधिक हेमचन्द्रसे बात करनेको मन होता रहता था। हम दोनोंकी दमोहमें ससुराल होना, दोनोंकी पत्नियोंका चम्पा नाम, फिर उनमें कुछ रिश्तेदारी, इन वामांगी संबंधोंकी पुटने बाहर भीतर एकमेक रसमय वातावरण उत्पन्न कर दिया था। प्रेमीजी जैसे सरल, भद्र, विद्यानुरागी, नेक सलाह देनेवाले निष्कपट व्यक्ति हैं, वैसे ही उनका वारिस हँसमुख, विनोदी, सच्चा मोदी, आतिथ्यमें सदा तत्पर, यथार्थवादी और ज्ञानकी जीवन्त शाखाओंका अध्ययन करनेवाला था। अपने दादाके प्रिय विषय इतिहासमें भी, जिसे वह गड़े मुर्दे उखाड़ना कहता था, उसकी कम दिलचस्पी न थी। क्या चिकित्सा-शास्त्र, क्या शरीर-विज्ञान, क्या साहित्य और तत्त्वज्ञान, सभी विषयोंमें उसकी साधिकार चर्चा करनेकी रुचि मेरे लिये ईर्ष्याकी वस्तु थी।

प्रेमीजीका नई पीढ़ीके प्रति आशापूर्ण अपार स्नेह, हेमचन्द्रका श्रद्धा आदि निगूढ़ भावोंसे युक्त सहज व्यवहार, चम्पाका उत्साहपूर्ण आतिथ्य, इन सभीने मेरे बंबईके इस प्रवासको चिरस्मरणीय बना दिया था। प्रेमीजीके परिवारमें सुख, शान्ति और संस्कारिताका दरिया बह रहा था। जो आता, उनके भाग्यको सराहता जाता। उनकी पुत्रवधूके उल्लासमय आतिथ्य और

हेमचन्द्रकी सरलता, निरभिमानिताकी एक छाप लेकर जाता। प्रेमीजीके लिये तो हेमचन्द्रने अपनी माँकी जगह ही ले ली थी। स्नेह या प्रेमकी जो धारा उस ओर थी, वह भी यहीं आकार घनीभूत हो गई थी। इस परिवारमें कैसे इस प्रकारकी सुसंस्कृति आई, यह सभी लोगोंकी चर्चाका विषय था।

भोजनके समय हेमचन्द्रने कहा, "पंडितजी, आपके पत्रोंकी भाषा और लिपिसे मैंने जो आपके स्वरूपकी कल्पना की थी, वह नब्बे प्रतिशत ठीक निकली।" भोजनके बाद हाथ देखनेकी बारी आई। मेरे हाथकी रेखाओंसे उसने मेरे उन निगूढ़ भावोंका सजीव वर्णन किया, जिन्हें शायद मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं जान सकता था। साश्चर्य मेरे मुँहसे निकल पड़ा, "हेमचन्द्र, *तुम तो सचमुच कलिकालसर्वज्ञ हो।" हम लोग इतने हिलमिल गये थे कि* हेमचन्द्रको या मुझे कोई भी बात करनेमें संकोच नहीं होता था। आपसी बातचीतमें हम लोग जीवनके उस रसमय भागमें जा पहुँचते थे, जो वामांगका ही दूसरा अनुभव-क्षेत्र कहा जा सकता है। कामशास्त्रका सांगोपांग अध्ययन तथा उसकी आवश्यकता पर अटूट विश्वास हेमचन्द्रमें मुझे देखनेको मिला।

हेमचन्द्रका जीवन प्रयोगका जीवन था। भोजनके प्रयोग तो उनके चलते ही रहते थे।

वह धुनके पक्के योगी थे। योगशास्त्र उनके प्रयोग और अध्ययनका खास विषय था। संभवतः इस प्रयोगप्रियताने ही उनके जीवनको अकाल काल-कवलित करा दिया।

एक बार मोदीजी काशी आए। पंडितानीजीसे उनका बेतकल्लुफ हेलमेल हो गया। एक दिन सबेरे आठ बजे आपका विटामिन-शास्त्रपर प्रवचन हो रहा था। श्रोता थीं पंडितानीजी। पंडितानीका आग्रह था कि ताजी रसोई अभी तैयार हुई जाती है, सो खाकर घूमने जाना। आपका कहना था कि नहीं, बासी पूड़ी, दही, टमाटर, अमरूद, मूली, हरा धनियाँ, हरी मिर्चे और कुछ सूखे मेवे जो प्रस्तुत हैं, वही काफी हैं। आखिर आपने किसीकी न मानी और स्वयं विटामिनपूर्ण सलाद बनाया, और उसे खाते समय विटामिन-तत्त्वका विवेचन करना प्रारम्भ किया। मैंने कहा, "मोदीजी, इतनी क्या जल्दी थी?" बोले, "पंडितानीजीको ठंडमें क्यों तकलीफ दी जाय?" फिर उन्होंने मुझे एक पतेकी बात बताई कि परदेशमें किसीके यहाँ भोजनका प्रोग्राम ही नहीं रखना चाहिये। इसमें बहुत समय व्यर्थ ही बरबाद होता है और सब कार्यक्रम तो रखे रह जाते है भोजन हीं हाथ रह जाता है!

आज न पंडितानी है और न हेमचन्द्र। दोनोंको स्मृति ही शेष है।

उस दिन अचानक 'जैनमित्र' में पढ़ा—हेमचन्द्रका स्वर्गवास हो गया। बार बार आँखें फाड़ फाड़कर हृदयको थामे उस समाचारको देखा। विश्वास नहीं हुआ। पर विश्वास वास्तविक घटनाको तो नहीं बदल सकता। साहित्य-तपस्वी प्रेमीजी, चम्पा और जस्सू-पस्सू सभी आँखोंके सामने आ गये। नियतिकी गतिकी अलंघ्यताका विचार ही ऐसे समय धीरज बँधा सकता है। हमारे लिये तो यह घटना हृदयके द्वितीय स्तरकी चीज थी, पर प्रेमीजीके लिये तो यह ऐसा वज्रपात था कि आज भी उनकी समझमें नहीं आता कि वह क्यों जी रहे हैं।

काल एक ऐसा महावैद्य है, जो बड़े-से-बड़े घावको भी पूर देता है। उसका एक एक क्षण घटनाओंकी अनुभूतिपर परदा डालता जाता है और उन्हें विस्मृतिके गहरे गह्वरमें विलीन करता जाता है। लेकिन प्रेमीजीका घाव ज्योंका त्यों बना है। आज भी वह कहते हैं, "मैं क्यों जीता हूँ।" उन्हें अपना जीव एक समस्या हो गई है। उनका सोने-सा परिवार, जो एक समय लोगोंकी ईर्ष्याकी वस्तु था, अब दयाका पात्र हो गया है। सब कुछ है, पर वह चेतना, वह संजीवन नहीं, वह ज्योति नहीं जिसके द्वारा सब अनुप्राणित थे, प्रकाशित थे, सचेतन थे। उस अमर ज्योतिके दो नन्हें-नन्हें दीपक हैं, जिन्हें स्नेह-प्रपूरित करनेके लिये आज बूढ़ा प्रेमी जीवन धारण किये हुए है। चम्पा अपने लालोंको देख-देखकर ही उस दुःखभारको ढो रही है। प्रेमीजीसे मैंने कहा, "आशा ही जीवन है। प्राणिमात्रका जीवन-योनि-प्रयत्न सतत चालू रहता है, जिससे यह जीवन-दीप प्रबल झकोरोंमें भी टिमटिमाता रहता है।" प्रेमीजीकी इस बातमें तथ्य है कि मुझे अब अपने जीवनेमें अपने लिये कोई आकांक्षा नहीं है, पर जस्सू-पस्सूकी आशासे मैं जीवन पा रहा हूँ। वे ही मेरे जीवनके आधार हैं। आज प्रेमीजीकी आँखोंका खारा पानी रोके नहीं रुकता। उनका जी भर आता है यह कहते-कहते कि मैंने हेमको नहीं पहचाना। आशा ही आशामें निराशाके अतल गह्वरमें जा गिरा हूँ। सचमुच मनुष्यकी दृष्टि पासको और निकटतमको नहीं देखती, दूरको ही देखती है। हेमचन्द्र भी कभी-कभी कहते थे, "पंडितजी इन दादाको तो मेरा लिखा पसन्द नहीं आता। हमेशा उसमें दोष-ही-दोष निकालते हैं।" भोला हेमचन्द्र क्या जानता था कि उसके प्रयत्नोंको देखकर उसके बूढ़े दादाके रोम-रोम पुलकित होता था? उनका एक-एक अणु-परमाणु भीतर ही भीतर प्रमुदित हो उठता था।

और चम्पा ! उस बिचारीकी दशा तो आज डालसे टूटे कुसुम जैसी है। इस पंक्तियोंके लिखते समय वह अस्पतालमें है। कलकी ही बात है, उसने कहा, " पंडितजी, बड़ा जी घबड़ाता है। ये प्राण क्यों इस देहमें टिके हैं ? "

मैंने कहा, " चम्पा, अभी जस्सू-पस्सूके लिये तुम्हें बहुत जीना है। घबराकर हिम्मत न खोओ। " लेकिन वह तो उसके हृदयके घावको छूना था। वेदना उसकी आँखोंसे बह निकली। मुझसे न रहा गया, 'यशोधरा' हाथमें थी। उसके राहुलवाले एक-दो प्रकरण सुनाये। घाव फिर दब गया, पर यह तो ऐसा घाव है जो जीवनके साथ ही मिट सकता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तकी इन पंक्तियोंमें चम्पाका जीवन पूरी तरह उतरा हुआ है:—

" अबला जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचलमें है दूध और आँखोंमें पानी। "

अंतर केवल इतना है कि यशोधराके बुद्ध पुनरागामी थे। उनकी आशा थी। चम्पाका सर्वस्व सदाके लिये चला गया है।

प्रेमीजीको अपने स्नेहियों, भक्तों और उपकृतोंकी कमी नहीं है। उन्होंने अपने जीवनमें कितनोंहीका उत्थान किया, अनेकोंको सहारा दिया। आज भी वे अपने कार्यमें संलग्न हैं, पर अपने दुखको भुलानेके लिये।

सोचता हूँ कि मनुष्य-जीवन क्या है और किस लिये ? संसारके प्रत्येक जीवित तत्त्वकी अपनी अपनी दुनिया है। वह उसीमें अपना अथ और इति करता है। प्रेमीजी कहा करते हैं, " ज्ञानी होना ही बुरा है। अज्ञानी अच्छे, जिनपर दुखोंका स्थायी असर नहीं होता। " वास्तवमें संवेदनशीलता और भावुकताका विकास स्मृतियोंको ताजा रखता है। प्रेमीजी इसके अपवाद नहीं हैं। वे अपनी घनीभूत पीड़ाको भुलानेके लिए अपनी संवेदनशीलताको यदि दोष देते हैं तो कोई अचरजकी बात नहीं है। मनुष्यको स्वयं अपना स्वरूप ही अज्ञेय है। वह स्वयं एक समस्या है, जिसे हल करते करते ही वह शान्त हो जाता है।

प्रेमीजीके सामने तो अभी जस्सू-पस्सूकी समस्याएँ हैं, जिन्हें वे सुलझाएँगे। ये दोनों ही सहारे हैं, जिन्हें देख-देखकर यह बूढ़ा भार ढोये जा रहा है।

महावीर विद्यालय, बंबई
५ जनवरी '४४।

१३

भाई हेमचन्द्रकी यादमें

श्री पद्मसिंह शर्मा 'साहित्यरत्न'

भाई हेमचन्द्र मोदीसे मेरा प्रथम परिचय अप्रेल सन् ४० में हुआ। उस समय मैं सूरतमें था, और 'राष्ट्र-भाषा-अध्यापन-मन्दिर' काम करता था। श्री भानुकुमार जैनके आग्रह और अपनी बम्बई देखनेकी तीव्र लालसाने ही मुझे बम्बई ले जा पटका। इतने बड़े शहरमें पहुँचकर देखा कि वहाँ साधारण क्या, असाधारण आदमी तककी भी पूछ नहीं है। मैं भानुकुमार-जीके साथ उनकी दुकानमें जाकर बैठ गया। वे अपना काम करते जाते थे और मेरे जी-बहलावके लिये मुझसे बातचीत भी। राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलन, हिन्दी-साहित्यकी गति-विधि, सत्साहित्यके पठन-पाठनकी समस्यासे होते-होते हम लोग प्रकाशकोंपर आ पहुँचे। मैंने प्रकाशकोंकी बुराई करना आरम्भ किया और उनकी बेजा हरकतोंकी खबर ली। भानुकुमारजीने उसी समय मुझे बताया कि यह बात नहीं कि सभी प्रकाशक ऐसे ही होते हैं और उसी समय उन्होंने श्री नाथूरामजी प्रेमी और उनके 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' कार्यालयका संक्षिप्त-सा परिचय दिया।

थोड़ी देर बाद वे मुझे अपने साथ श्री प्रेमीजीसे मिलाने ले गये। उस समय प्रेमीजी शरत्-साहित्यके किसी भागका प्रूफ पढ़ रहे थे और इतनी तल्ली-नतासे अपना काम कर रहे थे कि हम लोगोंके पास पहुँचनेपर भी उनका ध्यान न बँटा। भानुकुमारजीने मुझे उनसे परिचित कराया। मुझे खूब याद है, उस समय मैंने श्री प्रेमीजीमें सरलता और स्नेह दोनोंके साथ आत्मीयताके दर्शन किये। वे हिन्दी-प्रकाशकोंके लिये आदर्श हैं और कर्तव्यपरायणतामें उनकी बराबरी बहुत कम लोग कर सकते हैं। जीवनमें श्रम ही उनका ध्येय रहा है। जैन-साहित्य और हिन्दी-साहित्यके लिये सृजनात्मक तथा प्रकाशन-संबंधी कार्य करनेमें उन्होंने सोलह आने ईमानदारी दिखाई है।

उनके पास पाँच-सात मिनट बैठनेके बाद भानुकुमारजी मुझे उनकी दुकानके भीतरके कमरेमें ले गये। वहाँ एक मेजपर एक युवक कुछ लिख रहा था।

भानुकुमारजीको देखते ही उसने बड़ी आत्मीयतासे बैठनेके लिये संकेत किया। परिचय और थोड़ी-सी इधर-उधरकी बातचीतके बाद हम लोग आपसमें घुल-मिल गये। यही समय था जब भाई हेमचन्द्रसे मेरा परिचय हुआ। इससे पहले 'हंस' में मैंने उनका एक लेख संभवतः फ़्रायडके विषयमें पढ़ा था। वह लेख मुझे बड़ा पसन्द आया था। इतना गंभीर और अध्ययनपूर्ण लेख मैंने फ़्रायड पर अभी तक कोई नहीं पढ़ा। उस लेखके लिखनेके लिये कितने अधिकारपूर्ण अध्ययनकी आवश्यकता थी, यह कल्पना कर सकना मेरे लिये कठिन है। मैंने परिचयके समय उनसे लेखके विषयमें जिक्र किया तो उन्होंने बताया कि उस विषयमें उनके पास कई पुस्तकोंका मसाला इकट्ठा हो गया है।

यहाँ अपनी मूर्खताकी बात भी कह दूँ। भाई हेमचन्द्रके नामके साथ 'मोदी' देखकर मैं उन्हें पारसी समझता था। उनसे मिलनेपर ही मेरा यह भ्रम दूर हुआ।

जून ४० में स्थायी रूपसे 'बम्बई-हिन्दी-विद्यापीठ'में पहुँच गया। बम्बईका जीवन बड़ा व्यस्त है और वहाँ आदमी गप्पें मारकर पेट नहीं भर सकता। यों तो कहीं भी गप्पोंसे पेट नहीं भर सकता, परन्तु बंबईमें तो उनके लिये स्थान ही नहीं है। ऐसे व्यस्त जीवनके शहरमें, जहाँ बराबरके कमरेके आदमी भी सालों अपरिचित रह जाते हैं, कोई किसीको क्या समझ सकता है? फिर भी हमपेशा लोगोंकी मेल-मुलाकात बराबर होती ही रहती है।

अबकी बार मेरे स्थायी रूपसे बंबई पहुँचनेपर भाई हेमचन्द्रको और मुझे भी कितनी प्रसन्नता हुई, यह मैं ही समझ सकता हूँ। यद्यपि वे अपने पिताकी ही भाँति कामकी बातें अधिक करते थे और शायद ही समय बेकार खोते हों, फिर भी उनके अपने मनके आदमी मिलनेपर वे घंटों बातें कर सकते थे। मुझे याद है कि एक दिन वे अपने कमरेमें बैठे बहुत जरूरी काम कर रहे थे। मैं उस समय कुछ परेशान-सा था। उनके कमरेमें जाकर बैठा तो उन्होंने अपना काम छोड़ दिया और बातें करने लगे। मैं बातोंमें अपनी परेशानी भूल गया। उनकी बातोंमें उनके गंभीर अध्ययनकी छाप थी। उसी समय मुझे पता चला कि योगका उनका अभ्यास किसी भी साधारण योगीसे कम न था और उसकी बदौलत उन्हें खतरा भी मोल लेना पड़ा था। जैसा मैं समझ सका, वे किसी भी कामको जब तक स्वयं नहीं कर लेते थे, तब तक उन्हें लिखेपर विश्वास नहीं होता था।

* * * *

भाई हेमचन्द्रका सबसे बड़ा गुण उनकी सरलता थी। उनको अभिमान छू तक नहीं गया था। उनके इस गुणका पता मुझे तब चला जब मुझे प्रेमीजीने सुदर्शनजीकी 'सबकी बोली' के कुछ पाठोंको उर्दूमें अनुवाद करनेके लिये दिया।

सी० पी० टैंककी उस अन्धकारमयी कोठरीकी स्मृतियाँ मुझे कभी नहीं भूलतीं। उसी कोठरीमें भाई हेमचन्द्रके साथ विभिन्न विषयोंपर बातें हुई थीं और हम लोग अत्यन्त निकट आ गये थे। उस कामके दौरानमें भाई हेमचन्द्रने जो सहृदयताका परिचय दिया था, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

* * * *

जनवरी ४१ में वे देश किसी कामसे चले गये और दो महीने बाद मार्चमें मैं भी आगरे चला गया। उसके बाद कोई खबर मुझे उनकी नहीं मिली। जब खबर मिली तो यह कि वे अब नहीं रहे। श्रद्धेय पंडित श्रीरामजी शर्माके इस कथनपर सहसा विश्वास नहीं हुआ। यद्यपि उनसे मिले दिन हो गये थे। फिर भी मन यह नहीं मानता था कि उन्हें कुछ हो सकता है, परन्तु मनको भी आखिर कालके आगे झुकना पड़ा।

तब मैंने उदासीमें डूबे-डूबे सोचा कि जीवनमें सचाईके साथ जीनेवाले व्यक्तियोंको ही इन प्रहारोंको सहना पड़ता है। हम लोगोंने तो हिन्दीके एक प्रौढ़ युवकको खोया, लेकिन प्रेमीजीका तो जीवन-सर्वस्व ही कुटिल कालने चुरा लिया। ऐसे तपःपूत व्यक्तिको छलकर दैवने न्याय नहीं किया। भाई हेमचन्द्रकी याद जिन्दगीभर नहीं भूलेगी।

आगरा]

१४

हेमचन्द्र मोदी

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

आज जब मैं अपने अतीतकी बातोंका स्मरण करता हूँ तब मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि मेरा यह क्षुद्र जीवन कितने लोगोंके जीवनसे सम्बद्ध हो गया है। जिनसे कभी मेरा परिचय तक नहीं था, जो मेरे लिये कभी बिलकुल अज्ञात थे, जिनके संबंधमें मैंने कभी कोई बात सोची तक नहीं थी, वही सहसा मेरे जीवनमें आ गये और एक अक्षय स्थान बनाकर चले गये। पहले जिनसे मेरा दृढ़ सम्बन्ध था, घनिष्ठता थी, आत्मीयता थी, स्नेह था, सौहार्द्र था वे आज मुझसे ऐसे पृथक् हो गये हैं कि मानो उनसे कभी मेरा परिचय तक न था। जीवनके महासागरमें हम लोग काष्ठकी तरह निश्चेष्ट बहते जा रहे हैं। कभी कोई लहर किसीको हमारे पास लाकर फेंक देती है तब कुछ समय तक हम लोग साथ-साथ बहते हैं। फिर एक लहर न जाने कहाँसे आकर हम लोगोंको अलग कर देती है। अभी तक मेरे जीवनमें ऐसे कितने ही लोग आये और गये। संयोग-वियोगकी ये घटनाएँ अवस्था-वृद्धिके साथ अब इतनी साधारण हो गई हैं कि किसीकी सुधि आनेपर क्षणभर रुक कर, एक निःश्वास लेकर, मैं फिर अपने कार्योंमें व्यस्त हो जाता हूँ। कैसी भी दुःखद घटना क्यों न हो, काल उसपर विस्मृतिका प्रलेप लगाकर कुछ समयके बाद सहज बना ही देता है। पहले जो बात बड़ी दुःखद प्रतीत होती है, वही फिर एक मधुर स्मृति बनकर अपनी कठोरताको कोमल कर देती है। हम लोग कालके वज्राघातको सह लेते हैं, भाग्यकी दुर्दमनीयताको स्वीकार कर लेते हैं, अदृष्टिकी दुर्वार शक्तिको मान लेते हैं और चुपचाप सभी प्रकारके कष्ट और व्यथा सहकर एक दिन स्वयं इस संसारको छोड़कर उसी कालके अज्ञात राज्यमें प्रविष्ट हो जाते हैं।

सन् १९३५ के अप्रेलमें मुझको बम्बई जाना पड़ा। मेरे अनुरोधसे श्रीयुत प्रेमीजीने सी० पी० के लिये कुछ पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करनेका निश्चय किया। उन्हीं पाठ्य-पुस्तकोंके सम्बन्धमें मैं पहली बार बम्बई गया।

तभी मैं स्वर्गीय हेमचन्द्र मोदीसे परिचित हुआ। पहले दिन मैं उनकी बातचीतकी मधुरता और व्यवहारकी सरलतापर मुग्ध हो गया। लगभग बीस दिन तक बम्बईमें रहा। उन बीस दिनोंमें उन्होंने मेरी बड़ी सेवा की। अपरिचित स्थानमें अपरिचित लोगोंके बीच रहना मेरे लिये साधारण बात नहीं। मुझे जब कभी ऐसा अवसर आता है तब मैं कुछ घबरा-सा जाता हूँ। परन्तु मुझे प्रेमीजीके यहाँ जरा भी असुविधा, जरा भी घबराहट नहीं हुई। मैं उनके छोटे-से परिवारमें ऐसा मिल गया कि मानो मैं भी उन्हींके परिवारका एक व्यक्ति हूँ। मैं उन्हींके घरमें खाता-पीता था और वहीं सोता था। मेरा सारा भार हेमचन्द्रपर था। मेरी सभी बातोंपर वही ध्यान दिया करते थे। सुबह उठते ही नहा धोकर जब मैं आता था तब वही मुझे नीबूका शरबत पिलाते थे। उसके बाद मैं दो-तीन घण्टे कुछ काम किया करता था। ग्यारह बजेके लगभग हेमचन्द्र और प्रेमीजी दुकानसे लौटते थे। तब मैं उन्हींके साथ खाता था। खाने-पीनेकी चीजोंपर मेरी ही रुचिपर ध्यान दिया जाता था। मैं कढ़ी खाता हूँ, इसलिये कढ़ी बनती थी। मुझे सूरन प्रिय है, इसलिये सूरनकी तरकारी बनती थी। मुझे भाजी अच्छी लगती थी, इसलिये भाजी तैयार की जाती थी। दोपहरको मैं सो जाता था। उसके बाद फिर मैं शरबत पीता था। कुछ देर काम करनेके बाद शामके समय मुझे बम्बई घुमानेके लिये हेमचन्द्रजी ले जाते थे। मेरे समान व्यक्तियों-को बम्बई घुमा देना कोई साधारण बात नहीं। लोगोंकी उस भीड़में, मोटरों, ट्रामगाड़ियों और घोड़ागाड़ियोंकी रेलपेलमें मुझे कुशलपूर्वक ले जाना सचमुच ही कठिन बात है। हेमचन्द्र बन गये थे मेरे संरक्षक और मैं हो गया था एक अनाड़ी बालक। वही मेरा हाथ पकड़ कर मुझे सुरक्षित घर ले आते थे और तब मैं उनसे कहता, "अब तो मैं नहीं जाऊँगा।" परन्तु दूसरे दिन वे फिर मुझे खींचकर ले ही जाते थे। एक दिन एक सड़क पार करनेकी जरूरत पड़ी। उस दिन उनकी धर्मपत्नी भी हम लोगोंके साथ थीं। वे दोनों आरामसे सड़क पार कर गये, परन्तु मेरा साहस नहीं हुआ। एकके बाद एक इतनी मोटरें आती थीं कि मेरे पैर काँप उठते थे। वे लोग फिर लौट आये। उन्होंने मुझे काफी समझाया-बुझाया, यथेष्ट प्रोत्साहन दिया, पर मैं किसी भी तरह सड़क पार करनेके लिये तैयार नहीं हुआ। मैंने कहा, "भाई, गाड़ी मँगाओ, मैं तो गाड़ीमें बैठकर जाऊँगा। मोटरोंसे दबकर मरना मुझे पसन्द नहीं।" हेम-

चन्द्र हँसने लगे। आखिर उन्होंने गाड़ी मँगवाई और हम लोग गाड़ीपर बैठकर घर लौटे।

मैंने अपने मनमें प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं अब घूमनेके लिये जाऊँगा ही नहीं, पर दूसरे ही दिन हेमचन्द्रने मुझसे कहा, "आज एक होटल चलिए, मैं आपको एक बहुत बढ़िया चीज खिलाऊँगा।"

मैंने कहा, "बढ़िया चीज खानेके लिये तो मैं तैयार हूँ। पर मैं पैदल नहीं जाऊँगा।"

उन्होंने हँसकर कहा, "नहीं नहीं, आप घबराइए मत। मैं आपको ऐसे रास्तेसे ले चलूँगा कि आपको जरा भी कठिनाई न होगी।"

जब मैं चलनेके लिये तैयार हो गया तब उनकी धर्मपत्नीने मुझको रोका। उन्होंने कहा, "आप खा-पीकर जाइए। आप इनकी बातोंमें मत आइये। जाने ये आपको क्या चीज खिलावें। इनकी बड़ी विचित्र रुचि है।"

पर हेमचन्द्रजीने मुझको घरमें खाने न दिया। उन्होंने कहा, "नहीं नहीं, आप यहाँ मत खाइये। मैं तो कहता हूँ कि मैं आपको आपकी रुचिके अनुसार ही बढ़िया चीजें खिलाऊँगा।"

मैं उनके साथ चला गया। दो तीन मील चलनेके बाद जब उनके होटल-का दर्शन नहीं हुआ तब मैंने कहा, "भाई, आपका वह होटल क्या सारी बम्बई घूम लेनेके बाद मिलेगा।"

उन्होंने कहा, "बम्बई आपका खैरागढ़ नहीं है। इसे घूमनेके लिये दो महीने चाहिये। पर आपके ही कारण मुझे टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे चलना पड़ता है। वह होटल तो बिलकुल नजदीक है।"

खैर, होटल आया। हम लोग भीतर गये, उन्होंने नौकरसे एक चीज मँगवाई। मुझे उस चीजका नाम याद नहीं है। नौकरने दो तश्तरियोंमें वह बढ़िया चीज लाकर रख दी। वह कचौड़ीसे कुछ मिलती-जुलती थी। उसके भीतर प्याजके बहुत बारीक टुकड़े, अदरक और जाने क्या-क्या चीजें पड़ी थीं। एक टुकड़ा खानेके बाद ही मैं घबरा गया। मैंने कहा, "भाई, इसमें तो प्याज है।" मैंने तुरन्त ही वह चीज छोड़ दी। हेमचन्द्रने नौकरको बुलाकर कहा, "बिना प्याजकी बनी हुई लाओ।"

नौकरने कहा, "बिना प्याजकी यह चीज मिल ही नहीं सकती।" तब विवश होकर उन्हें दूसरी चीजें मंगवानी पड़ीं, पर वे बड़े खिन्न हो गये। मैंने

और सब चीजें लाई, पर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "इनके लिये मैं आपको इतनी दूर थोड़े ही लाया था! खैर, किसी दिन मैं अलग आर्डर देकर बिना प्याजकी इसे बनवाऊँगा। तब आप समझेंगे कि यह क्या है।"

उनके इसी व्यवहारकी सरलतापर मैं मुग्ध हो गया था। घर लौटने पर प्रेमीजीने बतलाया कि हेमचन्द्रकी अपनी अलग रुचि है। एक बार एक महीना उन्होंने एक विशेष प्रकारकी भाजी ही खाकर व्यतीत कर दिया था!

हेमचन्द्रजी जल-चिकित्साकी किताबें खूब पढ़ा करते। उस विषयपर उन्होंने एक काफी मोटी किताब लिख डाली थी। वे उसे प्रकाशित भी करना चाहते थे। हस्तरेखा-विज्ञानपर भी उनका बड़ा अनुराग था। इस संबंधमें भी उन्होंने कितनी ही बातें नोट कर रखीं थी। उनको मैंने अपना हाथ दिखलाया और उन्होंने मेरे संबंधमें कितना ही बातें बतला कर अन्तमें यह कहा कि आप जीवन-भर परावलम्बी रहेंगे।

हेमचन्द्र नवयुवक थे। उनमें महत्वाकांक्षा थी, उत्साह था, विद्यानुराग था और स्फूर्ति थी। वे हिन्दीके वर्तमान प्रगतिशील साहित्यके उन्नायक थे। मैं पाठ्य-पुस्तकोंके संबंधमें बम्बई गया था और एक शिक्षककी दृष्टिसे किताबें तैयार करता था। पाठ्य-पुस्तकोंमें कुछ विशेष विषयोंपर पाठ रखने ही पड़ते हैं, पर उनमें शुष्क वैज्ञानिक ऐतिहासिक और भौगोलिक पाठोंकी प्रचुरता देखकर उन्हें विरक्ति हो जाती थी। उनका कथन था कि पाठोंमें सरसता चाहिये। एक बार मैंने एक संग्रहमें पंडित......का उपमालंकार शीर्षक लेख देना चाहा। उन्होंने कहा, "ऐसा नीरस लेख मैंने आजतक नहीं पढ़ा।" एक बार हिन्दीके एक अन्य प्रसिद्ध लेखकके एक निबन्धके संबंधमें उन्होंने कहा कि इसमें पैराग्राफ ही ठीक नहीं हैं। वे अपना मत निर्भीकतासे प्रकट करते थे। वे जो काम अपने हाथमें लेते थे, उसे सर्वांग सुन्दर करनेका पूरा प्रयत्न करते थे। पाठ्य-पुस्तकोंके अन्तमें जो नोट दिये जाते हैं उनके लिये भी उन्होंने काफी परिश्रम किया था। हिन्दी साहित्यमें क्रान्तिकी जो नवीन लहर उठ रही है, उसके वे पूरे समर्थक थे। साहित्यकी अपेक्षा वैज्ञानिक विषयोंकी ओर उनकी अधिक रुचि थी। अनुवादकी ओर उनकी जरा भी प्रवृत्ति नहीं थी, परन्तु प्रेमीजीकी इच्छासे उन्होंने कई बार अनुवादका काम किया और सफलतापूर्वक किया। वे अध्ययनशील भी थे।

अँग्रेजीके कितने ही बड़े लेखकोंकी कृतियोंका उन्होंने घरपर ही अध्ययन किया था। अँग्रेजीके निबंध-लेखकोंमें एक बार ए० जी० गार्डनरका नाम लेनेपर मुझे उन्होंने तुरन्त ही उसकी कई पुस्तकें लाकर दीं। उन सभी पुस्तकोंके मार्जिनपर उनके हाथके लिखे कुछ नोट थे। जब मैं घर लौटने लगा तब उन्होंने मुझे अपनी कुछ और पुस्तकें दीं। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें अच्छी योग्यता थी और यदि असमय ही उनका देहावसान न हो जाता तो उनसे हिन्दी-साहित्यको अवश्य ही श्रीवृद्धि होती।

किसे इस बातकी कल्पना थी कि इतनी छोटी अवस्थामें हेमचन्द्र यह संसार छोड़ जायेंगे ? मैं तो यह समझता था कि मेरी मृत्युके बाद वही मेरे स्वभावकी विलक्षणताके सम्बन्धमें अपने संस्मरण लिखेंगे, परन्तु आज मुझीको उनके सम्बन्धमें अपने संस्मरण लिखने पड़ रहे हैं। मुझे उनके देहावसानकी खबर कई महीने बाद मिली। पहले तो मुझे विश्वास ही न हुआ। मेरे जिस मित्रने मुझे यह खबर सुनाई, उनसे मैंने यही कहा कि उनसे अवश्य भूल हुई है। थोड़े ही दिनोंके बाद जब एक दूसरे सज्जनके द्वारा उस समाचारकी पुष्टि हुई तब मैं अवाक् रह गया। मैं जानता था कि प्रेमीजीका अपने पुत्रपर कितना अधिक स्नेह है। मैं नहीं समझ सका कि वे इस आघातको कैसे सह सकेंगे। मुझे हेमचन्द्रकी धर्म-पत्नीका भी स्मरण आया। कुछ दिनों तक मैंने उसको पढ़ाया था और इसीलिये मैं उसका विशेष श्रद्धाका पात्र बन गया था। मैं सोचने लगा कि उसे कैसे सान्त्वना होगी। शोकसे वह कितनी अधीर होगी। मुझे यह साहस नहीं हुआ कि इस सम्बन्धमें एक पत्र तक लिख सकूँ। मृत्यु तो अनिवार्य है। जीवन-मरणकी इस लीलामें जगन्नियन्ताका क्या उद्देश्य है, यह तो वही जाने, पर जब अल्पावस्थामें हेमचन्द्रके समान किसी तेजस्वी युवककी मृत्यु हो जाती है तब हृदय सचमुच विदीर्ण हो जाता है। हम लोगोंका जीवन-विधाता चाहे जो कोई हो, हम लोगोंका भाग्य चाहे जिसके द्वारा निर्दिष्ट हो, हम लोगोंका जीवन-सूत्र चाहे जिसके हाथमें हो, परन्तु मनमें यही एक बात उठती है कि काल क्रूर है और विधाता निर्दय है।

मैंने एक बार हेमचन्द्रसे कहा था कि भाई, बम्बईकी सड़कोंकी भीड़मेंसे तो तुम मुझे बचा लाये, पर जब मैं अपने जीवन-पथसे त्रस्त हूँगा तब क्या इसी प्रकार तुम मुझे हाथ पकड़कर खींच लाओगे ? आज हेमचन्द्र नहीं है, पर

मैं हूँ। बंबईमें वही समुद्रतट होगा, वही भीड़ होगी, वही मोटरें चलती होंगी, वही ट्रामगाड़ियाँ दौड़ती होंगी। बम्बईके दैनिक जीवनमें कुछ भी परिवर्तन न होगा, परन्तु आज यदिमें बम्बई जाऊँ तो चुपचाप खड़ा-खड़ा ताकता ही रह जाऊँगा।

संसारका काम कब रुका है? कालकी गति कब अवरुद्ध हुई है? प्रकृतिकी चाल कब बन्द हुई है? सभी कुछ ज्यों-का-त्यों बना रहता है, परन्तु कोई एक चुपचाप चला जाता है। एक विटपका एक फूल झड़ पड़ता है, उसकी सौरभ-निधि नष्ट हो जाती है। एक तड़ागका कमल सूख जाता है, और उसकी शोभा लुप्त हो जाती है; परन्तु प्रकृतिका व्यापार चलता ही रहता है। संसारके समर-क्षेत्रमें व्यस्त और अपने-अपने स्वार्थोंमें लिप्त लोगोंको क्या पता है कि आज एकके घरका दीपक बुझ गया है, एकका सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया, एककी स्नेह निधि खो गई?

खैरागढ़]

१५

भाई हेमचन्द्रजी

श्री राजकुमार जैन साहित्याचार्य

'माणिकचन्द्र-जैन-ग्रन्थमाला' के मंत्री तथा 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर'-कार्यालयके मालिकके रूपमें श्रद्धेय प्रेमीजीको मैं एक लम्बे अर्सेसे जानता था। 'जैनहितैषी' में प्रकाशित उनकी खोजपूर्ण लेख तथा 'माणिकचन्द्र ग्रन्थ-माला' में प्रकाशित पुस्तकोंमें उनकी विद्वत्तापूर्ण भूमिकायें पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त कर चुका था। इन सबने प्रेमीजीके प्रति मेरे मनमें एक अपूर्व श्रद्धा पैदा कर दी थी। 'जैन-जगत' में प्रकाशित भाई हेमचन्द्रजीके लेख पढ़कर वह दुगुनी हो गई। कई बार इच्छा हुई कि बम्बई जाकर इन आदर्श पिता-पुत्रके एक बार दर्शन करना चाहिये। सौभाग्यवश वि० सं० १९९८ के पर्यूषण-पर्वमें शास्त्र-प्रवचनके लिये मुझे बम्बई जाना पड़ा। स्टेशनसे सीधा हीराबाग पहुँचा। श्रद्धेय प्रेमीजी तथा भाई हेमचन्द्रजीके दर्शन करने की चिर-संचित अभिलाषा जाग्रत हो उठी। 'हिन्दीग्रन्थरत्नाकर'-कार्यालयका साइनबोर्ड देखकर अन्दर पहुँचा और प्रेमीजी तथा भाई हेमचन्द्रजीको प्रणाम कर बात करने लगा।

इस प्रथम सँभाषणसे ही मुझे ऐसा लगा जैसे हम लोग बरसोंके परिचित और आत्मीय हों। मैं बीस दिन बम्बई रहा और शास्त्र-प्रवचनसे बचा हुआ सारा ही समय प्रायः प्रेमीजीके यहाँ बिताया करता था। इन दिनों प्रेमीजी, भाई हेमचन्द्रजी, चि० जस्सू-पस्सू और उनकी माँको निकटसे जानने और समझनेके अनेक अवसर आए। वह ससुर-बहू, पिता-पुत्र और पितामह-पौत्रोंका पारस्परिक व्यवहार दर्शनीय था। ससुर-बहूका पिता-पुत्री जैसा निर्दोष, निर्व्याज और प्रसन्न व्यवहार मैंने जीवनमें कभी नहीं देखा। कोई भी अपरिचित व्यक्ति इन ससुर-बहूको ससुर-बहू समझ ही नहीं सकता। इसी तरह पिता-पुत्रके व्यवहारमें भी इतना सहज-भावका इतना खुलापन कि कोई भी नया आदमी इन्हें पिता-पुत्र समझनेमें धोखा खा सकता था। मैं तो प्रेमीजीके इस संपूर्ण परिवारकी सहजश्रीपर मन ही मन मुग्ध था। बंबईका प्रोग्राम समाप्त होते ही मैं वहाँसे वापिस चला आया।

* * * *

श्रद्धेय प्रेमीजीके जिस परिवारकी श्रीपर मैं मुग्ध था, लगभग आठ ही महीने बाद उसपर दुस्सह तुषारपात हो गया। भाई हेमचन्द्रजीके जीवन-दीपका निर्वाण हो गया। बहिन चम्पाकी दुनिया उजड़ गई और प्रेमीजीका जीवन शून्यवत् हो गया। भाई हेमन्द्रजी चले गये और अपने परिवारको सूना और श्रीहीन कर गये। विधिका अमिट विधान जो था।

* * * *

भाई हेमचन्द्रजीकी याद आते ही उनके जीवनकी सात्त्विकता, सरलता, स्वच्छता और असीम बोध-निष्ठा सामने आ जाती है। वह बहुत ही सात्त्विक, सरल और स्वच्छ थे और उनका प्रत्येक विषयका अध्ययन भी बहुत गंभीर था। वे एक चिन्तनशील मौलिक विचारक और प्रतिभा-सम्पन्न लेखक थे। साहित्यशास्त्रके विविध तत्त्वोंका उन्होंने बहुत अच्छा अनुशीलन किया था। शक्ति, रस, गुण, दोष, रीति और अलंकार आदिके सम्बन्धमें उन्होंने वैज्ञानिक ढंगसे चिन्तन किया था। केवल चिन्तन ही नहीं किया था, बल्कि जब मैं बम्बई था, उन दिनों उस चिन्तनको उन्होंने लिपि-बद्ध करना भी शुरू कर दिया था और उसका नामकरण मेरी उप-स्थितिमें 'साहित्य-विवेक'के नामसे किया गया था। उस समय उन्होंने अपने लिखे दो लेख 'प्रतिभा' तथा 'रीति या शैली' मुझे सुनाये थे। इन लेखोंमें साहित्यदर्पण, रसगंगाधर, वक्रोक्तिजीवित, काव्य-प्रकाश और ध्वन्यालोक आदि काव्य-शास्त्रके उच्च कोटिके ग्रन्थोंके स्थल विशेषोंका सुन्दर उपयोग देखकर मैं हैरान था कि भाई हेमचन्द्रजीने बिना किसी 'साहित्य-शास्त्री' या 'साहित्याचार्य'की परीक्षा पास किये साहित्यशास्त्रका इतना गहरा तत्त्व-ज्ञान कहाँसे और कैसे प्राप्त कर लिया?

साहित्य-शास्त्रके सिवाय भाई हेमचन्द्रजीने ज्ञानकी अन्य शाखाओंका भी अध्ययन और मनन किया था। योग, चिकित्सा, और स्वास्थ्य-विज्ञानके वे अच्छे जानकार थे और आलोचनाके अन्तर्रहस्य और तत्त्वोंसे भी परिचित थे। उनकी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अब तक हिन्दी-साहित्यिक-जगतके सामने आ जातीं, यदि भाई हेमचन्द्रजीको प्रोत्साहन और उनकी रचनाओंके प्रकाशमें आनेके लिये यथेष्ट सुविधाएँ मिली होतीं। हेमचन्द्रजीने मुझसे कहा था कि मैंने चिकित्सा-शास्त्रपर एक ग्रन्थ लिख छोड़ा है, लेकिन दादाने उसे पसन्द नहीं किया और वह यों ही पड़ा है। जब मैंने उनसे पूछा कि आपकी 'गोदान' और 'शाहजहाँ'की आलोचनावाली किताब प्रेमीजीने अपने

नामसे प्रकाशित क्यों नहीं की, तो वे बोले, "दादा इस प्रकारकी हल्की चीजें अपने नामसे प्रकाशित नहीं करना चाहते!" आज मेरे मनमें यह भावना उठ रही है और प्रेमीजी भी स्वीकार करते हैं कि यदि हेमचन्द्रजीको यथेष्ट प्रोत्साहन मिला होता तो अपने साहित्यिक जीवनके प्रभात-कालमें भी वे हिन्दीके वाङ्मयकी श्रीवृद्धि कर जाते।

भाई हेमचन्द्रजी विनोदी भी थे, पर उनका विनोद बड़ा सात्त्विक होता था। एक दिनकी बात है। प्रेमीजी 'जैन-इतिहास और साहित्य' के लिये लेख लिख रहे थे। दोपहरका भोजनका समय हो चुका था। हेमचन्द्रजी प्रेमीजीसे भोजन करने जानेके लिये कई बार कह चुके थे। मैं भी वहीं बैठा था। निदान मेरी ओर संकेत करते हुए हेमचन्द्रजीने कहा, "देखा पंडितजी, इन्हें जिन्दगीमें गये-गुजरोंका लेखा-जोखा करनेसे ही फुर्सत नहीं। जो चले गये, भला उनके हिसाब-किताबसे अब क्या लाभ? दो बज रहे हैं और इन्हें अब भी खानेकी सुधि नहीं।" प्रेमीजी मुस्कराहटके साथ बोले, "पंडितजी, देखी इसकी पितृनिष्ठा। मेरा कैसा मज़ाक उड़ा रहा है?" मैं हँस पड़ा और हेमचन्द्रजीका साथ देते हुए कह उठा, "हेमचन्द्रजी ठीक तो कह रहे हैं।"

हेमचन्द्रजी प्रेमीजीके काममें भी पूरा हाथ बँटाते थे। 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' के प्रकाशनोंको सर्वांगसुन्दर बनानेमें उनका बहुत-कुछ योग रहता था। उन दिनों शरत्-साहित्यके 'शेष-प्रश्न' का प्रकाशन चल रहा था। बंगलाकी कापीसे अनूदित कापीका मिलान करनेके लिये पद, वाक्य-विन्यास और पैराग्राफ ठीक करनेमें हेमचन्द्रजी प्रेमीजीका एक ही आसनसे चार-चार पाँच-पाँच घंटे तक साथ दे रहे थे।

* * *

भाई हेमचन्द्रजी एक उदीयमान कलाकार थे। उनका पाञ्चभौतिक शरीर यद्यपि कराल-कालकी कुटिलतासे विलीन हो चुका है, लेकिन उनके यशःशरीर-पर कोई विधि-विधान कारगर नहीं हो सकता। जरा-मृत्यु उसे ज़रा भी प्रभावित नहीं कर सकती। यशः-शरीरसे वह आज भी जीवित हैं और चिरकाल तक जीवित रहेंगे।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कलाविदः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

कुण्डेश्वर]

१६
हेमचन्द्र

श्री सियारामशरण गुप्त

हेमचन्द्रका पहला परिचय भैयाके द्वारा बहुत पहले मिला था। बम्बईके प्रवासमें प्रेमीजीके साथ घूमनेके लिए वे चौपाटी जाया करते थे। उस समय बालक हेमचन्द्र उनके साथ रहता था। बड़ोंकी बातमें बालककी जिज्ञासा बार-बार बढ़ उठती थी। उसके सब प्रश्नोंका समाधान सम्भव न था। प्रेमीजीको इसीसे कभी कभी कहना पड़ता था, "अभी तुम सुनो। तुम्हारे बोलनेका समय आगे आयगा।"

उसी समयसे मेरे मनमें हेमचन्द्रकी एक मूर्ति जम गई है। एक बालक है, जो पिताकी उँगली थामकर अपनी ऊर्ध्व दृष्टि उनपर स्थापित किये है। नेत्रोंमें उसके जिज्ञासाकी दीप्ति है। वह अपने प्रश्नका उत्तर चाहता है। इसीकी प्रतीक्षामें वह स्थिर दिखाई देता है, अन्यथा स्थिरता उसके स्वभावमें कहाँ। उसके भीतर सामनेके समुद्रकी लहरियोंकी भाँति जो प्रश्नमालाएँ एकके ऊपर एक उठ रही हैं उन्हें उसने इस प्रतीक्षाके एक क्षणकी वेलामें न जाने किस प्रकार रोक रक्खा है। ऐसे बालकके लिए किसके मनमें आकर्षण न होगा? ज्ञानी पिता भी उसके निकट निरुत्तर है, पराजित है। उसकी ज्ञान-लिप्सा उस छोटे शरीरके आयतनसे ऊँची होकर पिताकी ऊँचाईके ऊपर तक चली गई है।

फिर बहुत समय बाद हेमचन्द्रसे मिलनेका अवसर मुझे भी मिला। उस समय वे हाईस्कूलकी परीक्षाकी तैयारीमें थे। पाठ्य-पुस्तकोंकी अपेक्षा बाहरी पुस्तकोंके लिए उनमें अधिक आग्रह दिखाई दिया। बातचीतमें पता चला कि उनकी इच्छा आगे अध्ययन जारी रखनेकी नहीं है। प्रेमीजीकी आस्था इस शिक्षा-प्रणालीपर नहीं है। पुत्रको इसी कारण उसी समयसे वे अपने ग्रन्थ-रत्नाकरका पुजारी बनाना चाहते थे।

हेमचन्द्रको इसके अनन्तर कार्यालयमें काम करते भी देखा। वहाँ भी

उनका अध्ययन धीमा नहीं पड़ा। कई विषयोंका अपने आप उन्होंने गहरा ज्ञान अर्जित कर लिया था। मैंने अनुरोध किया, "इस ज्ञानको दूसरों तक भी पहुँचाओ। इसकी आवश्यकता है।" मेरा कथन उन्होंने नहीं सुना। यह न था कि वे मेरी उपेक्षा करना चाहते हों। कार्यालयका आवश्यक कार्य छोड़कर मेरे साथ दिन-दिन भर बम्बईकी जनाकीर्ण सड़कोंपर वे घूमे हैं। महानगरीके कितने ही दर्शनीय स्थल उन्हींके पथ-प्रदर्शनमें मैंने पहले-पहल देखे। दो-दो चार-चार आनेकी साधारण वस्तुके लिए उन्होंने मीलोंका पथ मेरे साथ पार किया। उन्होंने सब कुछ किया, पर लिखनेका मेरा अनुरोध नहीं माना। लिखनेके सम्बन्धमें वह कुछ अतिरिक्त रूपसे शिथिल थे। यहाँ तक कि चिट्ठी-पत्रीमें भी ढील कर देते थे। एक बार चिरगाँव आठ-दस दिन रहे, पर स्मरण दिलाये जानेपर भी घरके लिए पत्र नहीं लिखा। फल यह हुआ कि प्रेमीजीको तारसे पूछना पड़ा कि वे कहाँ हैं।

फिर भी उन्होंने कुछ न लिखा हो, यह बात नहीं है। कुछ सुन्दर निबन्ध उन्होंने रख छोड़े थे। उन्हें प्रकाशित होनेके लिए कहीं भेजनेमें उन्हें संकोच होता था। पता नहीं, सम्पादकोंके प्रति यह अनास्था उनमें कैसे उत्पन्न हो गई थी। वास्तवमें उनके निबन्ध यथेष्ट सुन्दर थे। अपनी शक्तिका बोध भी उनमें था। पर कदाचित् वे सोचते थे कि उन्हें अभी मनन करना चाहिए। उनके लिखनेका समय आगे आयगा।

किन्तु कालके ऊपर किसका वश है ? उस दिन जैनेन्द्रकुमारके पत्रसे अचानक उनके निधनका समाचार सुनकर हम लोग वैसे ही रह गये। हेमचन्द्रके द्वारा जितनी सम्भावनाएँ थीं, उनका अन्त हो गया। उनके प्रयाणसे हिन्दीकी हानि हुई है। इसके अतिरिक्त हमारी अपनी व्यक्तिगत हानि कितनी हुई है, इसका लेखा-जोखा कैसे लगाया जाय ?

चिरगाँव]

१७

रत्नाकरका वह चारु चन्द

श्री अरुणकुमार 'कमलेश'

१९३९ की पहली सितम्बरकी रात दुनियाके लिये एक तूफ़ान लाई थी— एक परिवर्तनका नाटक दिखानेके लिये। मेरे जीवनमें और कहूँ कि जीवन-कार्यमें भी उसी रात एक परिवर्तन हो गया था। 'मजूर-सेवक संघ', अहमदा-बादसे मैं बंबई गया था—हिन्दी-प्रचारके लिये। वह मेरा प्रिय-कार्य-क्षेत्र था और मेरे प्यारे सहयोगी मित्रोंका भी।

एक दिन मैं गोखले-सोसायटी हाईस्कूलमें राष्ट्रभाषा वर्गोंको देखने गया। कमरेसे बाहर आते हुए एक व्यक्तिको देखा—नंगे सिर, काला कोट, धोती और चश्मा लगाये। हाथमें कई किताबें और दिमागमें बहुतसे विचार। उन्हें देखा और बिना परिचय कराये ही परिचय हो गया। हाँ, उसके बाद विधिवत् जानकारी भी कराई गई थी, जो हम दोनोंके लिये ही आश्चर्य और हास्यकी चीज़ रही। दो परिचित व्यक्तियोंको परिचित करानेका यह कैसा लोक-व्यवहार !

हम एक-दूसरेके परिचित बने, परिचितसे मित्र बने और मित्रसे सहयोगी कार्यकर्त्ता। 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर'में पहले भी एक-दो बार गया था, लेकिन अबके जाने और उस जानेमें अंतर था। श्री नाथूरामजी प्रेमी मिलते तो उनसे पहला सवाल यही होता कि हेमचन्द्र कहाँ हैं ? उत्तर मिलता, "पीछेके कमरेमें।" यह उनका एकान्त वास था, जहाँ वे अनेक साहित्यिक पुस्तकोंके रूपमें उनके साथ रहते थे।

उनकी वह कुर्सी और सामने रखी हुई अनेक विषयोंकी पुस्तकें आज भी मेरे मनके भीतर और सामने हैं। वे सुनाने लग जाते, वही साहित्यिक गंभीर चिंतनके विषय। मैं उनसे मिलकर दिलकी चिंता दूर करनेका प्रयत्न करता और वे मुझे उससे मुक्त करके दिमागी चिन्तासे भर देते। मैं सोचता था कि भाई, यहाँ तो लेनेके देने पड़ गये !

७०

बंबईमें हिन्दी-प्रचारका कार्य १९३१ से शुरू हुआ था। मेरा अनुमान है कि शुरू-शुरूसे ही इस कार्यमें हेमचन्द्रजीने अपना सहयोग दिया, जो अब तक मिलता रहा। हिन्दी-प्रचारके आदि-प्रचारकोंमें उनका नाम सबसे ऊपर ही है।

श्री नाथूराम प्रेमी शिकायत करते थे कि हेमचन्द्रमें दुकान सँभालनेकी योग्यता नहीं। मैं उनसे कहता कि वे दुकान सँभालनेके लिये नहीं हैं। वे अपने साहित्यसे इस दुकानको भरनेके लिये हैं। उन्होंने बहुत-सी किताबें लिखी और चिन्तनके विषयोंको लेकर। मुझे याद है कि जब उनसे अंतिम बार मिलना हुआ था तो वे जीवन-साहित्यकी एक पुस्तक लिख रहे थे। उस किताबके कई अंश मैंने उनसे सुने थे। उस पुस्तकको वे पूरी कर पाये या नहीं, यह जाननेकी इच्छा आज भी बनी है। वह उनकी हिन्दी-साहित्यको अंतिम और सर्वश्रेष्ठ भेंट होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

१९४२ की फरवरी मुझे बंबईसे सेवागाँव ले गई और मेरा कार्यक्षेत्र भी बदल गया। मईका महीना था और ता० २५। मुझे उस दिन बंबईसे एक पत्र मिला, जिसे पढ़कर वेदना हुई। मुझे ध्यान आया श्री प्रेमीजीका, चम्पा बहिनका और उन नन्हें और मुन्नेका, जिन्हें मैंने 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' में खेलते-झगड़ते देखा था। मैंने सोचा, प्रेमीजीको अब अपने कार्य और हिन्दी-साहित्य-निर्माणमें क्या रस रहेगा। उनका जीवन आशा और आशाके पालनमें ही बीता। अब उनके सामने दो 'हेमचन्द्र' हैं और उन्हें फिर बढ़ानेकी आशा। इतनी साधना और तपस्याके बाद फिर वहीं, जहाँसे शुरू किया था! कैसा अन्याय और कितनी निर्दयता!

रत्नाकरका वह 'चारु चंद' आज साहित्याकाशमें नहीं —उसकी कोमल चन्द्रिका और उसकी मीठी याद आज भी है। बंबईके राष्ट्र-भाषा-प्रचारकोंने एक सहयोगी खोया; हिन्दी-साहित्यने एक साहित्य-संन्यासी खोया और इन पंक्तियोंके लेखकने एक संगी-साथी।

सूरत]

१८

धुनका पक्का हेमचन्द्र

पं० परमेष्ठीदास जैन, न्यायतीर्थ

बम्बईमें जब राष्ट्रीय कांग्रेसका अधिवेशन हुआ था तब (सन १९३४) में भाई हेमचन्द्रसे मेरा परिचय हुआ था और तबसे मैं जब जब बम्बई गया, उनके प्रेमके कारण उन्हींके यहाँ ठहरता रहा।

मैंने देखा कि उनमें कर्मठ युवकके सभी गुण मौजूद हैं। साथ ही बालककी भाँति सरलता भी। उनका दाम्पत्य जीवन देखकर तो और भी अधिक आनंद होता था। भाई हेमचंद्र और उनकी सुशीला पत्नी चम्पादेवीका व्यवहार इतना सुखद था कि वैसा हजारों दम्पतियोंमेंसे एकमें भी शायद ही मिले। वे दोनों सदा हँसते-खेलते-से रहते थे और जब उनमें कभी किसी बातको लेकर रूठा-राठी हो जाती तो वे दोनों प्रेमीजीके पास शिकायत ले जाते, जैसे दो बच्चे अपने पिताके पास जाकर शिकायत करते हैं। उधर प्रेमीजी भी दोनोंको 'बेटा' कहकर पुकारते और दोनोंको समझा देते। अगर कभी डाँटते भी तो हेमचन्द्रको। उस समयका प्रेमभरा गार्हस्थ्य एक अनुपम सौन्दर्य दिखा जाता था।

हेमचन्द्र बहुत ही अध्ययनशील युवक थे। जब जब मैं उनसे मिला, उन्हें विभिन्न विषयों और विविध भाषाओंके ग्रंथ पढ़ते पाया। हिन्दी, अँग्रेजी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि अनेक भाषाओंका उन्हें ज्ञान था। सचमुच ही वह 'बहुश्रुत' थे। उनके अध्ययनका कोई एक विषय निश्चित नहीं था और वे प्रत्येक विषयमें घुसते थे। इससे प्रेमीजी कभी कभी झुँझला उठते थे और कहते थे, "अरे भैया ईमें का धरो है। अपने कामकी चीज पढ़ो। पागल मत बनो!" उस समय भी मेरे मनमें एक अपूर्व आनंदकी रेखासी खिंच जाती थी। पिता पुत्रका ऐसा प्रेम भी बहुत कम देखनेको मिलता है।

भाई हेमचन्द्र कभी कभी कुछ लिखा भी करते थे, जो मासिक पत्रोंमें देखनेको मिलता था। वे जो कुछ लिखते थे, बहुत ही खोजबीनके साथ,

जिसमें कुछ नवीनता हो और पाठकोंको नई बात जाननेको मिले। यही कारण है कि उनके लेख काफ़ी परिश्रमजन्य होनेसे बहुत कम पढ़नेको मिलते थे।

उन्होंने कुछ पुस्तकें लिखी थीं और उनके पास बीसों पुस्तकें तैयार हो सकने योग्य नोट्स मौजूद थे। मगर दुःख है कि उनका वह विशाल अध्ययन और ज्ञान पुस्तकके रूपमें नहीं छप पाया। प्रेमीजी उन्हें अन्त तक बालक ही मानते रहे और चाहते रहे कि इसका ज्ञान परिपक्व सुदृढ़ और सुनिश्चित हो जाय, तब उसकी पुस्तकें छापी जावें। यही कारण है कि हेमचन्द्रने राष्ट्र-भाषा-प्रचार संबंधी दो-तीन पुस्तकें लिखकर छपवाई भी तो वे प्रेमीजीने अपने सुप्रसिद्ध 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय'से प्रकाशित नहीं कीं, और वे स्वतंत्र ही छपीं।

हेमचन्द्र आतिथ्य-सत्कारमें भी निपुण थे। प्रेमीजीके कारण उनके यहाँ भारतके सभी गण्यमान्य हिन्दीके विद्वान् जाते रहे हैं, और सभी हेमचन्द्रके आदर-सत्कार तथा सुव्यवहारकी छाप लेकर गये हैं।

हेमचन्द्रने बम्बईमें सन ३१ से राष्ट्र-भाषा-प्रचारका कार्य प्रारंभ किया था और उसे वे केवल सेवा-भावसे अन्त तक करते रहे। दूसरे भी जो जो काम उन्होंने हाथमें लिये उन्हें अन्त तक निभाया। अपने व्यवसाय-'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर'के कार्यमें उनका चित्त नहीं लगता था। इधर-उधरके कामोंमें लगे रहते थे। प्रेमीजी जब कभी नाराज होते तो वे विनयावनत होकर चुप रह जाते और फिर अपने काममें लग जाते। सचमुच ही हेमचन्द्र धुनका पक्का युवक था। दुःख है कि वह अकालमें ही अस्त हो गया!

सूरत]

१९

हेमचन्द्रजी

श्री कृष्णानंद गुप्त बी० ए०

सन् '३५ के लगभग जब मैं बंबई गया तब हेमचंद्रजीसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ मैं हीराबागकी धर्मशालामें ठहरा था और एक तरहसे प्रेमीजीका ही मेहमान था, किन्तु अपने कार्यमें मैं इतना व्यस्त रहा कि प्रेमीजीके समीप बैठने और उनके सत्संगसे लाभ उठानेका अवसर बहुत कम मिला। हेमचन्द्रजी अवश्य मेरे साथ रहे। उन्होंने अपने दो-तीन दिन मेरे लिए खर्च किये। मुझे बंबई घुमाई और मेरे अन्य कामोंमें अप्रत्याशित मदद दी। उनसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने देखा कि वे कई विषयोंपर अधिकारपूर्वक बोल सकते हैं। उनके वार्तालापसे उनके गंभीर और विस्तृत अध्ययनका जो परिचय मुझे मिला, वह मेरे लिए आश्चर्यजनक था। साहित्य और विज्ञानकी नवीनतम धारासे वे परिचित जान पड़े। समाज-शास्त्र शायद उनका प्रिय विषय था। विवाह और प्रेमकी समस्या पर वे अपने मौलिक विचार रखते थे। हैवलॉक एलिस, किश, ब्लॉश, वैस्टर आदिके ग्रंथोंकी चर्चा उन्होंने मुझसे की। मुझे याद है कि अपने एक पत्रमें उन्होंने मुझे हैवलॉक एलिसके सुप्रसिद्ध ग्रंथ साइकॉलॉजी आव सैक्स (यौन-मनोविज्ञान) का अनुवाद प्रकाशित करनेकी बात लिखी थी। उनकी इच्छा थी कि मैं बालकोंके लिए सरल-विज्ञानपर कुछ किताबें उनके लिए लिखूँ।

दुख है कि इसके बाद फिर उनसे मिलनेका अवसर मुझे नहीं मिला। उनके कुछ पत्र अवश्य मेरे पास आये। दुर्भाग्यवश वे नष्ट हो गये हैं। क्या पता था कि वे इतने शीघ्र संचयकी वस्तु बन जायँगे!

हेमचन्द्रकी विचार-शीलतासे मैं बहुत प्रभावित हुआ था। बंबईसे लौट कर आनेके बाद मेरा उनका बहुत दिनों तक पत्र-व्यवहार रहा, किन्तु उसके बाद ही मैं साहित्य-क्षेत्रसे अलग हो गया। इस कारण उनके साथ मेरा सम्पर्क टूट गया।

इधर मैंने उनके कुछ निबन्ध पढ़े थे। मैं कह सकता हूँ कि वे एक योग्य

और प्रतिभाशाली लेखक बनते । उनके निबन्धोंमें उनके विचारोंकी चमत्कारपूर्ण नवीनता मौजूद है। साहित्य-सृष्टिके नवीन अनुष्ठानमें उनसे अवश्य ही हमें बड़ी मदद मिलती। लेखकके साथ हेमचन्द्रजी एक बड़े प्रकाशक भी बनते। किन्तु ये सब बातें अब कल्पनामात्र रह गई हैं। आदमीके न रहने पर हम उसके महत्त्वको पहचानते हैं और उसके लिए पश्चात्ताप करते हैं। जीवनकी यह एक बड़ी दुःखान्त चर्चा है।

हेमचन्द्रजी अब नहीं हैं, किन्तु उनके पूज्य पिताजीने 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' के द्वारा हिन्दी-साहित्यकी जो एकान्त और अद्वितीय सेवा की है, वह कभी भुलाई नहीं जा सकती। अपनी साहित्यिक साधनाकी बदौलत प्रेमीजीका नाम हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें चिरकाल तक जीवित रहेगा और-उनके साथ जीवित रहेंगे उनके एकमात्र पुत्र हेमचन्द्र भी, जो इस बुढ़ापेमें उनका सहारा थे। उनकी अमर आत्माको मेरा नमस्कार !

गरौठ, (झाँसी)

२०

सत्पुत्र हेमचन्द्र

श्री गोविन्दराय परवार शास्त्री

जो अपने जन्मसे जनकको धन्य कर दे, वही सत्पुत्र है। हेमचन्द्र अपने योग्य पिताके ऐसे ही योग्य पुत्र थे। मेरा उनसे घनिष्ठ परिचय तो नहीं था, लेकिन अपने बम्बई-प्रवासमें मुझे जितनी देर उनसे संभाषण करनेका अवसर मिला, उससे मेरे हृदयपर यह छाप पड़ी कि वह बड़े ही सुशील हैं। विनय तथा कार्य-कुशलता उनकी बात-बातमें प्रकट होती थी।

"विशाल-भारत'में उनके द्वारा अनुवादित 'मंगलमय महावीर' तथा 'वीर'में उनके योगाभ्यास विषयक कई लेख पढ़कर उनकी साहित्यिक प्रतिभासे भी प्रभावित हुआ था। मुझे आश्चर्य तो इस बातका था कि युवक होकर भी वह योगकी ओर रुचि रखते थे।

यद्यपि प्रेमीजी स्वयं एक विभूति हैं, पर हेमचन्द्रके निधनसे उनका बड़ा भारी वैभव चला गया। प्रेमीजीको शान्ति रखनी चाहिये। अपने पार्थिव शरीरसे नहीं, किन्तु यशः शरीरसे। हेमचन्द्र अभी भी हमारे बीच विद्यमान् हैं।

महरौनी (झांसी)

२१

बाबू हेमचन्द्र

श्री पन्नालाल मोतीवाला

स्वर्गीय बाबू हेमचन्द्रजीसे मेरा परिचय लगभग दस वर्षसे था। बादमें तो मेरी उनसे घनिष्ठता ही हो गई थी और यों वे मेरे रिश्तेदार भी थे। अपने सहज-सरल एवं नम्र स्वभावके कारण वे किसीको भी अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे। बंगला आदि भाषाओंकी श्रेष्ठ पुस्तकोंके हिन्दीमें अनुवाद करनेकी जो नई पद्धति प्रेमीजीने प्रारम्भ की थी, उसमें हेमचन्द्रजीने बड़ी सहायता की। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पूज्य पिताके कदमोंपर चलकर साहित्य-सेवाके साथ ही साथ व्यापारका सारा कार्य-भार भी अपने ऊपर ले लिया था और सुयोग्यतापूर्वक उसका संचालन भी कर रहे थे, किन्तु दैवसे यह सब न देखा गया और कालके जबर्दस्त झकोरेने इस होनहार बढ़ते हुए पौधेको निर्मूल कर दिया।

हेमचन्द्रजी देखनेमें साधारण व्यक्ति मालूम होते थे, लेकिन थोड़ी बातचीत होनेपर कोई भी उनकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता था। जिन सिद्धान्तोंपर उनका विश्वास था, उनपर वे न केवल चर्चा न ही करते थे, अपि तु दैनिक जीवनमें उनका उपयोग भी करते थे और उनके भले-बुरे परिणामोंको सहन करनेके लिये उद्यत भी रहते थे।

उनके सम्बन्धमें अनेकों घटनाएँ मुझे याद हैं, जिनमेंसे कुछ यहाँ देता हूँ:—

मेरे एक मित्रकी सगाई यहाँके एक प्रतिष्ठित व्यापारीके यहाँ तय हो रही थी और रात्रिको हम लोग वर-पक्षकी ओरसे उनके यहाँ जल-पानके लिये जानेवाले थे। चूँकि हेमचन्द्रजी उन दिनों यहीं थे और वर-पक्षवालोंके सम्बन्धी होते थे, अतः उन्हें भी निमत्रण मिला और रात्रिको हम सब कन्यापक्षवालोंके यहाँ गये। पहले कुछ देर बातचीत होती रही। इसी बीच कुछ लोगोंने हेमचन्द्रजीका परिचय पूछा। नाम जानकर तो वहाँ तहलका-सा मच गया और कई कूढ़ापंथियोंने इस आधारपर उनकी उपस्थितिका विरोध

किया कि वे श्री नाथूराम प्रेमीजीके सुपुत्र थे और पिता-पुत्र दोनों ही विधवा-विवाहके समर्थक थे। हेमचन्द्रजीने इसका ज़रा-सा भी बुरा न माना और बिना कुछ खाये-पिये चुपचाप वहाँसे चले गये। कट्टरपंथियों द्वारा किये गये इस अपमानका उन्होंने अपने सिद्धान्तोंके आगे स्वागत ही किया।

अभी दो-तीन वर्ष पूर्व ही वे अपने सालेकी बरातमें यहाँ आये थे। शादीमें होनेवाले हुल्लड़के वे विरोधी थे और इससे उकताकर एक दिन कह बैठे कि जब तक कन्याके पिता यह लिखकर न दे देंगे कि भोजन करते समय लोगोंपर दाल-कढ़ी या रङ्ग वगैरह न फेंका जायगा, मैं वहाँ न जाऊँगा। बहुत बहस और हुज्जतके बाद हेमचन्द्रजीने कन्याके पितासे अपनी बात मनवा ली तब उनके यहाँ भोजन करने गये। समाजमें प्रचलित कुप्रथाओंका अन्त करनेकी उनमें प्रबल इच्छा थी।

दीन-दुखियोंका कष्ट दूर करनेमें वे तत्पर रहते थे और बीमारोंकी परिचर्यामें उन्हें आनन्द आता था। होमियोपैथी और जल-चिकित्सा पर उनका अत्यन्त विश्वास था और इस सम्बन्धमें वे सदैव प्रयोग करते रहते थे। एक बार मेरे मकानके करीब एक सज्जनका बच्चा बीमार था। उन्हीं दिनों हेमचन्द्रजी यहाँ आये। उन्होंने उस बच्चेको दिन-रातमें कई-कई बार जाकर देखा और उसकी चिकित्सा की। मेरी स्वर्गीया माकी बीमारीका हाल ज्ञात होनेके बाद वे जब कभी यहाँ आये, माको अवश्य देखने आते थे और उनकी चिकित्साके संबंधमें उचित परामर्शके अतिरिक्त स्वयं दवा भी तैयार करते थे।

हेमचन्द्रजीके उठ जानेपर प्रेमीजीके दुखकी कल्पना भी नहीं की जा जा सकती और उनकी विधवा पत्नीकी ओर देखकर हृदयसे बरबस आह निकल जाती है। प्रेमीजी आँखोंके तारेकी तरह अपने दोनों नातियोंकी देख-रेखमें ही समय व्यतीत करते हैं। बम्बईमें कांग्रेसके अगस्त-प्रस्तावके समय मैं वहीं था। तभी प्रेमीजीके दर्शन हुए थे। श्री वीतराग देवसे प्रार्थना है कि स्वर्गीय आत्माको शान्ति दें एवं उनके दुखी परिवारको कष्ट सहनके लिये धैर्य प्रदान करें।

जबलपुर]

२२

एक झलक

श्री नर्मदा प्रसाद खरे

शायद सन् १९३५ की बात है। मध्य-प्रान्तके शिक्षा-विभागमें 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' की कुछ पुस्तकें स्वीकृत हुई थीं, जिनका सम्पादन श्रद्धेय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीने किया था। रायपुरके एक पुस्तक-विक्रेता उन पुस्तकोंकी मध्य-प्रान्तमें सोल-एजेन्सी लेना चाहते थे। उसी सिलसिलेमें हम लोग बख्शीजीको खैरागढ़से लेते हुए बम्बई गये।

सामान एक होटलमें रक्खा और जलपानसे निबटकर 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' कार्यालय पहुँचे। ज्ञात हुआ कि प्रेमीजी अमरावती गये हैं। उस समय एक दुबले-पतले आँखोंपर चश्मा लगाये गंभीर व्यक्तिसे परिचय हुआ। बख्शीजी तो पुस्तकोंका सम्पादन करनेके सिलसिलेमें महीनों प्रेमीजीके घर रह चुके थे। इस दुबले-पतले और सरल-सीधे व्यक्तिसे जब तक परिचय नहीं कराया गया, तब तक मैं उसे कार्यालयका कोई कर्मचारी ही समझता रहा; क्योंकि वह बड़ी तत्परतासे पुस्तकें यथा-स्थान जमा रहा था। पर जब मुझे ज्ञात हुआ कि यह सज्जन हेमचन्द्र मोदी हैं—प्रेमीजीके एकमात्र पुत्र—तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ भारत-विख्यात प्रकाशन-संस्थाके अध्यक्षका इलौता लड़का और इतना सरल-सीधा!

हम लोग तीन दिन बम्बई ठहरे। एक दिन हेमचन्द्रजीके साथ उनके घर-पर ही भोजन किया। वहाँ उनसे जो कुछ बातचीत हुई, उससे वे मुझे एक दार्शनिक-से प्रतीत हुए। भोजन करते समय मैंने उनकी थालीमें केवल भाजी देखी। पूछनेपर मालूम हुआ कि वे एक माहसे केवल भाजी ही ले रहे हैं! प्रेमीजीके आनेके पहले ही हमें वापस लौटना पड़ा।

धीरे-धीरे महीनेपर महीने बीतते गये, परन्तु हेमचन्द्रजीका चित्र स्मृति-पटलसे न मिट सका।

सन् १९४१ में मैंने आदरणीय प्रेमीजीके सामने एकांकी नाटकोंके एक एसे संग्रहके प्रकाशनका प्रस्ताव रक्खा; जो साहित्यिक दृष्टिसे सुन्दर होनेके

साथ साथ विद्यार्थियोंके लिये भी उपयोगी हो। इस संबन्धमें पत्र-व्यवहार चल ही रहा था कि प्रेमीजीने अपने १७ फरवरी १९४१ के पत्रमें लिखा, "आठ दस रोजमें चि० हेमचन्द्र एक शादीमें जबलपुर जानेवाला है। वह आपसे मिलेगा और बातचीत करेगा।" प्रतीक्षा तो थी ही; एक दिन भाई हेमचन्द्र कोट, कमीज, धोती, चप्पल पहने मुस्कराते हुए द्वारपर आ खड़े हुए। वही सरलता! वही निर्विकार दार्शनिक हँसी! मैं भोजन करने जा रहा था। मैंने उनसे भोजन करनेका आग्रह किया, लेकिन विवाहमें वह बराती होकर आये थे। स्वागत-आतिथ्यसे वैसे ही दबे जा रहे थे। फिर एक डेढ़ बजे तक भूखे कैसे रह सकते थे? अतः मेरे भोजन करने तक वह बैठकमें मासिक पत्रिकाओंके पन्ने पलटते रहे। भोजन करनेके बाद मैंने पानकी तश्तरी उनके सामने पेश की। उन्होंने एक लौंग उठा ली। श्रीमती शकुन्तला खरेने उन्हें दूसरे दिन भोजन करनेका निमंत्रण दिया। कुछ देर सोचकर बोले, "अच्छा, कल दोपहरको यहाँ खा लूँगा।"

इसके बाद हम लोग श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहानसे मिलने उनके घर पहुँचे। श्रीमती चौहान हेमचन्द्रजीसे मिलकर बड़ी प्रसन्न हुईं। थोड़ी देरमें चायका प्याला उनके सामने रक्खा गया तो धीरेसे मुस्कराकर उन्होंने कहा, "मैं चाय नहीं पाता।" और जब पान पेश किये गये तो बोले, "मैं पान भी नहीं खाता।" सुभद्राजीने कहा, "आप जैसे सज्जनोंका फिर किस तरह स्वागत किया जाय? समझमें नहीं आता।" हेमचन्द्रजीने सुभद्राजीसे नारी-जीवन संबंधी कहानियोंका एक संग्रह तैयार करनेको कहा, परन्तु खेद है कि वह संग्रह तैयार न हो सका।

दूसरे दिन दोपहरको बिना बुलाये ही वे एक पारिवारिककी तरह भोजन करने चले आये। थोड़ी देर बच्चोंको खिलाते रहे। उनसे तरह-तरहके प्रश्न पूछते रहे। मेरी मासे बुन्देलखंडीमें कुछ बातचीत की। तत्पश्चात् हम लोगोंने साथ-साथ भोजन किया। वह जल्दीमें थे। भोजन करनेके बाद चले गये। फिर उनके दर्शनका अवसर न आया। और अब तो वह इस संसारमें ही नहीं रहे। उनकी ये स्मृतियाँ मात्र ही रह गई हैं, जिनके द्वारा आज भी उनकी सौम्य और सरल मूर्ति आँखोंके सामने खड़ी हो जाती है।

मेरा उनका साथ कुछ घण्टोंका ही रहा, इस बीच उनसे जितनी ही साहित्यिक बात चीत हुई, उसको लेकर मैं आज भी कह सकता हूँ कि उनका

अध्ययन गंभीर था और साहित्यिक ज्ञान बढ़ा-चढ़ा। झूठी कीर्तिसे वे कोसों दूर भागते थे, हिन्दी-साहित्यमें अनेक अभाव हैं, इसका वे अच्छी तरह अनुभव करते थे। जैन-ग्रन्थोंका भी उन्होंने सूक्ष्मतासे अध्ययन किया था।

अपने एक पत्रमें हिन्दीके एकांकी नाटकोंके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा था, "जब आपने नाटक देखने भेजे, तो उनसे हमें काफी निराशा हुई, केवल 'चम्पक' और 'गोविन्दासजीवाला' नाटक ऐसे थे जो विद्यार्थियोंके योग्य कहे जा सकें। वास्तवमें विद्यार्थियोंके योग्य तथा साहित्यिक दृष्टिसे भी सुन्दर नाटक हिन्दीमें अभी कम ही हैं।

मेरा प्रस्ताव है कि आप थोड़ी-सी मेहनत और करें और दो-चार लेखकोंके ऐसे एकांकी संग्रह करें जो विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी हों। गंगा-पुस्तक-मालाका 'पृथ्वीराजकी आँखें 'वाला संग्रह मैंने देखा। 'चम्पक' उसीके शुरूमें दिया हुआ है। वर्माजीकी यही उत्तम कृति है। इसे आप अवश्य संग्रहमें ले लीजिये। दूसरा संग्रह मैंने 'छः एकांकी' देखा है इसमें उपेन्द्रनाथ 'अश्क'का 'लक्ष्मीका स्वागत' सुन्दर और अपने संग्रहके योग्य जँचा। ये दोनों और 'गोविन्ददासजी'वाला एक, इस तरह तीन तो हुए।"

हिन्दीका प्रत्येक प्रकाशक इस प्रकारका अध्ययन रखे तो हिन्दीके भाग्य खुल जावें।

भाई हेमचन्द्रकी आत्माको मेरा सस्नेह नमन।

जबलपुर]

२३

मेरी श्रद्धाञ्जलि

श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ

श्री हेमचन्द्र जैन-समाजके ही नहीं, अपितु हिन्दी-जगत्‌के उदीयमान लेखक थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि सबसे पहले मैंने 'जैन-जगत्' में 'ब्रह्मचर्य' पर उनका एक प्रतिभा-पूर्ण लेख पढ़ा था। उस लेखमें क्रान्तिका ज्वालामुखी था। वह बहुतोंको बरदाश्त न हुआ। मैं भी उसकी विचार-धारासे पूर्णतया सहमत नहीं था; फिर भी यह कहनेमें मुझे ज़रा भी संकोच नहीं है कि उसमें विचारोंकी मौलिकता एवं विषय-निरूपणका निरालापन था। उनकी प्रतिभा और कुशलताका मुझपर प्रभाव पड़ा।

इसके बाद मैंने उनके कुछ अनूदित ग्रन्थ भी पढ़े। उनकी कुछ योग-विषयक पुस्तकें भी मेरे देखनेमें आईं। इन रचनाओंको पढ़कर कोई भी पाठक उनकी विशेषताको आँक सकता है। इसके पहले या पीछे—ठीक याद नहीं—वे एक बार जयपुर भी आये थे। तब पर्युषणका अवसर था। उस समय वे मेरे शास्त्र-प्रवचनमें शरीक हुए। उन्होंने कुछ मार्मिक चर्चाएँ भी कीं। मैंने उनका उत्तर दिया। मैं नहीं कह सकता कि मेरे उत्तरसे उन्हें सन्तोष हुआ या नहीं; किन्तु उनके प्रश्नोंमें मैंने उनकी विचारकता और पदार्थ-विश्लेषण-बुद्धिकी स्पष्ट झलक देखी।

हेमचन्द्रजीके विचारोंमें क्रान्ति थी। परम्पराका आमूल परिवर्तन होकर भी यदि जगत्‌का कल्याण हो सके तो यह उन्हें अभीष्ट था। वे कालीदासके शब्दोंमें प्रदीपसे जलाये गये प्रदीपकी तरह प्रेमीजीके बिल्कुल अनुरूप थे। उनकी क्षति प्रेमीजीके लिये क्या, सभीके लिये असह्य हुई है। पर विधाताके अनिवार्य विधानोंका निवारण करनेकी शक्ति किसमें है, यही समझकर हमें सन्तोष करना चाहिये।

जयपुर]

२४

मूक साधक

श्री यशपाल जैन बी. ए., एल एल. बी.

प्रेमीजी तथा मामाजीसे भाई हेमचन्द्रका नाम तो कई बार सुना था, लेकिन उनसे साक्षात्कार हुआ सन् १९३९ में जब ' बंबई हिन्दी-विद्यापीठ के पदवी-दानके अवसरपर मामाजीके साथ बंबई जाना हुआ। मुझे कलकी-सी याद है कि हमारी गाड़ी सवेरे सात बजेके लगभग पहुँची थी और तीन चार सज्जन मामाजीको लेने स्टेशनपर उपस्थित थे। और तो सब सामान सँभालने झपटे, केवल एक युवक खड़ा रह गया। वह काला कोट पहने था, आँखोंपर ऐनक और चेहरेपर अपूर्व शान्ति। मामाजीने उसकी ओर संकेत करके कहा, " इन्हें जानते हो ? "

मेरा नकारात्मक उत्तर पाकर जैसे उन्हें कुछ विस्मय-सा हुआ। बोले, " अरे, हेमचन्द्रको नहीं जानते ? "

हेमचन्द्रसे यही मेरी प्रथम भेंट थी। स्टेशनपर अधिक बातचीत नहीं हुई। लेकिन वह मुझे बड़े सरल और निरभिमानी मालूम हुए। उनमें उस दंभका नामोनिशान न था जो संपन्न घरानेके युवकोंमें प्रायः पाया जाता है।

हम लोगोंको साथ लेकर वह घर आये। बंबई जानेका मेरा वह पहला ही अवसर था अतः अधिकांश समय घूमने-घामनेमें ही बीता; लेकिन सात-आठ दिनमें जितने भी घंटे मुझे उस घरमें व्यतीत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन्हें मैं जीवन-भर नहीं भूल सकूँगा। प्रेमीजी, हेमचन्द्र, चम्पा बहन और चि० जस्सू-पस्सूकी वह छोटी-सी गृहस्थी वास्तवमें आदर्श गृहस्थी थी। वहाँ जो कुछ था, आँखोंके सामने था। ' बाहर ' और ' भीतर 'के बीच अंतर करनेकी गुंजाइश ही वहाँ नहीं थी; क्यों कि हम लोग भी उस गृहस्थीके सदस्य ही थे, अतिथि नहीं। इसीसे उस कुटुम्बके प्रत्येक व्यक्तिको मैं निकटतासे देख सका। एक प्रकारकी मधुरता उस घरके कोने-कोनेमें व्याप्त थी, जो अजनबी-से-अजनबी आदमीको भी अपना बनाये बिना नहीं रह सकती थी।

भाई हेमचन्द्र कई रूपोंमें मेरे सामने आये। प्रेमीजीके साथ पुत्रके रूपमें-

चम्पा देवीके साथ पतिके रूपमें और चि० जस्सू-पस्सूके साथ पिताके रूपमें। मुझे उनके सभी रूप खरे जान पड़े और सच पूछिये तो किसी एक व्यक्तिमें उन सबका इतना सामंजस्य मुश्किलसे मिलेगा। वे सभीके प्रति अपने कर्तव्य-पालनमें सजग थे।

हेमचन्द्र मूक साधक थे। उन्होंने अपनी साधनाका कभी ढिंढोरा नहीं पीटा। साहित्यकी विविध शाखाओंका अध्ययन करके उन्होंने जो ज्ञान उपार्जित किया था, और कोई होता तो उसमें व्यर्थाभिमानकी मात्रा बेहद बढ़ जाती; लेकिन हेमचन्द्रकी आकांक्षा आत्म-विज्ञापनकी दिशामें शून्य-जितनी थी। जिस ओर उनका झुकाव हुआ, उधर ही उन्होंने तह तक पहुँचनेका प्रयत्न किया। अभी प्रेमीजीने हेमचन्द्रद्वारा लिखित जो पुस्तकें और लेख भेजे हैं, उन्हें देखनेसे पता चलता है कि उनका ज्ञान कितना गहन था। कहानी, आलोचना, अलंकार, ब्रह्मचर्य तथा स्वप्न आदि अनेकों विषयोंपर उन्होंने खोजपूर्ण लेख लिखे हैं, जिनसे उनकी बहुमुखी प्रतिभाकी झलक मिलती है। 'ब्रह्मचर्य' पर तो उन्होंने एक पुस्तक ही लिख डाली है। लेकिन अपनी लिखी चीज़ोंको झटपट छपा डालनेकी जल्दीमें वे नहीं थे। वह तो अपने ज्ञानको नित्यप्रति बढ़ानेमें संलग्न थे। वह साहित्यकी ठोस सेवा करना चाहते थे और वास्तविक अर्थोंमें राष्ट्र-भाषाको कुछ देना चाहते थे। यदि वह चाहते तो इन लेखोंको किसी भी पत्रको भेज देते और सम्पादक महोदय उन्हें प्रकाशित करनेमें गर्वका अनुभव करते, लेकिन उस मूक साधकमें कीर्तिकी भूख थी ही नहीं। जिन दिनों मैं वहाँ था, उन्होंने शायद कोई पुस्तक तैयार की थी। उसके विषयमें कुछ देर तक उनसे चर्चा भी हुई थी।

मुझे याद है कि प्राकृतिक चिकित्सापर भी उनसे कुछ बातचीत हुई थी और भोजन-शास्त्रपर उन्होंने एक छोटा-सा प्रवचन ही दे डाला था। मुझे यह जानकर हर्ष और विस्मय हुआ कि जो बातें उन्होंने बताई थीं, उनका स्वयं प्रयोग कर चुके थे।

हेमचंद्रकी जिस खूबीने मुझे विशेष रूपसे आकृष्ट किया, वह था उनका शांत और हँसमुख स्वभाव। विनोदी भी वह खूब थे। उनकी हँसीका मुझे आज भी ध्यान है। सात-आठ दिनमें मैंने एक बार भी उन्हें झुंझलाते या उद्विग्न होते नहीं देखा।

कई मीटिंगोंमें वह हम लोगोंके साथ गये। लेकिन कहीं भी अपने ज्ञानका प्रदर्शन करते मैंने उन्हें नहीं पाया। सबसे बड़ी उनकी विशेषता यही थी कि इतना जानते हुए भी वह यही समझते थे कि वह कुछ भी नहीं जानते।

साहित्य-प्रेमकी सच्ची लगन उनमें जाग्रत हो गई थी न ! दूसरोंको ठेल कर आगे आ विराजनेकी वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनकी प्रकृति इसके सर्वथा प्रतिकूल थी।

हम लोगोंमेंसे अधिकांश भविष्यकी चिन्तामें अपने वर्तमानका उपभोग नहीं कर पाते। भाई हेमचंद्रमें यह बात न थी। अपने सामनेके क्षणका वह खूब लाभ उठा लेते थे और व्यर्थकी चिंतासे अपनेको मुक्त रखते थे। जस्सू-पस्सूके साथ हैं तो हो नहीं सकता कि दुकानकी चिन्ता उन्हें सतावे और जब दुकानमें हैं तब घरकी ओरसे एकदम निश्चिंत। संभवतः इसी वजहसे वह प्रत्येक कार्यको एकाग्रताके साथ कर सकते थे। दुकानमें अपनी मेज़-कुर्सीपर मैंने उन्हें कई बार प्रूफ पढ़ते अथवा लिखते देखा। वही अद्भुत तल्लीनता, मानों सारी दुनिया सिमट कर वहीं केंद्रित हो गई हो।

*　　　*　　　*　　　*

बंबईसे लौटे तो तो हेमचन्द्र स्टेशन पहुँचाने आये। वही काला कोट, वही ऐनक और बाँहपर लटका छाता। विनम्रता उनके चेहरेसे टपकी पड़ती थी। उस भीड़-भड़क्केमें वह ज़्यादातर चुप ही रहे; लेकिन उनकी आँखोंने बहुत-कुछ कह डाला।

हम लोगोंने चुपचाप बिदाई ली। उस समयका हेमचन्द्रका चित्र बार-बार मेरी आँखोंके आगे झूम उठता है।

*　　　*　　　*　　　*

उस दिन महीने भर घूम-घाम कर लौटा तो चतुर्वेदीजी (पं. बनारसीदासजी) ने हेमचन्द्रका समाचार दिया। उस अनहोनी बातपर मैं सहसा विश्वास न कर सका। भीतरसे जैसे कोई कहता हो कि यह हो कैसे सकता है! लेकिन जब उन्होंने चालीसगाँवसे लिखी २१ मई १९४२ (मृत्युके तीन दिन बाद) की प्रेमीजीकी चिट्ठी दिखाई तो लाचार होकर विश्वास करना ही पड़ा।

प्रेमीजीके उस परिवारकी अब मैं कल्पना नहीं कर सकता। उसका ध्यान आते ही हृदय विदीर्ण होता है। प्रेमीजी, चम्पा बहन और जस्सू-पस्सूने क्या खोया है, इसका कौन अनुमान कर सकता है ? जिस आधारपर उन सबका जीवन टिका था, क्रूर कालने उसे छीन लिया और आज वे सब असहाय हैं।

जीवन-सागरमें हम सब अपनी-अपनी लघु नौकाएँ लेकर थपेड़ोंके बीच बह रहे हैं। कब किसकी नैया अनन्तमें विलीन हो जायगी और कब किससे बिछोह हो जायगा, कौन जाने ?

कुण्डेश्वर (टीकमगढ़)

२५

स्वर्गीय हेमचन्द्र

(एक स्मृति और चार पत्र)

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

"चौबेजी, आज आप ही इसे टहलाने ले जाइये। मुझे तो आज दुकानका बहुत-सा काम है।" कभी-कभी प्रातःकालमें बन्धुवर श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी हेमचन्द्रको मेरे सुपुर्द करते हुए ये शब्द कहते और फिर अपने कार्यामें व्यस्त हो जाते थे। मैं दिलमें ख़याल करता, "प्रेमीजी भी अजीब तेलीके बैल हैं, जो दिन-रात काममें ही जुते रहते हैं! बारह-चौदह घंटे काम करना कहाँकी भलमनसाहत है!" और हेमचन्द्रको अपने साथ ले लेता। उस समय मैं यह बात भूल जाता था कि अगर प्रेमीजी वर्षोंसे इतना परिश्रम न करते तो हिन्दी-साहित्यको जो बीसियों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मिले हैं तथा अनेकों लेखकोंको जो चिरस्थायी कीर्ति, वह कहाँसे प्राप्त होती।

बात सन् १९२१ की है, जब कि महात्मा गान्धीजीके आदेशानुसार मुझे कई महीने तक बम्बईमें रहना पड़ा था। उस सनातन धर्मके अनुसार, जिससे कोई भी बम्बईप्रवासी हिन्दी-साहित्य-सेवी सर्व प्रथम प्रेमीजीका आत्मीयता-युक्त आतिथ्य ग्रहण करता है, मैं भी पहले प्रेमीजीके घरपर ही रहा और फिर उन्होंने अपने कार्यालयके निकट एक कमरा दिलवा दिया, जहाँ मैंने कई महीने तक उन्हींकी संरक्षतामें निवास किया। कच्चा दूध अमुक मुसलमानकी दूकानपर अच्छा मिलता है, दलिया वहाँसे लिया करो, टहलनेका नियम बम्बईमें अनिवार्य है, भोजनकी व्यवस्था इस ढङ्गसे करो, अमुक महाशयसे सावधान रहना क्योंकि वे उधारके रुपये आमदनीके खातेमें लिखते हैं। इत्यादि न जाने कितने उपदेश उन्होंने मुझे दे दिये थे। यही नहीं, उन्होंने मुझे एक अन्नपूर्णा कुकर भी खरिदवा दिया था। प्रेमीजी मेरी सर्वव्यापक अव्यवस्थाकी बात जाने गये थे और यदि मैं बम्बई-प्रवाससे सकुशल ही नहीं, तन्दुरुस्त भी लौटा तो उसका श्रेय प्रेमीजीको ही है।

हेमचन्द्रमें जिज्ञासाकी भावना थी और मुझे गप्पाष्टकका शौक। इसलिये

हम दोनोंका स्वाभाविक मेल हो गया था। तेईस वर्षके इस अन्तरके बाद मुझे हेमचन्द्रकी वे बालसुलभ बातें याद नहीं रहीं, पर एक बात मैं अभी तक नहीं भूला।

रेलकी पटरी और चोर

उन दिनों चौपाटीके पास रेल निकल रही थी और वहाँ लोहेकी लम्बी-लम्बी पटरियाँ पड़ी हुई थीं। हेमचन्द्रने एक बार मुझसे पूछा, "चौबेजी, ये पटरियाँ यहाँ यों ही पड़ी रहती हैं?"

मैंने कहा, "सो क्या हुआ?" "इन्हें कोई चोर क्यों नहीं चुरा ले जाता?" हेमचन्द्रने कहा। मुझे इस प्रश्नसे हँसी आगई। उत्तरमें मैंने कहा, "घर चलकर इस सवालका जवाब दादाजीसे पूछेंगे। यह बहुत मुश्किल है।"

घर लौटनेपर प्रेमीजीसे यह गम्भीर प्रश्न किया गया और तब हम लोग खूब हँसे। बीस वर्ष तक मैं इस मज़ाकमेंसे रस लेता रहा और समय-समयपर प्रेमीजीको हेमचन्द्रके इस प्रश्नकी याद दिलाता रहा। यद्यपि इस बीचमें अनेक बार बम्बईकी यात्रा करनेका अवसर मुझे मिला, पर हेमचन्द्र उन दिनों बम्बईमें थे नहीं, इसलिये उनकी केवल बाल्यावस्थाकी मूर्ति ही मेरे सम्मुख है। पर उनसे पत्र-व्यवहार कभी कभी जरूर हुआ और उनके चार पत्र इस लेखके साथ ही छप रहे हैं।

जब प्रेमीजीको कोई साहित्यिक स्कीम मैं सुझाता और हेमचन्द्रसे भी परामर्श करनेकी प्रार्थना करता तो प्रेमीजी प्रायः यही लिख देते थे, "मैं तो अब बूढ़ा हो चला। अपनी योजना हेमचन्द्रको समझा दो। आपकी बात वह मान जायगा। आपके प्रति उसके मनमें श्रद्धा है।"

मेरा स्वार्थ

प्रेमीजीकी इच्छा थी कि हेमचन्द्र दस-पन्द्रह दिन यहाँ आकर रहे और मैं भी इस बातके लिये उत्सुक था कि सस्ते ट्रैक्ट निकालनेकी योजना तथा अन्य साहित्यिक स्कीमोंपर उनसे बातचीत करूँ। अपने साहित्यिक जीवनके प्रारंभसे ही मेरी यह अभिलाषा रही है कि मेरी भी कोई पुस्तक '*हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर*' *कार्यालयद्वारा* छपे। प्रेमीजीको मैं हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक मानता रहा हूँ। इसलिये मेरे मनमें स्वार्थकी यह भावना भी थी कि हेमचन्द्र मुझसे कुछ किताबें लिखा लेगा और उसके द्वारा मेरा नष्ट-प्राय साहित्यिक जीवन शायद फिर पल्लवित हो उठेगा।

जब हेमचन्द्र चालीसगाँव पहुँचकर बीमार हुआ तो मैंने प्रेमीजीको लिखा, " बीमारीसे उठनेपर स्वास्थ्यलाभ करनेके लिये हेमचन्द्रको यहाँ भेज दीजिये। यहाँके आनन्दप्रद वायुमण्डलमें वह शीघ्र ही तन्दुरुस्त हो जायगा। "

पर हेमचन्द्रको तो परलोककी यात्रा करनी थी। मैं फिर उसके दर्शन न कर सका।

स्पष्टवादिता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

हेमके जो चार पत्र अन्यत्र दिये जा रहे हैं उनसे उसकी व्यापक अध्ययनशीलता तथा स्वतन्त्र विचारशैलीका पर्याप्त परिचय मिलता है। शिथिल तर्कशैली, कोरमकर भावुकता, उथले ज्ञान तथा अवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे हेमकी दुश्मनी थी और जहाँ कहीं भी इनमेंसे कोई भी दुर्गुण उसे दीख पड़ता, वह बिना किसी शिष्टाचारका खयाल किये सीधा आक्रमणका बैठता था। उसकी दो चार चोटें मुझे भी सहनी पड़ीं, क्योंकि उपर्युक्त चारों त्रुटियाँ थोड़ी-बहुत मात्रामें मुझमें अवश्य विद्यमान् थीं। पहले तो मेरे दिलको कुछ धक्का-सा लगा क्योंकि हेमके पूज्य दादाजी भी मुझे बख़शते रहे हैं, पर हेम तो अपने दादाजी तकको नहीं बख़शता था तो मुझे क्यों छोड़ता ! हम लोगोंके लिये जो चिकनी चुपड़ी बातोंके सुननेके अभ्यस्त रहते हैं, अपनी स्पष्ट आलोचना सुनना आसान नहीं, पर हेमकी आलोचनाके पीछे कोई कटुता नहीं थी, अपने विस्तृत अध्ययनका कोई प्रदर्शन नहीं था, और किसी प्रकारके असम्मानकी भावना भी नहीं थी। हेम दरअसल प्रत्येक प्रश्नको वैज्ञानिक ढङ्गपर विश्लेषण करनेका पक्षपाती था और यदि उसकी ईमानदार तराजूपर जैनेन्द्रकुमारजीकी चीज़ उन्नीस साबित होती तो वह साफ कह देता कि इसमें कुछ खोटापन है और यदि उसे दीख पड़ता कि चौबेजीके तर्कमें अव्यवहार्य आदर्शवाद अथवा कोरमकोर भावुकता है तो वह एक सच्चे वैज्ञानिककी भाँति दो टूक बात कह देता, " यह नहीं चलनेका। "

बातकी तहमें

हेमचन्द्रका कुकर विषयक पत्र तो आश्चर्यजनक है। मैंने वैसे ही प्रेमीजीको लिख दिया कि पहले आपने ही अन्नपूर्णा कुकर दिलवा दिया था, अगर फुर्सत हो तो वही अथवा कोई दूसरा कुकर भिजवा दीजिये। उत्तरमें हेमचन्द्रने आधी बम्बई छान डाली और पूर्ण विवरणात्मक केटलॉग मय कुकर-साहित्यके भेज दिया ! तत्पश्चात् एक बढ़िया काफी मज़बूत कुकर

भी भेजा। हेमचन्द्रके पत्रसे पाठक उसकी प्रत्येक बातकी तहमें जानेकी प्रवृत्तिका अनुमान कर सकते हैं। हेमचन्द्रने अपने पत्रमें लिखा था—

"आशा है अब आपको स्वास्थ्यकर भोजन मिलेगा और पुस्तकोंके लेखकों तथा प्रकाशकोंकी खूब ख़बर लिया करेंगे। दादाको भी न छोड़ेंगे।"

यह मधुर मज़ाक भी हेमके स्वभावका सूचक है।

मेरा एक अपराध

अपने इस अपराधको मैं आज लज्जापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि हेमके लिखे हुए योग्यतापूर्ण विस्तृत पत्रोंका मैं उस समय कोई भी उपयोग नहीं कर सका, यद्यपि उनमें कई बातें बड़ी मार्केकी थीं। अपनी भूलोंको भी, जिनका हेमने खण्डन किया था, स्वीकार करनेका नैतिक बल मुझमें नहीं था। यदि मैं उसके सामने अपनी त्रुटियोंको स्वीकार कर लेता तो उसे कुछ सन्तोष तो होता। शायद कुछ प्रोत्साहन भी मिलता।

प्रोत्साहन प्रवृत्तिका अभाव

यदि हेमचन्द्रकी प्रतिभा पूर्णतया विकसित नहीं हो सकी, हिन्दी-संसार उससे पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सका तो इसमें प्रेमीजीका अपराध कम है, हम लोगोंका—प्रेमीजीके साहित्यिक मित्रोंका—ज्याद:। कहाँ है हम लोगोंमें प्रतिभाको पहचानने तथा प्रोत्साहन देनेकी वह प्रवृत्ति, जो स्वर्गीय त्रिमूर्ति (पं. महावीर प्रसादजी द्विवेदी, पं. पद्मसिंहजी शर्मा और अमर शहीद गणेश शंकरजी विद्यार्थी) में विद्यमान थी। यदि प्रेमीजी हिन्दीके नामी-गरामी लेखकोंकी भाषा शुद्ध करनेमें व्यस्त थे, अनुवादोंको मूलसे मिलाकर अक्षम्य भूलोंको सुधारनेमें उनका वक्त बीतता था और सवेरेसे शाम तक तेलीके बैलकी तरह उन्हें इस लिये जुता रहना पड़ता था कि उनकी ग्रन्थमाला-द्वारा हिन्दी-साहित्यकी कुछ अभिवृद्धि हो, उन्हें चार पैसे मिलें और हिन्दी लेखकोंकी भी कुछ सेवा हो जाय, तो हम लोग तो हेमचन्द्रको आगे बढ़ानेमें भरपूर सहायक हो सकते थे। प्रेमीजीका संकोच स्वाभाविक था, हम लोगोंका अपराध अक्षम्य।

एक सबक

सम्पादकाचार्य सी. पी. स्काट सदा इस बातकी तलाशमें रहते थे कि कहाँ किस प्रतिभाकी कली प्रस्फुटित हो रही है। उसे अपने पत्रके लिये प्राप्त करनेमें वे अपनी सफलता समझते थे। द्विवेदीजी नवीन लेखकोंका पता

लगा लगाकर बीसियों चिट्ठियाँ लिखते थे। पं. पद्मसिंहजीका सम्पूर्ण जीवन 'दाद' देते हुए ही बीता और विद्यार्थीजीने तो बीसियों लेखकोंका निर्माण किया। आज हिन्दी-जगत्‌में उस गुण-ग्राहकताका प्रायः अभाव ही हो गया है। हर आदमी अपनी ढपलीपर अपना राग गा रहा है और कितने ही तो अपना ढोल खुद ही पीट रहे हैं! इस नक्कारखानेमें कौन किसकी सुनता है! जहाँ ठोस योग्यताके स्थानपर पोला विज्ञापन अधिक लाभदायक हो, उस क्रय-विक्रयमय हिन्दी-संसारमें हेमचन्द्रके लिये कोई स्थान था ही नहीं। सस्ती कीर्ति पानेकी इच्छा उसमें थी नहीं और उसके गम्भीर अध्ययनकी यथोचित् दाद देनेवालोंका यहाँ अभाव था। हेमचन्द्रका दृष्टान्त हम सम्पादकोंके लिये शिक्षाप्रद है। कहीं हम वैसी ही उपेक्षा फिर न कर बैठें।

बस एक चित्र

हेमचन्द्रकी बस एक ही तस्वीर मेरे सामने है। चौपाटीपर हम दोनों टहलने जा रहे हैं, हेम मेरी उँगली पकड़े हुए है, वहमी होनेके कारण मैं चिन्तित हूँ कि कहीं इधर-उधरसे मोटर न निकल आवे। पर हेम निश्चिन्त है और सवालपर सवाल किये जा रहा है। हम लोग सही-सलामत घर लौटते, प्रेमीजीसे उन प्रश्नोंको पूछते, तब दोनों मिलकर खूब हँसते।

कौन जानता था कि आज तेईस वर्ष बाद साथ मिलकर अश्रु भी बहाने पड़ेंगे? हम लोगोंके प्रति हेमका जो कर्तव्य था—साहित्यिक श्राद्ध—उसे हम आज उसके लिये कर रहे हैं! विधिकी विडम्बना!

टीकमगढ़]

पत्र १

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई

पूज्यवर चौबेजी,

प्रणाम। आपका पत्र ता० ९ का ठीक समय मिल गया था, पर इसके पहले उत्तर न दे सका। इसका कारण यह है कि पिताजी दिल्ली चले गये हैं। वहाँसे ..जायँगे। वहाँ दो महापुरुष हैं। उन्होंने ५, ६ सालसे हमें बेहद तंग कर रक्खा है। अब नालिश कर दी है, उसकी पेशी है। पिताजीकी जिन्दगीमें शायद पहला ही मुकदमा है। वे मुकदमेसे बेहद घबड़ाते हैं।

आपके लेख और उससे बढ़कर पत्र पढ़कर विचित्र-विचित्र अनुभूतियाँ होती हैं। उनसे मालूम होता है कि आप कैसे भावनाशील हैं। वास्तवमें भावना या Passion ही शक्ति है और इसी शक्तिके कारण आप इतना कुछ कार्य कर रहे हैं। परन्तु अनेक बार, माफ कीजिये, आप भावनामें बेहद बह जाते हैं। तर्कका कूल ही छोड़ देते हैं। आप कहते हैं कि इसमें मेरा किसी भी प्रकारका स्वार्थ-सम्बन्ध नहीं है, इस कारण यह आन्दोलन फेल नहीं हो सकता। पर किसी आन्दोलनकर्ताका स्वार्थ-सम्बन्ध न होना ही किसी आन्दोलनकी सफलताकी decisive condition (निर्णयात्मक शर्त) नहीं है, decisive factor (निर्णयात्मक साधन) भी नहीं है। किसी भी आन्दोलनकी सफलताके लिये उसको बहुजनका, आम जनताका, स्वार्थ होना आवश्यक है। यह ठीक है कि केवल किसी एक व्यक्तिका स्वार्थ होनेसे आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, परन्तु बहुजनके साथ किसी एक व्यक्तिका भी स्वार्थ शामिल हो तो कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि कभी कभी तो सफलताके लिये वह आवश्यक भी हो जाता है। आप कितने ही निःस्वार्थ भावसे आन्दोलन करें, परन्तु प्रकाशक लोग उसका बेजा लाभ उठाकर अनावश्यक और निरुपयोगी पुस्तकें लोगोंपर मँढ़ने लगें तो आपका आन्दोलन कैसे सफल होगा?

मेरे ख्यालसे तो स्वार्थ होना आवश्यक है, पर वह स्वार्थ व्यक्तिगत न होकर समूहगत हो। यही सफलताके लिये आवश्यक शर्त है। इसके सिवाय बाकी बातें आन्दोलन करनेवालोंकी शक्तियोंपर निर्भर हैं।

'वि० भा०' का अप्रेलका अंक मुझे पढ़नेको नहीं मिला है। लुई माइकेलके विषयमें अपने जो कुछ लिखा होगा, वह अनुमान कर सकता हूँ और उसे पढ़नेकी मेरी बड़ी इच्छा है। पर मुझे आपका यह टाइटिल पसन्द नहीं आया। टाइटिलमें सिर्फ 'लुई माइकेल' इतना ही होता तो ज्यादा अच्छा था। मेरे ख्यालसे लुई माइकेलका महत्त्व इस कारण नहीं है कि वह अराजकवादी थी, बल्कि अराजकवादका ही इसमें सौभाग्य है कि इस सिद्धान्तको ऐसे आदमी मिले। आपने एक पत्रमें लिखा था कि मुझे संस्थाओंमें विश्वास नहीं है, व्यक्तियोंमें है। मैं संस्थाओं और सिद्धान्तोंको एक ही लाइनमें रखता हूँ। सिद्धान्त और संस्था तो वह हथियार है, जिसके द्वारा व्यक्ति कार्य करता है। संस्था आवश्यक है, सिद्धान्त भी आवश्यक है

पर वे कितने ही आवश्यक हों, व्यक्तिके लिये हैं, व्यक्तिके नीचे ही हैं। व्यक्ति उनके लिये नहीं है।

सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें मेरा ख्याल है कि जिस प्रकार एक कारीगर आवश्यकता, समय, परिस्थिति आदिके अनुसार कभी एक हथियारका उपयोग करता है, कभी दूसरेका—नाई कभी कैंचीसे काम करता है, कभी उस्तरेसे, कैंचीवाद या उस्तरावादका गुलाम होनेसे उसका काम नहीं चल सकता। उसी तरह मनुष्य-जातिका काम भी एक वादसे नहीं चलेगा। अराजकतावादी रूसमें, स्पेनमें, जर्मनीमें, इटलीमें खड़े हुए, पर फेल हुए। कारण यही था कि समय, परिस्थिति उस हथियारके अनुकूल नहीं थी। कम्युनिज़्म (साम्यवाद) रूसमें सफल हुआ और जर्मनी, इटली और स्पेनमें असफल। इसका भी कारण परिस्थितिओंकी विभिन्नता ही थी। यह सफलता-असफलता किसी वादकी सचाई-झुठाईसे निश्चित नहीं होती, और न कोई वाद पूर्णरूपसे सत्यरूपसे सत्य या असत्य ही होता है। वास्तवमें सत्य और असत्य व्यक्ति और परिस्थितिकी प्रतिकूलता-अनुकूलताका ही नाम है। यह बात अस्पष्ट-तौरसे समझनेके कारण कभी कभी इन वादियोंको विचित्र परिस्थितियोंमें पड़ना पड़ता है। यद्यपि यह सही है कि अराजकतावादियोंने क्रान्ति निकट लानेमें सहायता पहुँचाई, पर ऐन रूसकी क्रान्तिके समय क्रोपाटकिनके अनुयायियोंने ज़ारशाहीका साथ दिया और स्पेनमें वे फ्रैंकोके सहायक हुए।

पर एक बात है। अराजकतावादने अपनेमें अनेक महापुरुषोंको आकर्षित किया और इसीमें उसका महत्त्व है और भविष्यमें जब अनुकूल परिस्थितियाँ होंगी तब उसकी सफलताका एक कारण उन महापुरुषोंका त्याग भी होगा। वास्तवमें सफलता किसी वादको नहीं मिलती है, सफलता व्यक्तिको मिलती है, जिसका कि वह वाद हथियार बनता है। हाँ, हथियारका चुनाव वह व्यक्ति स्वयं ही करता है। रूसमें सफलता लेनिनको मिली। कम्युनिज़्म (साम्यवाद) तो उसका हथियार था। यदि हथियारमें कोई विशेषता होती तो उसे सब जगह सफलता मिलनी चाहिये थी, सो नहीं हुआ। जर्मनीमें सफलता हिटलरके व्यक्तित्वकी हुई है, नाजीवादकी नहीं। यही हाल हिन्दुस्तानमें है। जो कुछ सफलता यहाँ मिली है, वह अहिंसावाद या गाँधीवादकी नहीं है और न वह काँग्रेसकी है। काँग्रेस और अहिंसावाद तो

गाँधीके हथियार हैं। दूसरोंके हाथमें तथा विभिन्न परिस्थितियोंमें इनका असफल होना भी निश्चित है।

हिन्दीमें यदि हमें कोई आन्दोलन करना है तो उसके लिये पत्र चाहिये, संस्था चाहिये, प्लेटफार्म चाहिये। व्यक्तियोंके संगठनका नाम ही संस्था है। इसके लिये या तो हमें नवीन संस्थाओंकी सृष्टि करना चाहिये या पुरानी संस्थाओंको हस्तगत। जिन लोगोंके हाथमें वे संस्थाएँ और पत्र हैं, उनको अपने अनुकूल करनेसे भी काम चल सकता है। पर उनकी Fanatic (आँख मूँदकर उपेक्षा) से काम नहीं चलेगा। बिला हथियार कोई कार्य नहीं हो सकता।

आपके पैम्फ्लेटोंके प्रचारमें शामिल होना मैं अवश्य पसन्द करूँगा परन्तु एक बात है। इस तरहके पेम्फ्लेटोंके प्रचार करनेका आपका लक्ष्य क्या है? अनेक बार कार्य करते-करते हम लक्ष्यको भूल जाते हैं। कार्य करनेमें ही इतना आनन्द आने लगता है कि वह आनन्द ही या वह कार्य ही हमें लक्ष्य मालूम होने लगता है। अराजकवादका प्रचार करना ही क्या आपका लक्ष्य है? या सभी किस्मकी विचारधाराओंके साथ इसका भी लोगोंको परिचय कराना और जनताकी दृष्टिको अधिक विशाल बनाना है? यदि दूसरा लक्ष्य है तो ही मैं आपको सहयोग देनेकी चेष्टा कर सकूँगा। अराजकतावादके सिद्धान्तमें मुझे विश्वास नहीं है, यद्यपि साहित्य मैंने उसका काफी पढ़ा है। पैम्फलेटोंके प्रचारके लिये सुगम तरीका, जो मेरे अख्तियारमें है, वह यह है कि जो भी पुस्तकें वी॰ पी॰ से या अन्य तरीके हमारे यहाँसे जाती हैं उनमें एक-एक प्रति आपके पैम्फेलेटकी भी रख दी जाय। आप सुविधा देंगे तो अवश्य मैं ऐसा कर सकूँगा।

एक बात और भी है। राजनीतिक जगतमें कभी कभी ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्त भी प्रतिक्रियावादियोंके गढ़ बन जाते हैं। कभी-कभी जो किसी वादके सच्चे अनुयायी हैं वे किन्हीं स्वार्थी व्यक्तियोंके हथियार बन जाते हैं। कम्यूनिज़म (साम्यवाद) और सोशलिज़्म (समाजवाद) के सिद्धान्त अवश्य बहुत ऊँचे हैं, पर आज हिन्दुस्तानमें ये सिद्धान्त प्रतिक्रियावादियोंके गढ़ हो रहे हैं, जिसके द्वारा वे राष्ट्रीय एकताका विनाश कर रहे हैं। इन्हें वे लोग भी मदद कर जाते हैं जो इन सिद्धान्तोंको जरा भी नहीं मानते, पर जिनका स्वार्थ राष्ट्रीय एकताके विनाशमें हैं। महायुद्धके समय जर्मनीमें कम्यूनिज़्मके प्रचारने जर्मनीकी कमर तोड़ दी, उसी कारण उसे हारना पड़ा। कम्यूनिज़्मको

इसी पापके कारण आज यहाँ हारना पड़ा है। अराजकतावादियोंने भी अनेक जगह यह कार्य किया है। इसी कारण आज वह किताबोंमें ही रह गया है।

आप कहते हैं कि 'मुझे तो 'सर्वाधिकार रक्षित' वाला मामला ही गलत दीखता है,' यह ठीक लक्ष्य-भेदसे ही ठीक हो सकता है। यदि आपका लक्ष्य केवल प्रचार करना ही है तो अवश्य यह न होना चाहिये, पर लक्ष्य और ही कुछ हो तो अवश्य होना चाहिये। गाँधीजीने अपनी आत्म-कथाके अधिकारको पब्लिक प्रोपर्टी (सार्वजनिक सम्पत्ति) कर दिया है। आप भी ऐसा कर सकते हैं। पर आपको ऐसी आशा न करनी चाहिये कि सभी ऐसा कर दें। साथ ही Copyright के कानूनको repeal (उलट) कर देना भी अन्याय ही होगा। जब तक पैसेका मूल्य है, तब तक अवश्य व्यक्ति अपने परिश्रमका मूल्य पैसेके रूपमें चाहेगा। कोरी वाहवासे उसका पेट नहीं भरेगा।

आलोचनाके सम्बन्धमें मेरे कुछ और ही ख्याल हैं। साधारण तौरसे हम लोगोंका ख्याल है कि किसी पुस्तकके अनुकूल या प्रतिकूल कुछ लिख देना ही आलोचना है। आपका भी शायद यही खयाल है। तभी आप लिखते हैं कि 'सर्वथा निष्पक्ष आलोचना होनी चाहिये।' हिन्दीमें निष्पक्ष आलोचनाकी इतनी जरूरत नहीं है जितनी कि Systematic (विधिवत रूपसे) आलोचनाकी जरूरत है। मेरी समझमें आलोचना कभी निष्पक्ष हो ही नहीं सकती। 'यह वस्तु मुझे अच्छी भी लगती है, बुरी भी लगती है।' यह कहनेका कुछ अर्थ ही नहीं हैं। गुण-दोष दोनोंकी विवेचना करते हुए भी किसी न किसी तरफ जोर तो लगाना ही पड़ेगा। हिन्दीमें अच्छे-से अच्छे आलोचकोंकी आलोचना पढ़ने पर भी सन्तोष नहीं होता है। तौर-तरीका कुछ होता ही नहीं। Point to Point तरीकेसे लिखी हुई कोई आलोचना हिन्दीमें नजर नहीं आई। आलोचना भले ही पक्षपातपूर्ण हो पर Systematic हो, सर्वांग हो, आवश्यकता इस बातकी है। Review और criticism (समीक्षा) आलोचना जुदी-जुदी चीजें हैं, यह भी बहुत लोग नहीं समझते। पत्र आलोचनार्थ पुस्तकें खरीदें या न खरीदें, यह गौण बात है।

कोई साल डेढ़ सालसे मैं केवल आलोचना-शास्त्रका ही अध्ययन कर रहा हूँ। आलोचना-शास्त्रके जुदे-जुदे View points (दृष्टिकोणों)से संग्रहकी हुई कहानियोंका एक संग्रह भी किया है, जो अभी छपा नहीं है। बीच-बीचमें ऐसे कार्य आ जाते हैं कि उस कार्यको यों ही डाल देना पड़ता है। संस्कृतके

साहित्य-शास्त्रके करीब-करीब सभी प्रमुख ग्रन्थोंको और अंग्रेजीके भी करीब २५-३० इस विषयके ग्रन्थोंको पढ़ चुका हूँ। उसमें कुछ नये आविष्कार और सूझें भी पैदा हुई हैं।

इसके पहले ७-८ साल वेद-वेदान्त, हठयोगका अभ्यास, साइकोलोजी, साइको अनालिसिस और फ़िलासफ़ीमें खर्च कर चुका हूँ। अभी साल भरसे हिन्दीके उपन्यास और कहानियाँ पढ़ना शुरू की हैं। यह मेरी योग्यता है। इसका आप जैसा उपयोग करना चाहें, करें। बहुतसे लेख तो कई सालसे तैयार पड़े हैं, पर किसी पत्रको भेजनेका साहस नहीं कर पाया। ४-५ वर्ष पहले लिखा हुआ एक लेख २-३ महीने पहले 'हंस' में छपा है—' युक्तिवादके प्रति बगावत '। आपने शायद पढ़ा हो। न पढ़ा हो तो पढ़ लें। उससे आपको मेरा लिखनेको ढंग मालूम हो जायगा। इसके बाद आपका आग्रह होगा तो अवश्य मैं ' विशाल भारत'के लिये लिखनेकी कोशिश करूँगा।

आपके प्रश्नोंका उत्तर अलगसे दे रहा हूँ।

आपका आज्ञाकारी
हेम

प्रश्नोंके उत्तर

प्रश्न १—मेरा कोई निजी पुस्तकालय नहीं है। पिताजीका है। मेरे मतलबकी उसमें बहुतसी पुस्तकें हैं, जिन्हे मैंने खरीदा है। पिताजीकी पुस्तकें संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश तथा बंगाली, गुजराती, मराठी भाषाओंकी है। मेरी पुस्तकें संस्कृत और अंग्रेजीकी हैं। हिन्दीकी अधुनिक पुस्तकें क्वचित् हैं। पुरानी बहुत-सी हैं। पर पुस्तक-विक्रेताका रोजगार होनेके सबब हिन्दीकी शायद ही कोई मेरे मतलबकी पुस्तक ऐसी हो, जो मैंने न पढ़ी हो।

प्रश्न २—मानसिक प्रेरणा कौनसे ग्रन्थोंसे मिलती है, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। शायद सभी भाषाके ग्रन्थोंसे मिलती है। सबका Compound या Complex effect होता है।

प्रश्न ३—सभी गम्भीर विषयोंकी पुस्तकें मुझे प्रिय हैं। मनोविज्ञान, दर्शन, आर तर्क विशेष रुचिके विषय हैं। साहित्यमें अभी-अभी रुचि लेने लगा हूँ। पहले उन्हें भूलकर भी नहीं पढ़ता था।

प्रश्न ४—साहित्य मेरा विषय कुछ ही दिनोंसे हुआ है। उस बीचमें मैंने जो कुछ भी पढ़ा है, उसमें मुझे जैनेन्द्रजी और प्रेमचन्द्रजीकी ही रचनाएँ प्रिय हैं। नवीन लेखकोंमें भी मुझे कई प्रिय है, पर अभी तक उनकी रचनाएँ पुस्तकाकार नहीं निकली हैं।

प्रश्न ५—शायद कुछ भी नहीं। पर पढ़ा सभी किताबें करता हूँ। हाँ, दूसरोंसे हिन्दी पुस्तकें पढ़नेका अनुरोध अवश्य करता हूँ और इस बातकी भी कोशिश करता हूँ कि हरेक विषयकी बेहतर पुस्तकें हिन्दीमें निकलें। खरीदनेके सम्बन्धमें तो 'दिया तले अँधेरा' ही समझना चाहिये।

प्रश्न ६—'रूपाभ', 'हंस', 'वीणा', 'सरस्वती', 'विशाल-भारत' भी अनेक दफे मिल जाता है। पड़ौसमें ही आता है। जिन पत्रोंमें विज्ञापन छपता है, वे पत्र ही अधिकांश आते हैं। वार्षिक चन्दा देकर एक-दो पत्र ही आते हैं। देखनेको सब पत्र मिल जाते हैं।

प्रश्न ७—अध्ययन करने और लिखनेका ढंग सिखानेकी पुस्तकोंकी जिन्हें कि Scientific method वैज्ञानिक ढंगकी पुस्तकें कहते हैं, उनकी हिन्दीमें सबसे अधिक जरूरत है। हमारे लेखकोंमें प्रतिभा है, पर उसका किस तरह उपयोग करना चाहिये यह उन्हें नहीं मालूम। International library of Psychology, Philosophy and Scientific method (मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा वैज्ञानिक ढंगकी अंतर्राष्ट्रीय लायब्रेरी) सरीखी सीरीजकी हिन्दीमें सबसे ज्यादा जरूरत है।

प्रश्न ८—हिन्दी पुस्तकोंके प्रचारका सबसे बढ़कर तरीका यह हो सकता है कि पोस्टेजके दर घटा दिये जायँ। अमेरिका जैसे देशमें किताबोंके लिये पोस्टेजके खास न्यून दर हैं और प्रेसीडेन्ट रुजवेल्टने संस्कृति-प्रचारके निमित्त उन्हें और भी घटा दिया है। ४० तोले वजनकी पुस्तकपर अमेरिकामें सिर्फ तीन पैसे पोस्टेज लगता है जब कि हिन्दुस्थानमें सात आने। वर्तमान परिस्थितियोंमें जनताके सम्मुख उच्च साहित्य पहुँचानेके लिये पोस्टके सिवा और कोई जरिया हो ही नहीं सकता। जब तक यह जरिया अनुकूल न हो तब तक कितना ही आन्दोलन किया जाय, वह सफल नहीं हो सकता। इस समय एसेम्बलीका सारा ध्यान पोस्ट कार्ड और चिट्ठियोंकी दर घटानेपर है। मेरी समझमें पुस्तकोंके लिये खास रियायतपर ज़ोर देने और आन्दोलन करनेकी जरूरत है। सरकार ऐसे मान भी लेगी। चिट्ठियोंका पोस्टेज भले

ही इतना बना रहे, पर साहित्यके ऊपर इस टैक्सको हटानेकी जरूरत अधिक है। यह बात Statistics (आँकड़ों) से सिद्ध की जा सकती है कि जिस अनुपातसे यह दर बढ़ती गई, उसी अनुपातसे पुस्तकोंकी बिक्रीमें कमी आती गई। हमारा कार्यालय उसी जमानेमें पैदा हुआ और स्थिर हुआ, जब कि पोस्टकी दर कम थी। अब नई ग्रन्थमालाएँ जितनी कायम होंगी वे इस दरके मारे जी ही नहीं सकेंगी। इसके लिये बहुत अधिक आन्दोलनकी जरूरत है।

पत्र २

बंबई

पूज्यवर चतुर्वेदीजी,

पिताजीके नामका आपका ता० २० का पत्र और इसके पहलेका भी पत्र मैंने पढ़ा। आपके आन्दोलनसे मेरी हृदयसे सहानुभूति है। शायद इसका कारण हमारा अपना स्वार्थ हो, परन्तु फिर भी मेरी समझमें यह आन्दोलन एकांगी है, अधूरा है। एक पैरपर कोई व्यक्ति खड़ा नहीं हो सकता, इसी तरह एक पैरपर कोई आन्दोलन भी चल नहीं सकता। यदि आपका आन्दोलन कुछ चला भी तो उससे पुस्तक-व्यवसायियोंके जेबोंमें कुछ रुपये जरूर पड़ जायेंगे, परन्तु इससे साहित्यका या देशका कुछ भी कल्याण नहीं होगा।

यह तो अवश्यक है ही कि हिन्दी-पुस्तकोंकी विक्री कुछ बढ़े, पर इससे भी बढ़कर आवश्यक एक वस्तु और भी है। यदि आज अच्छी पुस्तकोंकी विक्री बढ़ जावे और हम उन्हें अधिक प्रकाशित करने लगें तो इसमें हमारा कोई बड़प्पन नहीं है। यह तो एक साधारण प्राकृतिक घटना होगी। प्रकृति और समयकी गुलामी होगी। जब तक कि हम अपनी चीजके मूल्यको नहीं बता सकते, उसकी आवश्यकता नहीं प्रमाणित कर सकते, जब तक हम उसके लिये तप नहीं करते, तब तक क्यों कोई हमारी चीज ले ? आज कल प्रत्येक व्यक्तिमें, जो साहित्यसे सम्बन्ध रखता है, रुपये और स्वार्थकी भावना इतनी अधिक धुस गई है कि यदि हमें जरा भी आगे बढ़ना है तो उसको नष्ट करना आवश्यक है। पूँजीवादमें अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही हैं। हमारे दुभाग्यसे हमारे साहित्य-जगतमें उसकी बुराइयाँ सब आगई हैं,

अच्छाई एक भी नहीं आई और वे बुराइयाँ ऐसे बेवक्त आई हैं कि उन्होंने हमारी सभी उन्नतिको रोक दिया है। इन बुराइयोंको दूर करनेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि प्रत्येक साहित्यिक व्यक्तिमें स्वार्थ-त्यागकी वृत्तिको उठाया जाय। उन्हें यह बताया जाय कि आज जो हम यज्ञ कर रहे हैं, उसका फल हमें नहीं मिलेगा, हमारी संतानको मिलेगा, इस कार्यके उत्तराधिकारीको मिलेगा। आज हम अमेरिका और योरुपके लेखकों, प्रकाशकों और बुकसेलरोंकी मोटी मोटी आमदनियोंपर ईर्ष्या करते हैं, लेखक उनका प्रकाशकोंको नीचा दिखानेके लिए उपयोग भी करते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि उनके पीछे उनके पूर्वज लेखकों, प्रकाशकों और बुकसेलरोंके कितने ही बलिदान छिपे हुए हैं। सबसे पहले हमें स्वार्थ-त्यागी प्रकाशकोंकी जरूरत है। इसके बाद स्वार्थ-त्यागी और परिश्रमी ईमानदार लेखकोंकी और उसके बाद स्वार्थ-त्यागी परिश्रमी बुकसेलरोंकी।

आल्डस और पाल म्युनिशियस, राबर्ट और हेनरी स्टीवन्स सरीखे पुस्तक-प्रकाशक, विलियम हटन और डाइस्ली सरीखे पुस्तक-विक्रेता, जिन्होंने कि भूखे मर कर भी अपने कार्यको जारी रक्खा, हिन्दीमें कहाँ हैं ? पुस्तक-प्रकाशकके पास कोई पुस्तक आती है तो छपानेके पहले वह यही सोचता है कि यह कैसी बिकेगी ? लेखक सोचता है कि मैं क्यों विशेष परिश्रम करूँ ? प्रकाशक क्या मुझे निहाल करेगा ? पुस्तक-विक्रेता सोचता है कि अच्छी पुस्तकें बिकती तो हैं ही नहीं, उन्हें बुलाकर क्यों व्यर्थ सडाऊँ ? सार्वजनिक संस्थाएँ स्वार्थी-साहित्यजीवियोंकी जीविकाका साधन हो रहीं हैं। उनमें कार्य करनेवाले व्यक्ति हमेशा यही सोचा करते हैं कि किस तरह कम-से-कम परिश्रम करके अधिक-से-अधिक रुपया प्राप्त किया जाय ? जब थोड़ेसे पूँजापति लोग साहित्यके द्वारा अपना स्वार्थ-साधन करते हों तब तो यह भावना फैलाना अच्छी ही है जैसा कि योरुपमें और यहाँ भी कहीं कहीं, परन्तु जहाँ साहित्य बिलकुल ही भूखा मर रहा हो, लेखकोंकी यह भावना बड़ी अनर्थकारी हो जाती है।

यदि इस भावनासे कुछ पुस्तक-प्रकाशक आगे आवें कि जो कुछ रुपया हमारे पास है और कमावेंगे वह सब उत्तम साहित्यके प्रकाशनमें ही व्यय होगा, अपने कुटुम्बके आवश्यक खर्चके लिये ही हम उसमेंसे कुछ लेंगे तथा ऐसी ही भावनावाले कुछ लेखक आवें कि हम अपने गुजारेके लिये

कोई और प्रबन्ध करेंगे और जो भी कुछ रूखा-सूखा हमें मिलेगा उसको लेकर अपने कार्यको करते रहेंगे और इसी तरह कुछ पुस्तक-विक्रेता मिल जायँ तो काम अच्छी तरह चल निकले। और रोगोंके समान स्वार्थत्यागका भी एक छूतका रोग है। जब इतने लोगोंको यह रोग लगेगा तब साधारण जनतामें भी वह फैले बिना न रहेगा। आजकल पढ़े-लिखे लोगोंमें स्वार्थ-त्यागकी भावना बिलकुल ही नहीं है। पुराने विचारोंके सनातनी लोग भले ही मूर्खताके कामोंमें रुपया व्यय करते हों, पर उनमें स्वार्थ-त्यागकी भावना है; परन्तु पढ़े-लिखे लोग समाज-सुधारकी बातें चाहे कितनी करें, एक पैसा भी निकालकर नहीं देते। जब पढ़े-लिखे लोगोंको यह रोग लगेगा तभी साहित्यकी, समाजकी, देशकी उन्नति होगी। मार्क्स अनेक बार मनुष्यको स्वार्थ-त्यागी न बनाकर अत्यन्त स्वार्थी बना देते हैं, यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। फासिस्ट इसीका परिणाम है। कम्यूनिस्ट लोग अपने व्यक्तिगत सम्बन्धोंमें अत्यधिक स्वार्थी होते हैं।

आज हिन्दीके लेखक और प्रकाशक, जो भूखे मर रहे हैं, वे स्वार्थ-त्यागकी भावनाके कारण नहीं, परिस्थितियोंके कारण मर रहे हैं। जो व्यक्ति रास्तेपर भीख माँगता फिर रहा है, वह किसी स्वार्थ-त्यागकी वृत्तिके कारण ऐसा नहीं करता। उसके पास कुछ है नहीं, इसलिये। इस तरहके भूखे मरनेका कोई मूल्य नहीं है। हम यही सोच लें कि भाई, भूखे तो मरना ही है, फिर क्यों न स्वार्थ-त्यागकी भावनासे ऐसा करें, तो भी एक बड़ी बात हो। परन्तु ऐसा हो नहीं रहा है। इसीलिये कुछ परिणाम भी नहीं आ रहा है।

खैर, यह तो बहुत बड़ी बात है; परन्तु आम जनतासे यदि हम कुछ आशा करें तो यह अत्यन्त आवश्यक भी है। परन्तु हम लोग तो अपना कर्तव्य भी नहीं करते। त्याग एक महान् चीज है। वह देवताओंके योग्य है; परन्तु कर्तव्य-पालन तो ऐसी चीज नहीं है। वह तो प्रत्येक मनुष्यका धर्म है। उसकी हम प्रत्येक मनुष्यसे आशा करते हैं। हिन्दीमें कमसे कम ५-१० हजार व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी आजीविका हिन्दी साहित्यपर ही निर्भर है। जो व्यक्ति चार पैसे किसी प्रकार कमाता है, उसके एक पैसेपर हिन्दी-साहित्यके लिये तब तक दावा नहीं कर सकते, जब तक कि हम स्वार्थ-त्यागकी कठिन तपस्या न करें। परन्तु जो व्यक्ति साहित्यके नामपर ही अपनी जेबें भरता है, उसपर तो हमारा यह अधिकार है कि उससे उसकी आमदनीका या समयका कुछ

हिस्सा इसके लिये लें। हिन्दीके जो प्रोफेसर हिन्दी-भाषाके पांडित्यके नामपर बड़ी बड़ी तनख्वाहें मारते हैं, उनका क्या यह कर्तव्य नहीं हो जाता है कि वे अपनी आमदनी और समयका एक बड़ा हिस्सा हिन्दीके लिये दें? आजकल इन लोगोंका समय क्लब और गपशपमें ही बीतता है, कोई कार्य नहीं करते। ये लोग ही यदि कुछ करें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। हिन्दीके सम्पादकों, पत्रकारों, मास्टरों आदिका तो यह कर्तव्य ही है। इसी तरह देश-नेताओंका भी यह कार्य है। हिन्दीके स्कूली-पुस्तक-प्रकाशक तो उसके शरीरपर लगी हुई जोंकें हैं। उससे वे कमाते, पेट भरते और मोटे होते हैं। परन्तु उसकी सेवा कुछ नहीं करते। जो लेखक और पुस्तक-प्रकाशक साहित्यकी उन्नतिमें भाग नहीं लेते, उनकी पुस्तकें कोर्सके तौरपर नहीं स्वीकार की जानी चाहिये। उन्हें पुस्तक-प्रकाशक माना ही नहीं जाना चाहिये। अन्य प्रकारके प्रकाशनसे जो त्याग करते हैं, उसमें आर्थिक हानि उठाते हैं, उसकी पूर्तिके जरिएके तौर पर ही इस कार्यमें उन्हें हिस्सा मिलना चाहिये। इसी तरह जो पुस्तक-विक्रेता केवल स्कूली पुस्तकें ही बेचते हैं, उन्हें बोनाफाईड बुकसेलर ही न मानना चाहिये और न उन्हें उस कमीशनका अधिकारी, जो बोनाफाईड बुकसेलरोंको प्राप्य है।

इसी तरह पत्र-प्रकाशकों और सम्पादकोंकी भी जिम्मेदारी है। जो पत्र-साहित्य सेवाके लिये निकलते हों और जिनमें घाटा हो, पुस्तक-प्रकाशकोंको चाहिये कि वे विज्ञापनादिके द्वारा उनकी सहायता करें। जो पत्र स्वावलम्बी हैं, उनका कर्तव्य है कि पुस्तकोंके विज्ञापनका खास इन्तजाम करें। कम दामोंमें उन्हें छापें, अच्छा स्थान दें। हिन्दीके साहित्यिक पत्रोंमें एक बड़ी कमी महसूस होती है। अँग्रेजीके साहित्यिक पत्र पुस्तकोंके विज्ञापनके खास स्थान रिजर्व रखते हैं और जिस प्रकार लेखोंकी सूची या अनुक्रमणिका प्रारम्भमें छापते हैं उसी तरह इन विज्ञापनोंकी सूची भी छापते हैं, जिससे पाठक यह जानना चाहे कि फलां प्रकाशकके नये प्रकाशन क्या है तो निर्दिष्ट पृष्ठ खोलकर देख सके। नहीं तो पाठकोंकी आदत होती है कि विज्ञापन-वाले पृष्ठ एक साथ ही उलट कर आगे बढ़ते हैं।

मेरा कहना है कि हिन्दीके लिए स्वार्थ-त्याग, कर्तव्य-पालन और संगठन-की ही सबसे ज्यादह आवश्यकता है। जो भी प्रश्नावली आप बनावें, जो भी आन्दोलन आप करें, इन तीन बातोंको लक्ष्यमें रखकर करें। आपके आठ

प्रश्नोंमें यह प्रश्न भी होना चाहिये कि हिन्दीके नामपर आप क्या पा रहे हैं? *हिन्दीके लिये आपने क्या स्वार्थ-त्याग किया है? कौनसा काम ऐसा कर रहे हैं कि जिससे कुछ बदलेकी आशा नहीं है, केवल सेवाकी भावना है?*

हिन्दीके साहित्य-कर्णधारोंको एक आदत पड़ गई है, जिसे छुड़ानेके लिये आन्दोलनकी जरूरत है। ज़रा भी कोई कुछ लिखना सीखा या प्रोफेसरीके जोरपर कमेटियोंकी मेम्बरी मिली कि वह प्रकाशकोंसे मुफ्तमें किताबें पानेकी आशा करने लगते हैं। स्वयं कोई पुस्तक खरीदना पाप समझते हैं। इन लोगोंसे प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जितने रुपयोंकी किताबें वे मुफ्तमें पावें, कमसे कम उससे या दूनेकी या उतनेकी ही वे दाम देकर अवश्य खरीदा करें या इस तरहकी भेंट स्वीकार न करें। हिन्दीके prospective (भावी) पाठकोंकी एक बड़ी संख्या यों ही नष्ट हो जाती है। इन लोगोंको तो चाहिये कि वे किताबें खरीदनेकी आदतको अपने पीछे लगायें। यदि पहली बात होगी तो मुफ्त किताबें देनेका प्रकाशकोंको कोई रंज न होगा।

ये ही सभी बातें हैं, जो आपके पत्र पढ़कर मुझे ध्यानमें आई। इनका कुछ उपयोग हो सका तो अच्छा होगा। मुझसे कुछ मदद हो सके तो लिखिये मैं तैयार रहूँगा। परन्तु समय मेरे पास थोड़ा ही रहता है।

आपका आज्ञाकारी
हेम

पत्र ३

बम्बई, २५-११-१९

मान्यवर चौबेजी,

आपकी सूचनानुसार पिताजीने मुझे आपकी योजनाएँ, उस संबंधके पत्र आदि बताये। *मैं नहीं जानता कि आप मुझसे क्या चाहते हैं।* पर मैं आपकी कृपाके लिये उपकृत हूँ और चाहता हूँ कि आपके इस उद्योगको सफलता प्राप्त हो।

पर एक बात है। आपने जिस तरहसे यह कार्य शुरू किया है, वह अवश्य ही सफलताकी आशा दिलाता है, पर साथ ही आपकी योजनाओंकी एक कमजोरी निराश कर देती है। कहीं तो आप पाबंदियोंके बेहद समर्थक हो जाते हैं और कहीं आपका अराजकवाद सारी योजनाओंको नष्ट-भ्रष्ट करने पर

कमर कस लेता है। सो कैसे, यह बतानेकी मैं थोड़ी-सी धृष्टता करूँ, आपसे मैं इसकी आज्ञा चाहता हूँ।

२०–२५ साहित्यिकोंका एक समूह आपसमें पाक्षिक पत्र-व्यवहार रक्खे, इस योजनामें केवल इतनी ही बात positive है, इसके सिवाय और सब बातें negative हैं। किस विषयपर पत्र-व्यवहार करें, क्या लिखें, कैसा लिखें, क्या उद्देश्यको लेकर लिखें आदि बातोंका जब तक स्पष्टीकरण न होगा तब तक यह योजना कैसे चलेगी ? कैसे सफल होगी ? गोपनीय और अगोपनीय बातोंका निर्णय कैसे होगा ? जिसे आज हम अगोपनीय समझते हैं वही गोपनीय हो सकती है और इससे उलटा भी। पार्टीबन्दी या गुटबंदी अपने आपमें कोई बुरी चीज नहीं है। वह बुरी तभी होती है जब किसी अन्याय-कार्यके लिये की जाय। जब १५–२० व्यक्ति पारस्परिक पत्र-व्यवहारसे नित्य-प्रति अधिकाधिक निकट आते जायेंगे तब यह स्वाभाविक ही होगा कि उनका एक गुट हो जावे। अच्छे कार्यके लिये जिसे ' संगठन ' कहा जाता है, अन्याय कार्यके लिये वही ' गुटबंदी ' कहलाती है। मेरी समझमें तो यह सब पाबंदियाँ ठीक नहीं हैं। बस इतना ही काफी है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो इस योजनामें शामिल हो, एक पक्षके भीतर साहित्य-संबंधी विषयोंपर कुछ न कुछ सोच-विचार करे और दूसरेको लिखे तथा एक दूसरेको सहाय करे। इस तरहके पत्रोंको छपानेकी यदि जरूरत मालूम हो तो लेखककी अनुमतिसे वह छपा दिया जाय अथवा जितना अंश वह छपवाना चाहे, उतना छपा दिया जाय।

आप कहेंगे कि भाई, तुमने मेरी इस योजनाकी आलोचना की और एक तरहसे destructive आलोचना कर डाली। कुछ अपनी constructive राय तो दो। मेरी समझमें निम्नलिखित विषय ऐसे हैं जो कभी खत्म नहीं हो सकते और जिनपर हमेशा कुछ न कुछ लिखा जा सकता है:—

(१) कोई सुन्दर लेख या पुस्तक, जो खुद पढ़नेमें आई हो, दूसरेसे उसके पढ़नेकी प्रेरणा करना। अपनी राय देना, दूसरेकी राय लेना। उसके अधिकाधिक प्रचारकी कोशिश करना।

(२) पुरानी और नई रचनाओंके भाव, अर्थ, भाषा आदि संबंधी शंकाओंको पूछना, निवारण करना। उच्च साहित्यिकारोंको पढ़ते समय उनकी कला भाषा आदिके सम्बन्धमें जो नई नई सूझें पैदा हों, उनमें जो नया-नया

सौन्दर्य हमें दीख पड़े, उसकी चर्चा करना, उस संबन्धमें एक दूसरेके भाव जानना आदि।

(३) हिन्दीमें जिन बातोंकी कमी है उन्हें महसूस करना, उनको दूर करनेकी योजना बनाना, उससे एक दूसरेको वाकिफ करना, उस सम्बन्धमें योग्य लेखककी खोज करना, उसे उक्त विषयपर लिखनेके लिए राजी करना, व्याख्यानों तथा लेखोंद्वारा लोकमत जाग्रत करना, लोकमत जाग्रत होनेके बाद उस विषयकी पुस्तकके पहलेसे ग्राहक रजिस्टर करना, पेशगी रुपया किसी सामान्य बैंक या संस्थामें रखनेका इन्तजाम, उपयुक्त प्रकाशक निश्चित करना आदि।

ये विषय Exhaustive नहीं हैं और बातें भी ली जा सकती हैं। पर इस बातकी सावधानी रखनी होगी कि केवल ये वस्तुएँ वादविवाद या आलोचना तक ही परिमित न रहें। हो सके तो कामका विभाजन कर लिया जाय, पर सक्रिय साहित्यिकोंका, जो साहित्य-निर्माण न कर सकें, पर प्रचार कर सकें, सहयोग अवश्य लिया जाय।

आपने जो नरेन्द्र शर्माको पत्र लिखा है और उसमें जो आपने विचार प्रकट किये हैं, उनके बारेमें भी कुछ कहना चाहूँगा। कहावत है कि अजान कारीगर अपने हथियारोंको दोष देता है। मैंने जैसे पहले लिखा था मेरे ख्यालसे संस्थाएँ केवल हथियार हैं, स्वयं जीवित वस्तु नहीं। आज अगर हिन्दीमें कोई ठीक साहित्यिक कार्य नहीं हो रहा है तो इसका दोष केवल उन संस्थाओंपर नहीं डाला जा सकता। जब तक हममें उन संस्था-रूपी हथियारोंसे काम लेनेकी शक्ति नहीं है तब तक वे निष्क्रिय रहनेवाली हैं ही। आपकी उपयुक्त योजनासे जब साहित्यिकोंके संगठन होंगे, उनमें कार्य करनेकी तीव्र इच्छा होगी तब वे अवश्य साहित्य-सम्मेलन आदि संस्थाओंको प्रेरित कर सकेंगे। जरूरत और शक्ति होगी तो उन्हें हस्तगत कर सकेंगे और यदि उन संस्थाओंके वर्तमान अधिकारी कान्स्टीटयूशन (विधान) को ऐसा बनाकर रखेंगे, जिसमें कि वे अनन्त काल तक उन्हींके हाथमें बनी रहें और कार्याकांक्षी लोग प्रवेश न कर पावें तो नई संस्थाओंका संगठन कर दिखावेंगे। जरूरत हमें शक्तिकी है। शक्ति आने पर संस्थाएँ अपने आप बन रहेंगी। पर इसका मतलब यह नहीं है कि हम सम्मेलनादि संस्थाओंकी उपेक्षा करें, या उन्हें हस्तगत करनेकी कोशिश न करें। आपके अराजकवादी ख्यालात

एक हद तक ही ठीक हैं और वे उस हद तक ही ठीक है जहाँ तक कि वे जनतामें शक्तिका, उत्साहका, क्रियाशीलताका संचार करते हैं। जहाँ वे सरकार या किसी संस्थाको हस्तगत करनेका विरोध करते हैं और इस प्रकार प्रगतिमें अवरोध डालते हैं, वहाँ उन्हें छोड़ना ही श्रेयस्कर होता है। पर छोड़ते समय इस बातकी सावधानी रखनेकी जरूरत होती है कि पद-ग्रहण करते ही हम भी वैसे ही निष्क्रिय और सत्तालोलुप न हो जाँय या किसी दूसरेके हथियार न बन जाँय जैसे कि वे लोग थे, जिन्हें हम हटा चुके हैं। यह बात है कठिन, अराजकवादियोंके मतसे असंभव भी है, पर इसके बिना कोई चारा नहीं है, सिवाय इसके कि आत्महत्या कर ली जाय। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

पर सत्ताग्रहणकी ये बुराइयाँ और भलाइयाँ साहित्यिक क्षेत्रमें उतनी तीव्र नहीं हो सकतीं, जितनी कि राजनीतिक क्षेत्रमें होती हैं। पर अराजकवाद जिस तरह राजनीतिक क्षेत्रमें निष्फल है, वैसे ही साहित्यिक क्षेत्रमें भी निष्फल ही रहेगा। उसमें कार्यके लिये उत्तम हथियारोंकी जरूरत होती है। यदि कोई संस्था हमारे लिये उत्तम हथियार हो सकती है तो उसे हस्तगत करना हमारे लिये क्रमप्राप्त है। पदग्रहणके लाभको निवारण करनेके लिये अपने संगठनके व्यक्तियोंको पारी-पारीसे आगे करें या कोई ऐसा और इन्तजाम कर लें। समान अधिकार और पूर्ण स्वतन्त्रताके आदर्शरूपी सूर्यके तेजको लगातार ताकते रहकर व्यवहारमें अंधे न बन जायँ। पद-ग्रहण अपने आपमें बुरी चीज नहीं है।

अब मैं इससे ज्यादा लिखकर आपको तंग न करूँगा। बस आप मेरे दृष्टिकोणकी समझ भर लीजिये। मेरे और आपके ख्यालोंका मिलान खायेगा तो फिर और बातोंके बारेमें अपने विचार लिख सकूँगा।

आपका आज्ञाकारी

हेमचन्द्र

पुनश्च—ऊपरका पत्र लिख लेनेके बाद पिताजीने कहा कि प्रान्तीय सम्मेलन वगैरहके संबंधमें भी तुम कुछ लिखो। मुझे तो कुछ सूझता नहीं है, या सोचनेकी मनस्थितिमें नहीं हूँ।

मैंने कहा, अच्छा, अच्छी बात, मैं और लिखता हूँ।

आपकी स्कीम अच्छी है, सुन्दर है, पर इसमें भी आप आदर्श और व्यवहारमें अन्तर नहीं कर पाये हैं। इस तरहकी स्कीमोंमें सफल होनेके लिये

जो व्यावहारिकता होनी चाहिये, वह नहीं है। इस तरहके विचार तो सबके मनमें हैं और वे लिख भी सकते हैं। पर इतनेसे ही तो काम नहीं चल सकता। कुछ व्यावहारिक सुझावोंकी जरूरत है। मेरी समझमें इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये सम्मेलनकी कार्य-प्रणालीको आपादमस्तक बदलनेकी जरूरत है। संस्थाएँ दो किस्मकी होती हैं, एक तो शासन करनेवाली, दूसरी संगठन और प्रचार करनेवाली। सम्मेलन अभीतक शासन करनेवाली और तमाशा करनेवाली वस्तु है। उसे प्रचारक-संस्थाके रूपमें बदलनेकी जरूरत है—हिन्दी-भाषा-प्रचारक नहीं, हिन्दी-साहित्य-प्रचारक। केवल इसी बातकी जरूरत नहीं है कि साहित्यिक कहलानेवाले व्यक्ति ही एक दूसरेसे मिल बैठकर बात कर सकें, पर इसकी भी जरूरत है कि लोगोंमें साहित्यिक रुचि उत्पन्न हो। संस्थापर अपना प्रभुत्व, या लोगोंपर अपनी शान जमानेके लिये साहित्यिकोंका जमा होना वांछनीय नहीं है।

सम्मेलनमें पहला काम यह हो कि वर्षमें छपी हुई हिन्दीके श्रेष्ठ लेखकोंकी विभिन्न विषयोंकी रचनाएँ लोगोंके सामने पेश की जायँ। उनकी रुचि और समझदारीको मापा जाय, छपी रचनाओंके अंश पढ़कर सुनाये जायँ। उनका लोगोंको परिचय कराया जाय। थोड़ी-सी उस संबंधकी आलोचना वगैरह हो। नये लेखक अपनी रचनाएँ विद्वानोंके समक्ष पेश कर सकें। हिंदीमें क्या क्या है, यह जाननेकी लोगोंमें जिज्ञासा पैदा की जाय। उनको प्रश्न करनेके लिये उत्साहित किया जाय। उन्हें क्या चाहिये, यह पूछा जाय, रचनाएँ सुनाई जायँ और उसपर उनकी सम्मति ली जाय। समस्त शंकाओं और प्रश्नोंका समाधान योग्य व्यक्तियोंके द्वारा किया जाय। जो नये लेखक आवें, उनकी रचनाओं-पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेके लिये कमेटियाँ नियुक्त कर दी जायँ। सुन्दर रचनाओंको प्रकाशित करनेके लिये योग्य प्रकाशक-गण निर्दिष्ट कर दिये जायँ। इस पत्रके शुरूमें जो तीन बातें साहित्यिकोंके पाक्षिक पत्र-व्यवहारमें लिखी है, विस्तारसे उन्हींको कार्यरूप सम्मेलनोंमें दिया जाना चाहिये। केन्द्रीय सम्मेलनोंमें विस्तृत रूपमें और प्रान्तीय सम्मेलनोंमें संकुचित रूपमें।

इनके सिवाय ग्रामगीतोंके संग्रह सरीखी बातोंपर भी विचार करके उसके लिये योग्य व्यवस्था की जा सकती है। कहानी-सम्मेलन, बाल-कहानी-सम्मेलन कवि-सम्मेलन वगैरह पुरानी रचनाओंके पढ़ने, उनका परिचय देने, नई रचनाओंको उत्साह देनेके लिये होना चाहिये। लेखकों और कवियोंके व्यक्ति-

त्वके प्रचारके लिये नहीं। जो लेखक और कवि उपस्थित नहीं हैं, उनका भी परिचय देना चाहिये। इसके सिवाय साहित्यिक विषयोंपर व्याख्यान भी हों तो अच्छा है, पर इन्हें गौण ही रहने दिया जाय। सम्मेलनकी इस संपूर्ण कार्यवाहीको अक्षरशः छपाने और पत्रोंमें प्रकाशित करनेका इन्तजाम होना चाहिये।

सम्मेलनके परीक्षा-विभागको भी सुधारनेकी जरूरत है। उसके द्वारा जो कोर्स नियुक्त होता है, वह ऐसा है जिसको पढ़कर विद्यार्थी आधुनिक हिन्दी-साहित्यका ठीक परिचय नहीं कर पाता और न प्राचीन काव्य-साहित्यका पुष्ट परिचय पाता है। प्राचीन काव्य-साहित्यका प्रौढ़ ज्ञान करानेके लिये अपभ्रंश और प्राकृत-साहित्यसे परिचय होना जरूरी है, संस्कृतका ज्ञान भी जरूरी है। आधुनिक साहित्यके ज्ञानके लिये हिन्दीके आधुनिक साहित्यको पढ़ना, बंगला, मराठी आदि अन्य प्रान्तीय भाषाओंकी पृष्ठ-भूमिका परिचय जरूरी है। परीक्षाओंमें प्राचीन और नवीन साहित्यकी दो शाखाएँ करके पाठ्यक्रम निश्चित किए जाने चाहिये।

सिवाय इसके परीक्षा-विभागमेंसे प्रकाशकोंका पक्षपात, स्थानीय पक्षपात आदि बातें दूर होना चाहिये। सम्मेलनको स्वयं प्रकाशन भी नहीं करना चाहिये, नहीं तो सम्मेलनकी स्वयंप्रकाशित पुस्तकोंसे अच्छी पुस्तकें मिलनेपर भी वही पुस्तकें कोर्समें रखनी पड़ती रहेंगी।

पत्र ४

बम्बई, १५-२-३९

मान्यवर चौबेजी, प्रणाम

आपका ता० ११ का पत्र और १३ का कार्ड पिताजीने बताया। कुकरोंके संबंधमें आज मैं बाजार गया था। स्थानीय मेकरोंके बहुतसे कुकर चल गये हैं और अब अन्नपूर्णा कुकर यहाँ आना बन्द हो गया है। दाम भी पहलेसे बहुत कम हो गये हैं। एक तारकर कुकर है जो बिल्कुल अन्नपूर्णाके ढंगका है, परन्तु सिगड़ी उसीमें फिट हो जाती है और सिगड़ीके साथमें चाहे जहाँ उठाकर ले जाया जा सकता है। ऊपरका ढकन इसका कढ़ाई या गहरे तवे-नुमा है, जिसको उलटकर जिसमें घी डालकर सिगड़ीपर पूड़ियाँ भी उतारी जा सकती हैं। ३ आदमियोंके लायक ११॥) रुपयेका है। बड़े साइज़का दो-

तीन रुपये ज्यादाका। देखनेमें यह अन्य सब कुकरोंसे सुन्दर मालूम होता है। पूरा पीतलका है। अन्दर कलई है। दूसरा प्रभात कुकर है। यह भी अन्नपूर्णाके ढंगका ही है, परन्तु बर्तनोंमें नलीका कनेक्शन नहीं है, जिससे उन्हें माँजनेमें तकलीफ नहीं होती और जूठा साँसरोंमें भरकर नहीं रह सकता। बर्तनोंकी पेंदियोंमें चलनीकी तरह छेद हैं और प्रत्येक बर्तनमें और एक छोटा बिना छेदोंका बर्तन होता है, जिसमें चीज रक्खी जाती है। इस कुकरमें कढ़ाईका सुभीता नहीं है, परन्तु सिगड़ी तारकर कुकरकी तरह ही फिट पकड़कर हिलगी रहती है। कुकरके साथ ही उसे भी उठाया रखा जा सकता है। यह कुकर सबसे सस्ता है। आदमियोंके साइजका १०) रुपया और १२॥) रुपया है। पूरा कुकर पीतलका है।

आपने रमेश कुकरका नाम लिखा था। उस दुकानदारने उसका नाम अब बदल कर सन्तोष कुकर रख दिया है। यह कुछ कुछ इकमिक कुकरकी तरह है, परन्तु उससे बहुत अच्छा है। बाहरका हिस्सा या खोल इसका इकमिक-की तरह है, पर है पूरा पीतलका और नीचेका हिस्सा, जिसमें कि सिगड़ी रखी जाती है, स्क्रूकी तरह अलग भी किया जा सकता है तथा सिगड़ी बाहर निकालने और भीतर रखनेके लिये पूरे कुकरको उठाने-धरनेकी जरूरत नहीं पड़ती। सिगड़ीवाला हिस्सा भी अलग नहीं करना पड़ता। सिगड़ीवाला हिस्सा निकाल देने पर यह बाल्टीकी तरह हो जाता है और हेंडलमें रस्सी बाँधकर इससे कुँएसे पानी भी खूब निकाला जा सकता है। इस बाल्टीके अन्दर थोड़ा पानी डालकर टिफ़िन बॉक्सकी तरहके डब्बोंमें खानेकी सामग्री रखकर ऊपरसे बन्द कर दिया जाता है। खाना इसमें भापकी गरमीसे पकता है। एक बर्तनकी भाप दूसरे बर्तनमें नहीं जाती तथा इकमिक कुकरकी तरह इन बक्सोंको रखनेके लिये अलग सिलिन्डर नहीं है। इस कारण यह उतना भारी और बोझीला नहीं है, परन्तु तारकर और प्रभात कुकरसे अधिक वज़नी है। सीधा भापका संबंध न होनेके कारण मेरे अनुमानसे खाना पकनेमें देर लगती होगी, यद्यपि वह ३० मिनट ही बताता है। सिगड़ीकी जगह नीचे छोटा प्राइमस स्टोव भी रखा जा सकता है और सबसे बड़ा सुभीता यह है कि खाना पकनेके बाद यदि इसे न खोला जाय तो इसके अन्दर छः घंटे तक खाना गरम बना रहता है। कीमत इसकी १२॥ रुपया तथा दो-दो तीन-तीन रुपया अधिक है। कुछ मँहगा नहीं है। पूरा पीतलका है।

बेंगाल केमिकलका एक मापिनी कुकर सुना है, पर मैं देखने नहीं गया। 'विशालभारत' और 'प्रवासी' में पहले विज्ञापन पढ़ा था।

आप जिसे कहें, वही लेकर भेज दिया जायगा। बाजारमें और भी बहुत कुकर हैं, पर देखनेकी फुर्सत नहीं थी। पहले सरीखा अब उनका दुष्काल नहीं है। पहले इने-गिने एक दो ही थे।

योग्य सेवासे सूचित करते रहिए।

आपका आज्ञाकारी
हेम

पुनश्चः

'अन्नपूर्ण' कुकर यहाँ अब नहीं मिलता तथा उसका खोल भी नहीं मिलता, यद्यपि उसका खोल होता जरूर है। बैंगलूरसे मँगाया जा सकता है।

'प्रभात' और 'सन्तोष' के हैंडबिल भेज रहा हूँ।

२६

प्रीति-स्मृति

बरुड-आश्रमनिवासी स्वामी शिवानंद

हेमचन्द्रकृतं कार्यं साक्षाद् हेमस्य दर्शनम्।
कार्यं यावद्यशो तावत् यशो हि चिरजीवनम्॥ भक्त वामन

हेमचन्द्रकी आयु यद्यपि थोड़ी ही थी, किन्तु उनकी प्रतिभा विशाल थी। इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी केवल १८ वर्षकी उम्रमें लिखी 'ब्रह्मचर्य-दर्शन' नामक पुस्तकसे मिलता है जो मेरी 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' पुस्तकसे भी अधिक योग्यतापूर्ण है; क्योंकि हेमचन्द्रकी लेखन-शैली मेरी शैलीसे बिलकुल ही निराली और असामान्य रूपसे प्रभावशाली है। यदि यह ग्रंथ छप जाय तो हेमचन्द्रका कीर्ति-प्रकाश निस्संदेह चतुर्दिक फैल जायगा। मेरा दृढ़ विश्वास है, कि हिन्दी-प्रेमी उसे अवश्य अपनावेंगे। इस ग्रंथको छपवाकर शीघ्र प्रकाशित करना ही हेमचन्द्रका 'सच्चा स्मारक' होगा और इसीमें हेमचन्द्रकी सच्ची 'प्रीति-स्मृति' भी है।

हेमचन्द्रका स्वभाव जितना नम्र और प्रेमी था, उतना ही तेजस्वी और न्याय-निष्ठुर भी। सत्य बात वह किसीके भी—बड़े-से-बड़े आदमीके भी—मुँहपर बोल देता था। " हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।" अर्थात्—"हित-कारी और मीठे वचन दुर्लभ हैं," यह उसके बारेमें अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है। 'साँचको आँच नहीं' यही हेमका सिद्धान्त था।

हेमचंद्र दम्भाचारसे मुक्त था। गुप्त-से-गुप्त बात भी वह अपने पितासे पूर्ण निस्संकोच भावसे कह देता था। एक बार पिताने कहा, " बेटा, ऐसी बात नहीं पूछनी चाहिए।" इसपर उसने उत्तर दिया, " दादा, मैं आपसे पर्दा कैसे रख सकता हूँ ? आपसे न पूछूँ तो फिर किससे पूछूँ ?" पुत्रका यह सद्भाव देखकर पिता संतुष्ट हुए और पुत्रका शंका-समाधानकर उन्होंने उसे भी संतुष्ट कर दिया।

हेमका कोई घनिष्ठ मित्र मैंने नहीं देखा और न कोई शत्रु। नये-नये सद्ग्रंथ ही उसके मित्र थे। जब देखो तब उसके हाथमें किताब दिखाई देती थी। उसने अपनी अल्पायुमें ही हिन्दी और अंग्रेज़ीके सैकड़ों ग्रंथ पढ़ डाले थे। पुस्तकें पढ़ता भी वह खूब सफ़ाईसे था। मुझसे ग्लेंड्स (Glands) विषयक तीन-चार सौ पृष्ठकी एक पुस्तक पढ़नेके लिए ले गया और केवल चार दिनके बाद ही पुस्तक लौटा दी। मैंने कहा, " भाई, मुझे इसकी ऐसी जल्दी न थी।" बोला, " महाराजजी, मैंने इसे आद्योपान्त पढ़ डाला है और इसके नोट्स भी ले लिये हैं।" हेमचन्द्रका यह उत्तर सुनकर मैं तो आश्चर्यचकित हो गया और उसकी असाधारण प्रतिभापर मुग्ध हुए बिना न रह सका।

हेमकी बुद्धि तल-स्पर्शी थी और कृति निष्कलंक। वह पूर्ण सदाचारी और संयमी युवक था। अनेक युवकोंमें महिलाओंकी ओर घूर घूर कर देखनेकी कुप्रवृत्ति होती है। हेमचन्द्र इससे कोसों दूर था। दुकानपर पुस्तक खरीदनेके लिये आनेवाली महिलाओंके प्रति उसका व्यवहार सदैव सम्मानयुक्त होता था। उसका चारित्र्य उज्ज्वल था। ज्ञानकी धुनमें वह हमेशा मस्त रहता था। हज़ारों युवक अब तक मेरे सामने आये हैं; लेकिन हेमचंद्रके समान संयमी, निर्व्यसनी, सादगीपसंद और चारित्र्यवान् युवक अपने जीवनके साठ वर्षोंमें मैंने दूसरा नहीं देखा।

सचमुच वह आदर्श पुत्र था, आदर्श शिष्य और आदर्श शिक्षक। वह

आदर्श पिता, आदर्श पति और आदर्श सेवक भी था। उसकी मातृ-पितृ-भक्ति भी अनुकरणीय थी।

यहाँपर एक घटनाका उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। दस ग्यारह वर्ष पूर्वकी बात है। प्रेमीजी बहुत बीमार थे। मैं कई बार उन्हें देखने गया। एक दिन जब प्रेमीजीकी हालत बहुत ख़राब थी, हेमचंद्रने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे मुझसे कहा, "महाराजजी, दादा हमारे छत्र हैं। जलके बिना मछलीकी जैसी हालत होती है, वैसी ही मेरी हो रही है। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि वे कुछ वर्ष मेरी आयुमेंसे ले लें और दादाको बचा दें।" भगवानने उसकी प्रार्थना सुन ली और प्रेमीजी अच्छे हो गये।

हेमचंद्रका त्याग भी प्रशंसनीय था। जब श्वास-खाँसीके विशेषज्ञने बताया कि प्रेमीजीके लिए किसी नौजवानके खूनकी आवश्यकता है तो हज़ार विरोध होने पर भी हेमचंद्रने अपना रक्त देकर पिताको रोग-मुक्त किया। ऐसा आदर्श लोगोंमें नवजीवनका संचार करता है।

जो मरनेपर भी लोगोंको नवजीवन दे सकता है, उसे क्या मृत समझना चाहिए? कदापि नहीं। वह तो अमरात्मा है। हेमचंद्र अपने आदर्श जीवन और त्यागसे अमरात्मा बन चुका है। उस अमरात्माको मेरा प्रणाम।

नष्टं चैव मृतं चैव नानुशोचन्ति पण्डिताः।
दुःखेन लभते दुःखं धैर्येन लभते सुखम् ॥—भक्त वामन।

बंबई]

२७

बाल-साथीकी श्रद्धाञ्जलि

पं० बैजनाथ प्रसाद दुबे, साहित्यरत्न

आजसे लगभग बाईस वर्ष पूर्वकी बात है। उस समय मैं सागर जिलेके देवरी-मिडिल-स्कूलमें सातवीं कक्षाका विद्यार्थी था। अवस्था तेरह-चौदह वर्षकी होगी। एक छरहरे बदनका इसी आयुका विद्यार्थी बिना पुस्तक-स्लेटके हम लोगोंके बीच आ बैठता था और कभी कभी शिक्षकसे प्रश्न पूछता और शिक्षकके सवालोंका उत्तर देता था। मैं उन दिनों बड़ा संकोची था। अतः उस विद्यार्थीसे जिज्ञासा होते हुए भी परिचय प्राप्त करनेमें असमर्थ रहा।

एक दिन हमारे नगरके विद्वान एवं 'मधुकर'के सुपरिचित लेखक पं० शिवसहाय चतुर्वेदी स्कूलमें पधारे और उन्होंने विद्यार्थियोंसे 'माधुरी'के मुखपृष्ठपर अंकित इस दोहेका अर्थ पूछा—

> "सिता मधुर मधु तिय अधर,
> सुधा माधुरी धन्य।
> पै यह साहित-माधुरी,
> नवरसमयी अनन्य॥"

हम सब विद्यार्थियोंने स्लेटपर लिखकर दिखाया। कक्षाके जो तीन विद्यार्थी अर्थ करनेमें कुछ सफलीभूत हुए उनमें प्रथम नम्बर उसी अपरिचित विद्यार्थीका था। द्वितीय इन पंक्तियोंके लेखक और तृतीय एक अन्य विद्यार्थीका। हम तीनोंको चतुर्वेदीजीने एक एक पुस्तक पुरस्कारमें दी। उसी दिन हम तीनोंका परिचय हुआ। ज्ञात हुआ कि आप श्री नाथूरामजी प्रेमी बम्बई-प्रवासीके सुपुत्र हैं। उन दिनों श्रीप्रेमीजीकी साहित्यिकताका हमें ज्ञान ही क्या था? अतः एक बम्बइया-मित्रकी मैत्री केवल इसी उद्देश्यको लेकर चल पड़ी कि उसके द्वारा हमें बम्बईके नये-नये समाचार मिलते रहेंगे। और हुआ भी यही। बम्बईकी रोज़ नई-नई खबरें हमें मिलने लगीं।

लगभग एक मास तक हेमचंद्रजीके सहवासका मुझे अवसर मिला। उस समय वे बड़े संकोची, शान्त एवं मित-भाषी थे। मेरी और उनकी घनिष्ठता

बढ़ने लगी। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद वे बम्बई चले गये और मैं भी आगे अध्ययन करनेके विचारसे देवरीसे बाहर चला गया।

साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण करनेपर श्री हेमचन्द्र मोदीके गवेषणापूर्व लेखोंके पढ़नेका कई बार अवसर मिला होगा, परन्तु यह स्मरण ही नहीं आया कि यह वही बम्बइया-मित्र हैं। काश, यह स्मृति उस समय हुई होती तो कितना सुख मिलता!

'बाबू नाथूरामजी प्रेमीके सुपुत्र हेमचंद्र मोदीका देहावसान'—यह समाचार अखबारोंमें प्रकाशित हुआ तो विद्यार्थी-जीवनकी वह स्मृति जाग उठी।

भाई हेमचन्द्रजीकी स्वर्गीय आत्माके प्रति बाल-साथीकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

महू (मध्य-भारत)

२८

वे कुछ क्षण

श्री सुभद्राकुमारी चौहान

मैं ममताकी फिराक सीं रही थी कि अचानक भाई नर्मदाप्रसाद खरेके साथ एक दुबले-पतले चश्माधारी सज्जन आ पहुँचे। मैं स्वागतार्थ उठूँ कि वे सामने पड़ी कुर्सीपर आ बैठे। खरेजीने उनका परिचय दिया—"प्रेमीजीके पुत्र—भाई हेमचन्द्र।" उनके गंभीर व्यक्तित्वका उस समय मेरे मनपर जो प्रभाव पड़ा वह मैं आज भी नहीं भूली हूँ। उन्होंने बड़े विनम्र शब्दोंमें मुझसे कहा था कि आप नारी-जीवन-संबंधी कहानियोंका एक संग्रह तैयार कर दीजिये। मैंने संग्रह करनेका उन्हें वचन भी दे दिया था; परन्तु किन्हीं कारणोंसे ऐसा न कर सकी।

मैंने स्वयं अपने हाथसे चाय बना कर दी। उन्होंने चाय न ली। पान दिये वे भी न छुए। तब मैंने कहा, "आप जैसे बन्धुओंका, फिर कहिए, कैसे स्वागत किया जाय?" यह सुनकर वह धीरे-से मुस्करा उठे थे। उन कुछ क्षणोंकी सरलता और स्नेह-मिश्रित बातचीत उनके नामके साथ आज भी याद आ जाती है।

जबलपुर]

२९

स्व० हेमचन्द्र मोदी

श्री एम्. एन्. कुलकर्णी (कर्नाटक प्रेसके मालिक)

स्वर्गीय श्री हेमचन्द्रजी मोदीसे हमारा बहुत दिनोंसे परिचय था। वे बड़े ही मिलनसार थे। उनका हास्य-विलसित चेहरा जिस किसीके सम्पर्कमें आ जाता था, उसे अपना लेता था और उसे मित्र बना देता था। उनकी ज्ञान-लालसा बहुत तीव्र थी। बातचीत करते समय भी उनका चित्त नई बातें जाननेकी तरफ़ लगा रहता था।

उनकी वृत्ति सबको मित्रकी दृष्टिसे देखनेवाली होनेके कारण वह अजातशत्रु थे। साथ ही दूसरोंके गुणोंको अपना लेनेका उनका स्वभाव ही बन गया था।

ऐसे व्यक्ति बहुत कम पाये जाते हैं और यही स्व० हेमचन्द्रजीकी विशेषता थी।

बम्बई]

३०

हृदयोत्पीड़क वियोग

श्री जगन्मोहनलाल जैन शास्त्री

भाई हेमचन्द्रजी मोदी उन होनहार युवकोंमेंसे थे, जिनसे समाज और साहित्यको अनेक आशाएँ हो सकती हैं। वे केवल प्रेमीजीके ही हृदय न थे; बल्कि अनेकों प्रेमियोंके भी हृदय थे। सरल चित्त, मिलनसार, निर्भीक, निरभिमानी और निरंतर अध्ययनमें तल्लीन रहनेवाले इस युवकपर बड़ी-बड़ी आशाएँ केन्द्रित थीं। श्री प्रेमीजीके जीवनके तो वह सर्वस्व थे। उनके भीतर उन अनुपम रसोंका संचय किया गया था, जिन्हें प्रेमीजीने अपनी अनुभव-प्रणालीके यंत्र द्वारा जीवनके अधिकांश दिनोंमें सींचा था। विश्वास था कि प्रेमीजीके इस नश्वर शरीरके बिखर जानेपर भी उनका विस्तृत अनुभव उनके आत्मजके रूपमें फलता फूलता दिखाई देगा। लेकिन भाई हेमचन्द्रजी निराश करके चले गये।

हम दिवंगत आत्माके प्रति अब केवल अपनी श्रद्धाञ्जलि ही अर्पित कर सकते हैं।

कटनी]

३१

स्व० भाई हेमचंद्र मोदी

श्री भागचंद जैन

श्री भाई हेमचंद्रजीसे मेरा परिचय कब हुआ था, उनके प्रेम तथा घनिष्ठताकी तहमें यह तारीख दब-सी गई है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों मेरा उनका परिचय कई जन्मसे था।

मुझे वह अपने छोटे भाईके समान मानते थे। वैसा ही प्रेम और अपनापन। विश्वास नहीं होता कि वह चले गये। लगता है कि उनका पत्र आ ही रहा होगा।

चार वर्ष पूर्वकी बात है। उस समय मैं जबलपुरमें था। मुझे याद है कि मैंने उन्हें लिखा था कि भाई साहब, आप अपने लेखों और निबंधोंको पत्रोंमें प्रकाशित होनेके लिए क्यों नहीं भेजते? हजारों पृष्ठोंका पुलिन्दा आखिर कबतक अलमारीमें बन्द पड़ा रहेगा? उनका तो उत्तर आया था, वह हम सबके लिए अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। लिखा था—"साहित्य-सरितामें उतरनेके पहले चतुर तैराक होनेकी आवश्यकता है। मैं अभी तैरना सीख रहा हूँ। इस मामलेमें जल्दबाजी कभी नहीं करनी चाहिए। जब सब विषयोंका ज्ञान पूर्णताको पहुँच जाय तभी प्रकाशनकी दुनियामें आना चाहिए। प्रतिष्ठा तथा प्रकाशनका लोभ मृग तृष्णाकी तरह है। जल्दबाजीसे अध्ययनमें दक्षता प्राप्त नहीं होती।

भाई हेमचंद्रजीके गूढ़ अध्ययन और उनकी विचार-गरिमाका बहुत कम लोगोंको पता है।

वे निरंतर पठन-पाठनमें ही लगे रहते थे। हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती और संस्कृतकी अच्छीसे अच्छी पुस्तकें उनके पास थीं। विविध विषयोंके बढ़िया संदर्भ ग्रंथ (Reference books) जुटानेका उन्हें बड़ा शौक था। अन्य विषयोंकी अपेक्षा मनोविज्ञानकी ओर उनकी अधिक रुचि थी। सामुद्रिक शास्त्र, उपनिषद्, योग-शास्त्र, दर्शन, यौन-विज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा तथा शरीर-विज्ञानका उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था।

भाई हेमचंद्र बड़े ही सरल स्वभावके थे। हँसी उनकी चेहरेपर खेलती रहती थी। क्रुद्ध होते हुए मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।

अंतिम बार जबलपुरमें ही उनसे साक्षात्कार हुआ था। वह अपने एक संबंधीकी सगाईमें आये हुए थे। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ था। उस समय उनकी विचार-धारा तथा तर्क-शक्तिका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। रात्रिका समय था। हम लोग श्री गुलाबचन्द्रजी वकीलके ड्राइंग-रूममें बैठे हुए थे। बातचीतके सिलसिलेमें जैन-मिडिल-स्कूलकी चर्चा आगई, जिसके वकील साहब सेक्रेटरी थे, और प्रसंगवश जैन-समाजकी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली-पर विचार होने लगा। भाई हेमचन्द्रजीने जो विचार व्यक्त किये, उससे पता चला कि समाजकी उन्नतिके लिए वह बहुत ही उत्कंठित थे। उन्होंने कहा था कि समाजकी उन्नतिके लिए आधुनिक शिक्षा-प्रणालीको एकदम बदल देना होगा। हमारे विद्यालयोंने समाजके युवकोंकी लौकिक उन्नतिकी ओर ध्यान न देकर उनके स्टैण्डर्डको इतना गिरा दिया है कि उन्हें धनिकोंका गुलाम बनना पड़ता है। आखिर हमारे सामाजिक विद्यालय समाजके दानसे ही चलते हैं न? क्यों न सब विद्यालयोंको मिलाकर एक सेंट्रल-एजूकेशन-बोर्ड (केन्द्रीय-शिक्षा-संघ)के हाथमें कर दिया जाय? वही संघ उनकी शिक्षा-प्रणालीकी रूप-रेखा निश्चित करे। इस प्रकार समाजसे पैसा तो लिया जाय, लेकिन उसका उपयोग सुचारु रूपसे हो। समाजके धनिक महानुभाव दान तो खूब दे सकते हैं, लेकिन संस्थाओंको उपयोगी बनानेकी ओर उनका ध्यान बिल्कुल नहीं है। वे शिक्षाकी रूप-रेखा निर्धारित नहीं कर सकते।

समाजके भविष्यको सुधारनेके लिए भाई हेमचंद्रजीके मनमें बड़ी-बड़ी योजनाएँ थीं। परन्तु दैवको तो कुछ और ही स्वीकार था।

भाई हेमचन्द्रजीमें गंभीरता होते हुए भी मज़ाककी कमी न थी। गंभीर बातचीत करते-करते बीचमें मज़ाकका पुट देकर समूचे वातावरणको रोचक बना देते थे।

उनके निधनसे श्रद्धेय प्रेमीजीका तो सब कुछ चला ही गया, साथ ही समाज और साहित्यकी भारी क्षति हुई है। मैं अपने स्वर्गीय भाईकी स्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें विनम्र भावसे प्रणाम करता हूँ।

काशी]

३२

धुनी और स्पष्टवादी

श्री जमनाप्रसाद जैन, एडीशनल डिस्ट्रिक्ट जज

स्वर्गीय हेमचन्द्रजीका परिचय मुझे उनके बालपनसे ही था और उनकी उत्तरोत्तर उन्नति देखते-देखते उनकी सहसा मृत्यु हो जानेसे मुझे बड़ा धक्का पहुँचा। यद्यपि हेमचन्द्रजीने बंबई-विश्व-विद्यालयमें दो ही वर्ष शिक्षा प्राप्त की थी, तो भी पढ़नेका उन्हें खूब शौक लग गया था। अनेक विषयों-पर उन्होंने अप-टू-डेट लेखकोंकी पुस्तकोंका अध्ययन किया था। उनमेंसे कई पर उनके अप्रकाशित लेख या पुस्तकें मौजूद हैं। जिस किसी कामको करनेकी उनकी इच्छा होती थी, उसे पूर्णतः करना चाहते थे।

सन् '२९ में मैं बंबई गया था। मैं और वह दोनों एक योगिराजके पास योगक्रिया सीखने करीब एक मास तक गये। मैं वापिस चला आया और सिर्फ काम चलाऊ क्रियाएँ ही सीखनेका प्रयत्न किया, पर हेमचन्द्रजी पूरा-पूरा अभ्यास करके मानें। यहाँ तक कि ज्यादती करनेसे शायद उन्हें कुछ नुकसान भी उठाना पड़ा।

हेमचन्द्रजीमें सबसे बड़ा गुण था स्पष्टवादिताका। उनकी स्पष्टवादिताके कारण पूज्य पं० नाथूरामजी प्रेमी मुझसे अक्सर शिकायत किया करते थे, "भाई जजसाहब, हेमचन्द्रको आप अपने पास कुछ दिनके लिए रख लो, ताकि इसे व्यवहार–चतुरता आ जावे।" वास्तवमें बात यह थी कि हेम-चन्द्रजीका हृदय शुद्ध था और साफ बात कहनेकी हिम्मत थी। जो ठीक उनके ध्यानमें आता, उसे निडर होकर कह देते थे। कई मर्तबा स्व० बैरिस्टर चम्पतरायजीको, मुझे और स्व० ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी आदिको खरी-खरी सुना दी थीं।

हेमचन्द्रजी स्वभावसे उदार, बुद्धिमान् और उदीयमान् थे। समाजकी व हिन्दी-संसारकी उनकी असामयिक मृत्युसे भारी क्षति हुई है।

छिंदवाड़ा (सी. पी.)

१५–२–४४.

३३

अनुशीलक हेम

श्री दाऊदत्त उपाध्याय, साहित्यतीर्थ

स्व० हेमसे मेरी सर्व प्रथम भेंट लगभग दस वर्ष पूर्व माधव बाग (बंबई) की एक मीटिंगमें हुई थी, जिसमें मेरी एक कविताके पीछे सनातनी समुदाय और सुधारकोंमें घोर संघर्ष उपस्थित हो गया था। सभाकी समाप्तिपर भाई हेमचंद्रजी सागर-निवासी श्री महादेवप्रसादजी मिश्रके साथ मिले। तीनों ही जोशीले थे। स्वल्प परिचयके पश्चात् उस विवादके संबंधमें देर तक बातचीत करते रहे।

इसके अनंतर बंबई विद्यापीठकी स्थापनाके कुछ समय पूर्व जब वे भाई भानुकुमारजीके साथ अथवा अकेले हमारे विद्यालयमें बंधुवर श्रीनिधि द्विवेदीके पास आया करते थे, तब उनके साथ निकट सम्पर्क स्थापित करनेका अवसर मिला। हम दोनों ही धुन और लगनके थे। दोनोंको ही साहित्यसे प्रेम था। परिणामस्वरूप हम दोनोंका परिचय निरंतर बढ़ता गया।

बचपनसे ही हेमचंद्र अनुशीलक थे। बढ़िया-बढ़िया ग्रंथोंके पढ़नेमें लगे रहते थे। इसीसे जब-तब यह अपने आपमें खोए-से रहते थे। उन्होंने एक नहीं, अनेकों विषयोंका अध्ययन किया था। प्रत्येक वस्तुका वह वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे पठन करते थे। इसी कारण कोई भी विषय उनके लिए वर्ज्य न था। एक दिन बातों-ही-बातोंमें काम-दर्शनपर चर्चा चल पड़ी। बोले, "जानते हो चुम्बनके कितने प्रकार हैं?" मुझे जितने मालूम थे मैंने बता दिये। बोले, "बस? देखो, मैंने अकेले चुम्बनपर ही अस्सी पृष्ठ पढ़े हैं।" और फिर हैवलाक एलिस और जाने किस-किस पाश्चात्य लेखकका हवाला देते हुए उन्होंने उस विषयपर एक अच्छा खासा लेक्चर ही दे डाला!

हेमचन्द्रका ज्ञान व्यापक था। उन्होंने न केवल साहित्य, धर्म और दर्शनका ही अध्ययन किया था, अपितु जीवनके लगभग सभी पहलुओंका उन्होंने सांगोपांग स्वाध्याय किया था।

मैं मथुरामें था तब उनके निधनका समाचार मिला। कलेजा धक-से रह गया। कौन जानता था कि वह कंचन असमयमें ही मिट्टीमें मिल जायगा? वृद्ध प्रेमीजीका तो सर्वस्व ही चला गया।

भगवान उनकी यादगार चि० जस्सू-पस्सू को चिरजीवी करें।

बंबई]

३४

स्नेहकी मूर्ति

श्री बुद्धिलाल श्रावक

स्व० हेमचंद्र मोदीपर हमें और हमारे परिवारको अभिमान था। उसने जबसे हमारे वंशको पुनीत किया था, हमारे दिन ही फिर गये थे। उसकी बाल-लीला, रहन-सहन, मधुर व्यवहार हम लोगोंके लिए संतोष और आनंदकी वस्तु थे।

लगभग पाँच वर्ष पूर्वकी बात है। उसने बंबईसे एक ऐसा कार्य सुझाया था, जिसमें बड़े खर्चकी ज़रूरत थी। हमने उसे लिखा कि भैया, इस कार्यको करना तो दरिद्रताको निमंत्रण देना है। इसपर उसका बड़ा ही स्नेहपूर्ण पत्र आया था। लिखा था—

" आप इसकी चिन्ता न करें। दरिद्रताका निमन्त्रण देनेकी जरूरत नहीं। जिसके हुकुमचन्द्र और मेरे सरीखे पुत्र हैं, उसे चिन्ता नहीं होनी चाहिए।"

हेमचन्द्रकी इन पंक्तियोंका ऐसा प्रभाव पड़ा कि हमने उस कार्यको उठा लिया और प्रभुकी कृपासे वह पार भी पड़ गया।

अब तो यशोधर और विद्याधरपर हमारी आशाएँ केन्द्रित हैं। ईश्वर करे, वे अपने पिताके समान ही प्रतिभाशाली हों एवं विनय, सेवा और स्नेहकी उन जैसी ही मूर्ति बनें।

देवरी (सागर)

३५

हेमचन्द्र: सरल और सहिष्णु

श्री सुमेरचंद्र जैन दिवाकर, बी. ए., एलएल. बी. शास्त्री

चार-पाँच वर्ष हुए, श्री हेमचंद्रजी मोदी कुछ घरेलू कार्यवश बंबईसे सिवनी आये और मुझसे ऐसे आत्मीय भावसे मिले, मानों हमारा उनका बहुत गहरा और पुरातन परिचय हो। उनका व्यवहार अत्यन्त स्नेहपूर्ण था, बोलचाल मधुर। हमारे परिवारके सभी लोग उनके वार्तालापकी ओर आकर्षित हो गये थे।

उनका अनेक लौकिक शास्त्रोंसे अच्छा परिचय था। हस्त-रेखा-विज्ञानमें उनका अच्छा प्रवेश था। इस विद्याके कारण उनके साथ साधारण लोगोंकी भी क्षण भरमें मैत्री हो जाती थी। शरीर-विज्ञानका उन्होंने खूब अध्ययन किया था और साधारण रोगोंके अनेक नुसखे वे जानते थे। योगका भी उन्हें अच्छा अभ्यास था। काफ़ी क्षति सहन करके उन्होंने उस विद्याका ज्ञान उपार्जित किया था।

हेमचन्द्रजीकी प्राय: आदत थी कि वे किसी भी विषयका अधूरा अध्ययन न करके पूरी जानकारी प्राप्त करनेका प्रयत्न करते थे। शायद पोपकी यह शिक्षा उनके मनमें जम गई थी: —

"ओछा ज्ञान बड़ी खतरनाक वस्तु है। लो तो उसका खूब रस लो, अन्यथा उसे छूओ भी नहीं।"

लगभग तीन वर्ष हुए नासिकके समीपवर्ती जैन पुण्य-भूमि गजपंथा-क्षेत्रमें भाई हेमचंद्रजीसे पुनः मिलना हुआ। उस समय वहाँ 'जैन-संस्कृति-संरक्षक-संघ'की स्थापनाके लिए परामर्शनिमित्त अनेक गण्यमान्य विद्वान् उपस्थित थे। श्रीमान नाथूरामजी प्रेमी भी बम्बईसे आये थे। अपने निजू कार्योंके कारण प्रेमीजीने अनेक बार हेमचन्द्रजीको बम्बई जानेको कहा; किन्तु भाई हेमचन्द्रको विद्वानोंका समागम मिला था। उसमें उन्हें रस आ रहा था। अतः पिताजीकी आज्ञाके विरुद्ध उत्तर न देते हुए भी वे सुबहसे शाम

और शामसे सुबहका कार्यक्रम बदलते जाते थे। इस प्रकार सम्मेलन तक वे मौजूद ही रहे।

हेमचन्द्रजी उदार थे और विरोधी विचारवालोंकी बातें प्रेम तथा शांतिके साथ सुनते थे। उस समय गजपंथामें चंद्रसागरजी मुनिराज विद्यमान थे। उनसे मतभेद होनेके कारण तथा अन्य कारणवश अनेक विद्वान् मुनिराजके पास तक नहीं आते थे, किन्तु भाई हेमचन्द्र हमारे साथ घंटों चंद्रसागरजीके पास बैठे रहते थे और मुनिराजकी विशिष्ट शैलीमें प्रतिपादित देशना (उपदेश) को दिलचस्पीके साथ सुना करते थे। विरुद्ध दृष्टिके प्रति गरम हो जाना उन्हें पसंद न था।

उनसे वार्तालाप करते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानों हेमचन्द्रजीका अनेक उपयोगी विषयोंसे परिचय हो। उनकी लेखनीमें प्राण था। साहित्यिक जगतको उनसे बहुत आशाएँ थीं।

एक दिन बंबईमें मैंने प्रेमीजीसे कहा था, "आप जैन-साहित्य-सम्बन्धी उन बातोंको शीघ्र ही प्रकाशित कर दीजिये, जिनका पता अन्य लोगोंको नहीं है।"

प्रेमीजीने अपने अस्वास्थ्य आदिकी अड़चने बताई। तब मैंने हेमचंद्रकी ओर इशारा करते हुए कहा, "आप इनसे काम क्यों नहीं लेते ? अपना काम इनसे पूरा कराइये।"

मेरी बात सुन कर हेमचन्द्रजी कुछ न बोले। मालूम होता था कि उन्होंने अपने मौनद्वारा मेरी बातका समर्थन किया था।

कौन जानता था कि ऐसा व्यक्ति तरुण अवस्थामें ही अपने वृद्ध पिताको शोक-संतप्त करके चला जायगा ? सचमुच विधिका विधान विचित्र है ! "गहना कर्मणो गतिः।"

सिवनी (सी. पी.)
१७ फर'४४।

३६

मित्रकी श्रद्धांजलि

प्रो० मनोहरलाल जैन, एम्. ए., बी. टी.

स्व० हेमचंद्रजीसे मेरा विशेष परिचय उनके विवाहके अवसरपर दमोह* में हुआ था। उसके बाद उनसे मिलने और उनके साथ रहनेके मुझे अनेक अवसर मिले। सन १९३१ में मैट्रिककी परीक्षा पास करने इन्दौर गया तो पहले-पहल घरसे निकलनेके कारण अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। अपनी मुसीबतें लिखकर मैं हेमचंद्रजीको भेज दिया करता था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उन परिस्थितियोंमें कई बार इच्छा हुई कि घर लौट चलूँ; पर हेमचंद्र निरंतर प्रोत्साहन देते रहे और इंदौर छोड़कर चला नहीं आया तो इसका बहुत-कुछ श्रेय हेमचंद्रको है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन इंदौरमें हुआ तब मैं वहीं था। श्रद्धेय प्रेमीजी, जमनाप्रसादजी सब जज, जैनेन्द्रकुमारजी, प्रो० हीरालालजी तथा हेमचंद्रजी आये हुए थे और छावनीकी धर्मशालामें ठहरे थे। दूसरे दिन ही हेमचंद्र बोर्डिंग हाउसमें मेरे पास आये और बोले, " मनोहर, दादा वगैरहको वहाँ भोजनकी बड़ी तकलीफ़ है। हर चीज़में मिर्च बहुत रहती है।"

मैंने कहा, " तो इसमें क्या बात है। सबके भोजनका प्रबंध यहीं किये देता हूँ। "

जीवनमें वह पहला ही अवसर था जब इन साहित्यिकोंके साथ रहनेका सौभाग्य मिला। सम्मेलनकी साहित्यिक चर्चाके अतिरिक्त दर्शनीय स्थलोंका भी युवकोचित उत्साह और आवेशमें हम आनंद लेना चाहते थे। लेकिन इस प्रकारकी इच्छा जब भी मैंने हेमचंद्रजीके समक्ष प्रकट की, उन्होंने कहा, " देखो मनोहर, ये सब चीज़ें तो हमें कहीं भी और कभी भी मिल सकती हैं। इस समय तो हमें जो अवसर मिला है, उसीसे पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।"

हेमचन्द्रजीमें साहित्यके प्रति अगाध स्नेह था और साहित्यिक चर्चामें

---

* मेरा जन्म-स्थान

उन्हें विशेष आनंद आता था। यही कारण है कि अल्पायुमें ही उन्होंने योग्यता प्राप्त कर ली थी। मुझे स्मरण है कि उस समय वह साहित्यिक वार्तालाप मुझे नीरस-सा मालूम हुआ था, पर आज अनुभव करता हूँ कि वे कितने तथ्यकी बातें थीं। उस समयके सात्त्विक विनोद और हास्यकी याद करके आज भी बड़ा आनंद होता है। उन साहित्यिकोंकी बातोंका हेमचन्द्रजी एक दार्शनिककी भाँति गंभीर अध्ययन करते रहते थे।

हम लोग जब कभी मिलते थे, हेमचंद्र गंभीर विषयोंपर बातचीत करते थे। हम लोग उनसे कहा करते थे, "भाई, तुम तो अभीसे दार्शनिक हुए जा रहे हो।"

हेमचंद्रजी मुस्करा उठते थे। मानों कहते हों, "भाई, मैं क्या करूँ? मेरा स्वभाव ही ऐसा है।"

साधारण-से-साधारण बातका भी वे गंभीर अध्ययन करते थे और उनका निरीक्षण भी बड़ा सूक्ष्म होता था। यदि वे कुछ दिन और जीवित रहते तो हम मित्रोंको और साहित्यको उनसे न जाने क्या-क्या प्राप्त होता। इतनी आयुमें भी उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह हमारे गौरवकी वस्तु है।

हेमचंद्रजीके निधनसे श्रद्धेय प्रेमीजीको भारी धक्का लगा है और हेमचंद्रकी विधवा पत्नीके विषादकी कल्पना करके तो हृदय काँप उठता है। लेकिन मेरा विश्वास है कि हेमचंद्रजी मरे नहीं हैं, अपनी कृतियोंमें जीवित हैं और आगे भी रहेंगे।

बड़ौत, (मेरठ)

३७

प्रतिभाशाली हेमचन्द्र

श्री विश्वम्भरदास गार्गीय

स्व० हेमचन्द्र मोदी उन होनहार बालकोंमेंसे था जिनके ऊपर आशा लतायें लहराती हैं। वह एक आदर्श नवयुवक था। अपने पिताके पद-चिह्नोंपर चलनेवाला साहित्य-सेवी था। वह स्वतः विचारशील, मनस्वी, तत्त्ववेत्ता था। हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालयके कार्य-भारको वहनकर प्रेमीजीके बोझको उसने हलका कर दिया था। यही नहीं, बल्कि उन्हें निश्चिन्त भी कर दिया था।

हेमचन्द्र सुयोग्य लेखक, अध्ययनशील और उद्योगी था। कुछ वर्षोंकी बात है। प्रेमीजी इतने बीमार हो गये थे कि उनके जीवनकी कोई आशा न रही थी। सूख कर केवल अस्थि-पंजर मात्र रह गये थे। देखकर बड़ा दुख होता था। प्रेमीजी स्वयं नाउम्मेद हो चुके थे। सब औषधोपचार करके थक गये थे। कोई दवा सफल न होती थी; किन्तु हेमचन्द्रको फलाहारकी प्राकृतिक चिकित्सापर बड़ा विश्वास था। वह स्वयं उससे स्वास्थ्य लाभ कर चुका था। इससे उसमें उसका विश्वास होना स्वाभाविक था। वह निरंतर प्रेमीजीसे यही प्रेरणा करता रहा कि फलाहार चिकित्सासे ही आपको लाभ होगा। अंतमें प्रेमीजीको उसीका सहारा लेना पड़ा। एक विशेषज्ञकी देखरेखमें चिकित्सा आरंभ हुई और प्रेमीजी स्वस्थ हो गये।

सन ३१ में जेलसे वापिस आनेपर मुझे उदर रोग हो गया था। हेमचन्द्रने बताया कि आपके शरीरमें गंधकका अंश कम हो गया है। ऐसी चीज़ोंका उपयोग कीजिये, जिनसे गंधक बने। इसी बीच दिल्ली गया। वहाँके एक चिकित्सक महोदयने, एक ऐसी दवा दी, जिससे रोगका शमन हो गया। हेमचन्द्रका गंधककी कमीका कथन सत्य प्रमाणित हुआ।

हेमचन्द्र साधन-सम्पन्न पिताकी संतान होते हुए भी सरल प्रकृतिका था। कोई शौक उसे नहीं था। छोटी अवस्थामें उसकी इतनी सादगी आश्चर्यमें डालनेवाली थी।

खेद है, आज वह प्रतिभाशाली बालक इस संसारमें नहीं है किन्तु उसके जीवनकी आदर्श स्मृतियाँ अमर हैं।

झाँसी]

३८

यादे ज़िन्दगी

श्री एस. एम. इब्राहीम खाँ

बिरादर हेमचंद्रके पिदर बुजुर्गवार प्रेमीजी साहब हमारी बस्तीके कदीमी बाशिन्दे हैं और देवरीके नौ मशहूर रतनोंमेंसे एक हैं। आपका नाम बड़ी इज्जतके साथ देवरीके ही नहीं बड़े बड़े शहरवालोंकी जबानसे सुना जाता हैं। उन्होंने एक छोटी-सी हस्तीको तरक्की देकर बड़ा किया है। हेमचन्द्रजी ऐसे सखी शख्शके इकलौते साहबजादे थे। आप देवरीवालोंकी नजरोंमें बहुत अच्छे थे। जब कभी देवरी आते थे तो बस्तीके बहुतसे लोग आपसे मिलने आते थे। आप हमारे पड़ौसी थे। बड़े नेकनियत और शरीफ़ खान्दानी। आपने कभी किसीकी बुराई नहीं की। आप हमेशा सादा और साफ़ लिबास पहना करते थे और हाथ देखकर निजूमके ज़रिये होनहार बातें बताया करते थे, जो ९९ फ़ीसदी सच्ची साबित होती थीं।

हेमचंद्रके दो वारिस लड़के हैं, जो अपने बाप-दादाके नामको ज़िन्दा और रोशन करेंगे। मैं मरहूमको तहे दिलसे दुआ देता हूँ कि खुदाताला हेमचंद्र-जीको आगोश-रहमतमें जगह दे।

देवरी (सागर)
१८-२-४४

३९

बाल-साथी

श्री रतनचंद पटोरिया

आठ वर्षकी उम्रमें भाई हेमचंद्रजीके साथ मेरा परिचय हुआ था। सन् १९१८ में जब मेरे पिताजी इन्कम-टैक्स आफ़ीसरकी ट्रेनिंग लेने बंबई गये थे, तब हेमचंद्रजीसे 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' कार्यालयमें भेंट हुई थी। उसके बाद मैं मारवाड़ी हाईस्कूलमें भर्ती हो गया तो मेरा अधिकांश समय उनके साथ ही बीतने लगा। मुझे याद है कि वे मुझे बीरबल और अकबरकी कहानियाँ सुनाया करते थे और मैं बड़ी रात तक उन कहानियोंको ध्यानपूर्वक सुनता रहता था।

भाषापर हेमचन्द्रजीका छुटपनसे अधिकार था और अपनी उम्रके सहपाठियोंसे उनका ज्ञान कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा था। अपनी बात तथा कहानियाँ कहनेकी उनके पास विलक्षण कला थी।

एक वर्ष बम्बई रहकर हम लोग नागपुर चले आये।

सन् १९३७ में मैं स्वयं एक्साइज़ इन्स्पेक्टर होकर अमरावती गया। वहाँ प्रो० हीरालालजीसे परिचय हुआ। एक रोज़ उनके मुँहसे हेमचन्द्रजीकी विद्वत्ता, भाषा-शैली और सम्पादनकलाकी प्रशंसा सुनकर बचपनकी स्मृति ताज़ी हो गई। साथ ही हृदय बड़ा आनन्दित हुआ। यह सोचकर घर लौटा कि उन्हें बधाईका पत्र लिखूँगा; लेकिन प्रयत्न करनेपर भी लिख नहीं सका। कुछ तो संकोचवश और कुछ यह सोच कर कि कहीं वह अपने बाल-साथीको भूल न गये हों।

सन् ४२ की जूनमें एक दिन अनायास उनके निधनका समाचार पाकर स्तब्ध रह गया। मुझे ऐसा नहीं मालूम होता कि अब वे इस संसारमें नहीं हैं। उनकी अनेकों बातें याद आती हैं। उनकी सुनाई हुई बीरबल और अकबरकी कहानियाँ तो मेरे मानस-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित हैं।

अपने बाल-साथीको मेरा प्रणाम।

जबलपुर
२५-२-४४

४०

यथा रूप, तथा गुण

डा० हुकुमचन्द जैन

भाई हेमचन्द्रजी श्रद्धेय दादा प्रेमीजीके इकलौते पुत्र और मोदी-वंशकी धुरी थे। बड़े ही रूपवान् और कान्तिवान्। उनका मुखमण्डल शान्त और प्रभावशाली था। जैसा रूपरङ्ग, वैसे ही उनके गुण और कर्म। शिक्षा केवल इण्टर तक हुई थी, लेकिन घर पर ही उन्होंने खूब अध्ययन किया था और गुजराती, मराठी आदिका ज्ञान प्राप्त किया था।

रहन-सहन उनका सरल और प्राकृतिक था। प्रकृतिके नियमोंके अनुसार ही उन्होंने अपने जीवनको ढाला था। उनके लिए कोई काम तुच्छ अथवा हीन न था और यथासम्भव हरेक कामको वह स्वयं ही करते थे। उनका गुण यह था कि जिस कामको हाथमें लेते थे, उसे पूरा करके छोड़ते थे। विघ्न-बाधाओंसे घबराते नहीं थे।

क्रोध, लोभ, मोहको उन्होंने कभी भी आश्रय नहीं दिया। संसारमें रहते हुए भी सांसारिक चीज़ोंसे उन्हें मोह न था। कुछ विरक्ति-सी झलकती थी।

सत्य उनका धर्म था। वे निर्भयतापूर्वक सत्य बोलनेवालेका पक्ष लेते थे और असत्य बोलनेवालेसे घृणा करते थे।

व्यर्थकी बातोंका जमा-खर्च उन्हें पसन्द न था। अपना अधिकांश समय वे अध्ययन और विद्वानोंके सत्संगमें व्यतीत करते थे। मैंने उन्हें घण्टों एक आसन पढ़ने-लिखनेमें व्यस्त देखा है। उस समय वह इतने एकाग्र हो जाते थे कि मैं उन्हें पास जाकर पुकारता तो मेरी ओर वह इस प्रकार देखते, मानों सोतेसे जगे हों।

सेवाका बीज माता-पिताने उनमें बचपनसे ही बो दिया था। इसका श्रेय माँको अधिक था। मरीज़की सेवा तो वह इतनी चतुराई और धैर्यके साथ करते थे, जितनी कोई होशियार नर्स भी नहीं कर सकती। उनकी माताजी भी इतनी ही सेवा-परायणा थीं।

देश-सेवाके भाव भी हेमचन्द्रजीमें उदय हो रहे थे, लेकिन साहित्य-सेवाके आगे वे गौण ही रहे।

साहित्यिक ग्रन्थोंके साथ उन्होंने होमियोपैथी, एलोपैथी, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा तथा सामुद्रिक-शास्त्र आदिके भी ग्रंथोंका अध्ययन किया। छोटे-मोटे इलाज तो वे घरपर ही कर लेते थे। शरीर-रचनापर उन्होंने कुछ नोट तैयार किये थे, जिन्हें मैंने स्वयं पढ़ा था।

समाचार-पत्र पढ़नेका भी उन्हें शौक था। यहाँ तक कि भोजन करते भी पढ़ते रहते थे। रेडियो सुबह-शाम नियमसे सुनते थे।

अपने समयका वह पूर्णरूपसे सदुपयोग करते थे। क्या मजाल कि एक मिनट भी व्यर्थ चली जाय। अपने ज्ञानकी अभिवृद्धिमें वे हरघड़ी प्रयत्नशील रहते थे।

ऐसे समयमें जब कि साहित्य-जगत् आशापूर्ण दृष्टिसे उनकी ओर देख रहा था और उनके कुटुम्बी-जन और मित्र-समुदाय उनकी प्रगतिको देखकर आनन्दित हो रहे थे, क्रूर कालने उनके जीवन-दीपको सदैवके लिए बुझा दिया। भावी प्रबल है। उसके आगे किसीकी भी नहीं चलती।

निवास (मंडला)

४१

स्व० हेमचन्द्र

पं० कैलाशचंद्र जैन, सिद्धान्तशास्त्री

सन्' ४० के मार्चमें हमारी स्पेशल ट्रेन श्रवणबेलगोला (मैसूर) के महामस्तकाभिषेकोत्सवसे लौटती हुई बंबई पहुँची और प्रेमीजीसे मिलनेके लिए हम सब उनके 'हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' कार्यालयमें गये। हमारी दृष्टि एक दुबले-पतले छरहरे बदनके चश्माधारी युवकपर पड़ी। प्रेमीजीने परिचय कराया—"यह मेरा पुत्र हेमचंद्र है।" हेमचंद्र ! मुझे थोड़ा अचरज हुआ। कारण कि 'जैन-जगत्' में मैंने उनका एक लेख पढ़ा था। शीर्षकका नाम तो ठीक-ठीक याद नहीं; किन्तु उसका प्रतिपाद्य विषय

ब्रह्मचर्य और व्यभिचार था। लेख लम्बा था और विषय-प्रतिपादन तथा आलोचनमें बहुत ही स्वतंत्रता और स्वच्छन्दतासे काम लिया गया था। लेखको पढ़कर मेरी धारणा हुई कि लेखक बम्बइया टाइपका कोई विलासी नवयुवक होना चाहिए; किन्तु हेमचंद्रको मैंने उसके सर्वथा विपरीत पाया। मेरी धारणाके अनुसार न उसमें विलासिता थी और न शौकीनी। वह तो अत्यन्त सीधा-सादा और सरल-चित्त नवयुवक था। बंबईका निवासी होकर भी उसपर देवरीकी ही अमिट छाप थी। वह बंबईका नहीं, सचमुच देवरीका था। सुयोग्य पिता और मातासे उसे जो कुछ मिला, बंबई उसे मिटानेमें सफल नहीं हो सकी। इसका श्रेय किसको दिया जाय? हेमचंद्रको या उसके माता-पिताको?

हम तीन दिन बंबई ठहरे। वहाँकी दो संध्याएँ हमारी पार्टीने हेमचंद्रके साथ बिताई। दोनों दिन हम उनके साथ चौपाटी और मलाबार हिलकी सैर करने गये। हमने हेमचंद्रको लौकिक व्यवहारमें भी अत्यन्त सीधा, सच्चा और सरल, किन्तु दीर्घसूत्री पाया।

दूसरे वर्ष गजपंथामें उनसे भेंट हुई। प्रेमीजी वहाँ वायु-परिवर्तनके लिए सकुटुम्ब ठहरे हुए थे। उस समय किसीको स्वप्नमें भी कल्पना न थी कि ठीक एक वर्षके बाद इस सुखी कुटुम्बपर वज्रपात होनेवाला है और सरल-हृदया चम्पा बहिनकी माँगका सिंदूर बरबस पोंछ लिया जाने वाला है। किन्तु विधिका विधान अटल है।

जब यह सुना तो कानोंपर विश्वास नहीं हुआ। छपा देखा तो आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन जब विश्वास करना ही पड़ा तो स्व० हेमचंद्रके दो अक्षर कानोंमें गूँज उठे—'दादा!'

स्वाभाविक तो यह होता कि हेमचंद्र अपने दादाकी स्मृतिमें उनके संस्मरणोंका संग्रह प्रकाशित करता। लेकिन आजका दिन कितना भयावह है कि वृद्ध दादा अपने इकलौते बेटेकी स्मृतिमें यह संग्रह प्रकाशित कर रहा है! शायद इससे उनके कभी न सूखनेवाले घावकी पीड़ा कुछ कम हो सके। आशा तो नहीं है।

भदैनी, बनारस
२३-२-४४

४२

स्व० हेमचंद्र : स्वभाव और व्यक्तित्व

श्री भानुकुमार जैन

वर्तमानयुगमें मान्यवर प्रेमीजी, वयोवृद्ध जुगलकिशोरजी मुख्तार, प्रो० हीरालालजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, मुनि जिनविजयजी, प्रो० उपाध्ये, प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी, पं० बेचरदासजी दोशी, प्रो० जगदीशचंद्रजी तथा पं० दरबारीलालजी जिन-वाणीरूपी आकाशके नक्षत्र हैं। हेम उस आकाशका नक्षत्र होता या न होता; पर राष्ट्र-वाणीका नक्षत्र अवश्य था।

बंबई प्रांतमें जिन इने-गिने व्यक्तियोंको हम गंभीर चिन्तक तथा हिन्दी-साहित्यिक कह सकते हैं, प्रेमीजी उनमेंसे एक हैं। हेम उनकी गंभीर साहित्यिक साधनाका फल था। किसी वादका चक्कर उसे न था और कितना ही प्रसिद्ध व्यक्ति कोई क्यों न हो, उसकी बातपर अपनी स्पष्ट राय दे देनेकी स्वाभाविक वृत्ति उसमें थी। तर्क, विवेक और बुद्धि सदा उसके साथी थे।

ज्ञानके क्षेत्रमें पितृ-ऋणको चुकानेका उसका तरीका भी अजीब था, यानी वह पिताजीसे ही विवाद करता, झगड़ता और अपनी बातके समर्थनमें प्रमाण-पर-प्रमाण देकर उसे सही मनवानेके लिए जी-तोड़ परिश्रम करता था।

वह वीतराग था। हँसीमें हम उसे स्क्रू लूज (पेंच-ढीला) कहा करते थे। उसकी दुनिया बेइमानियों—छल-प्रपंचों—से दूर थी। उसमें आडम्बर नहीं था। हाँ, सनक थी और थी धुन। वह निर्दोष और पवित्र था। किसीके अहितकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था।

हारी-बीमारीमें वह बड़ा काम आता था। आयुर्वेदिक, ऐलोपैथिक, होमिओपैथिक, प्राकृतिक, घरू, जलोपचारविषयक चिकित्साएँ वह बतलाता। उसके आदेशानुसार जो प्रयोग करता, वह प्रायः लाभ उठाता था।

अपने शरीर, मन और प्राणपर भी एक वैज्ञानिककी भाँति वह प्रयोग करता था। इन प्रयोगोंमें उसने अपनी जान तकके खतरे उठाये थे।

ज्योतिषका भी उसे ज्ञान था। 'कीरो 'की पामिस्ट्री (हस्त-सामुद्रिक-शास्त्र) तथा अनेक भारतीय ज्योतिष ग्रंथोंका उसने अध्ययन किया था।

पठन-पाठनका उसे शौक था। लाइब्रेरियाँ उसने छानी थीं। जो किताबें अच्छी लगती, बिना अपना बजट देखे ख़रीद लेता। हिन्दी, गुजराती मराठी, बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत-साहित्यकी वह विवेचना किया करता था। सेक्स (यौन-विज्ञान) पर हेवलॉक ऐलिस, फ्रायड आदि पाश्चात्य और भारतीय विद्वानोंके ग्रंथों तथा मनोविज्ञानका उसने खूब मनन किया था। विश्लेषण, अनुवीक्षण उसके प्रधान गुण थे। 'सेक्स'की बातें करते समय अपने मनके चैतन्यको मानों वह खो बैठता था। भले ही कोई नारी सामने बैठी हो, इस बातका उसे ख्याल भी न रहता था। पर वह असंयत अथवा अशिष्ट न था। उसका निरूपण वैज्ञानिक आधारपर होता था।

योगी भी हेम ऐसा था कि सभी योगोंके बावजूद हठयोग स्वयं अपनेपर आजमाता था।

वह साहित्यिक था। भाषाविज्ञ था। इतिहास, भूगोल, काव्य, आलोचना, आदि अनेक विषयोंमें उसका प्रवेश था। गंभीर चिंतन और मननमें वह लगा रहता था।

श्री चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'की एक कहानीने उन्हें हिन्दी-साहित्यमें अमर कर दिया। स्व० हेमके अनेक लेख और ग्रंथ अप्रकाशित पड़े हुए हैं। संभव है कि उनमेंसे कोई उसे स्थायी कीर्ति प्रदान करे।

उसकी यादमें बंबईमें एक 'साहित्यिक गोष्ठी' स्थापित होनी चाहिए।

बंबई]

४२

भाई हेमचन्द्र

प्रो० ठाकुरदास बंग, एम्. ए., एलएल. बी.

भाई हेमचन्द्रजीसे मेरा सर्व प्रथम परिचय बंसीबाग अमरावतीमें हुआ था। उस समय ही उनकी बातचीतकी शैलीमें रस और आकर्षण प्रतीत हुआ। उनकी प्रचुर विद्वता एवं विस्तृत अध्ययनका भी पता चला।

विश्वास हुआ कि वे साहित्यके प्रांगणमें एक उच्च स्थान शीघ्र ही ले लेंगे। उनके द्वारा भाषान्तरित शरत्-साहित्यके कुछ भाग मैंने पढ़े। उन्हें पढ़ते समय ऐसा मालूम हुआ मानों मैं हिन्दीका कोई मूल ग्रन्थ ही पढ़ रहा हूँ। हेमचन्द्रजीकी कई मौलिक रचनाएँ भी अप्रकाशित पड़ी हुई हैं। कुछ पूर्ण हैं और कुछ अपूर्ण। अच्छा हो यदि इनके प्रकाशनका शीघ्र ही आयोजन हो। इनसे साहित्यके मौलिक भण्डारमें अभिवृद्धि होगी।

भाई हेमचन्द्रजीकी प्रतिभा बहुमुखी थी। जहाँ साहित्यके क्षेत्रमें उन्होंने ऊँचे दर्जेकी योग्यता प्राप्त की थी, वहाँ विज्ञान, ओषधिशास्त्र, हस्तसामुद्रिक, मनोविज्ञान एवं समाज-शास्त्र आदिका भी गहन अध्ययन किया था। ऐसे विकासशील प्रतिभाशाली युवककी असामयिक मृत्युसे साहित्यिक जगतकी अतीव हानि हुई है।

कामर्स कालेज,
वर्धा

४४

एक स्मृति

पं० हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री

स्व० हेमचन्द्रजी मोदीसे यों तो बंबई और नासिकमें कई बार मिला था और उनकी सरलता एवं सज्जनतासे काफ़ी प्रभावित भी हुआ था, पर उन मुलाकातोंको कोई उल्लेखयोग्य बात याद नहीं आ रही है। हाँ, उस सबसे अधिक *प्रभावित करनेवाली एक घटनाका मुझे स्मरण है, जब कि हेमचन्द्रजी अपनी* बहिन सौ० निर्मलादेवीकी सासूकी बीमारीके समय अमरावती आये थे। बीमारीको स्थानीय डाक्टरोंने क्षय करार दिया था और स्पष्ट जवाब दे दिया था कि वे बच नहीं सकतीं। उनके कुटुम्बीजन भी उनके बचनेकी आशा छोड़ चुके थे। मैं चूँकि उन दिनों उनके ही मकानमें रहता था, इस लिए यह सब देख कर मुझे बहुत परेशानी और बेचैनी हुई और मैंने श्री प्रेमीजीको उक्त बीमारीका हाल लिख भेजा। परिणामस्वरूप हेमचन्द्रजी अपनी बहिनके साथ आ गये और आनेके साथ ही उनकी परिचर्यामें जुट गये।

साधारणतः सगे-संबंधियोंके घर प्रथम बार जानेमें सबको कुछ न कुछ संकोचका अनुभव होता है, पर हेमचन्द्रजी बिना किसी संकोच या हिचकिचाहटके मरीज़की शैयाके पास जा पहुँचे और लगे गम्भीरतापूर्वक मर्ज़का निदान करने। बाद बोले, "इन्हें क्षय नहीं है। लोगोंने इनकी बीमारीको समझा नहीं है। ये बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जाँयगीं।"

उनकी बात सुनकर हम लोग यह सोच कर मन ही मन हँसने लगे कि देखें, एक अडाक्टरका डाक्टरोंके खिलाफ निर्णय कहाँ तक ठीक होता है!

हेमचंद्रजीने औरोंकी दवा-दारू बंद करके अपने स्वतन्त्र प्रयोग करने शुरू किये और तन्मय होकर लगे रात-दिन रोगीका उपचार करने। दो तीन दिनकी अथक एवं अनवरत सेवा और उपचारसे बीमारीने पलटा खाया और रोगिणीने कहा, "अब मैं बच गई।"

हम सब लोगोंकी जानमें जान आई। चार-छः दिन बाद देखते क्या हैं

कि बीमार उत्तरोत्तर स्वस्थ हो चला है। हम लोग फूले नहीं समाये। जब हम लोगोंने हेमचंद्रजीकी पीठ ठोकते हुए शाबासी दी तो वे सहज भावसे मुस्कराते हुए बोले, " इसमें शाबासीकी क्या बात है! यह तो ज़रा-सी भूल थी, जिसे न समझ सकनेके कारण डाक्टरोंने क्षय कह दिया था। मुझे आते ही उस भूलका पता लग गया और उसके सुधारसे वे स्वस्थ हो गईं।"

उस समयकी हेमचंद्रजीकी परिचर्या और सेवा-शुश्रूषाने मुझे उनकी ओर इतना आकृष्ट किया कि उसका वर्णन करना असंभव है। इतना ही कह सकता हूँ कि सच्ची और निस्वार्थ सेवा दुर्लभ है। सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।'

श्री प्रेमीजीने जैन-समाजकी आजीवन मूक सेवा की है। उसीका प्रतिबिम्ब—नहीं-नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाण—हमें उक्त अवसरपर मिला। हमारे मनमें हेमचंद्रजीके प्रति आशाएँ उत्पन्न हो गई थीं, जिनकी पूर्तिके हम लोग उत्सुकतापूर्वक स्वप्न देख रहे थे। दुःख है कि हमारी वे सब आशाएँ निराशामें परिणत हो गईं और दुर्दैवने हेमचंद्रजीको असमयमें ही हमसे छीन लिया।

* * *

हेमचंद्रजीकी प्रतिभा प्रखर एवं सर्वतोमुखी थी। उनसे जिस किसी विषयपर बातचीत होती, उनके सुलझे हुए सुव्यवस्थित विचार सुननेको मिलते। भगवानने यदि यह दिन न दिखाया होता तो आज उनकी स्मृतिमें कुछ लिखनेके बजाय उनके मौलिक ग्रंथोंके अध्ययनका अवसर प्राप्त होता। पर विधिके आगे किसका वश है!

हमें विश्वास है कि उनके सुयोग्य आत्मज दोनों चिरंजीव बाल-चंद्रके समान शीघ्र ही विकसित होकर उनके अधूरे कार्योंको पूरा करेंगे और अपने पितामहके भारको हलका करेंगे।

उज्जैन]

४५

हेमचन्द्र-स्मरण

पं० जुगलकिशोर मुख्तार

चि० हेमचन्द्रकी याद आते ही एक सौम्य आकृति आँखोंके सामने घूम जाती है—गोरा रंग, लम्बा कद, लम्बोतरा चेहरा और दुबला-पतला बदन। इस आकृतिके मेरे सामने दो रूप हैं—एक बाल्यकाल—कोई ८-९ वर्षकी अवस्थाका, और दूसरा यौवनारम्भकाल—विवाहसे पूर्व कोई २० वर्षकी अवस्थाका। सन् १९१७ और १९२८ में दो बार मुझे कुछ महीनोंके लिये बम्बई ठहरनेका अवसर मिला है और यह ठहरना हेमके पिता सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीके पास ही हुआ है—उन्हींके खास अनुरोधपर मैं बम्बई गया हूँ। इन्हीं दोनों अवसरोंपर हेम मेरे विशेष परिचयमें आया है। बाल्यावस्थासे ही वह मुझे सुशील तथा होनहार जान पड़ा, उसमें विनय गुण था, सुनने-सीखनेकी रुचि थी, ग्रहण-धारणकी शक्ति अच्छी विकासोन्मुखी थी और वह सबोंको बड़ा प्यारा मालूम देता था। उसके उक्त बाल्य-काल (सन् १९१७) की एक घटनाका मुझे आज भी स्मरण है। किसी दिन संध्याकालके समय हेमके काका (चाचा) लैम्प या लालटैनकी कोई चिमनी साफ़ कर रहे थे, चिमनी टूटी हुई थी या क्या वह उनके हाथमें चुभ गई, उसके आघातसे वे कुछ सिसकने लगे, उन्होंने हतोत्साह होकर चिमनीको रख दिया और कहा कि अब इसे हाथ नहीं लगाएँगे। हेम उनके पास था, वह यह सब देखकर कुछ भौंचकसा रह गया। उसने तुरंत ही मेरे पास आकर इस घटनाकी जिन शब्दोंमें रिपोर्ट की उससे यह मालूम होता था कि वह अपने काकाकी उस प्रवृत्तिको अच्छी नहीं समझ रहा है। मैंने उसी समय हेमके विनोदार्थ रिपोर्टेड घटनाकी एक तुकबन्दी बना दी और कहा कि इसे अपनी काकी (चाची) को जाकर सुनाना—

काका तो चिमनीसे डरत फिरत हैं,
काट लिया चिमनीने 'सी-सी' करत हैं!

' अब नहिं छूएँगे ' ऐसो कहत हैं
देखोजी काकी, यह वीर बनत हैं ! !

इस तुकबन्दीको सुनकर हेम बड़ा प्रसन्न हुआ—आनन्दविभोर होकर नाचने लगा—मानो उसके भावका मैंने इसमें पूरा चित्रण कर दिया हो। उसी क्षण उसने इसे याद कर लिया और वह काकीको ही नहीं किन्तु अम्मा और दद्दाको भी सुनाता और गाता फिरा। इस समय वह मुझसे और भी अधिक हिल मिल गया था, मैं उसके मनोनुरूप अनेक प्रकारकी तुक बन्दियाँ बनाकर दे दिया करता था, जिन्हें वह पसन्द करता था। एक दिन प्रेमीजी कहने लगे—' हेम तुम्हारी कविताओंको खूब पसन्द करता है, कहता है—बाबूजी बड़ी अच्छी कविता बनाना जानते हैं।' बचपनमें कहानी सुननेका उसे बड़ा शौक था और वह मुझसे भी अनुरोध करके कहानी सुना करता था। बम्बईसे मेरा चला आना उसे बहुत अखरा। प्रेमीजी लिखते रहे—' हेम आपको याद करता रहता है ' मैं भी प्रेमीजीको लिखे गए पत्रोंमें उसे बराबर प्यार तथा आशीर्वाद भेजता रहा।

कुछ अर्सेके बाद जब प्रेमीजी सख्त बीमार पड़े और उन्हें अपने जीवनकी बहुत ही कम आशा रह गई तब उन्होंने अपनी वसीयत (will) द्वारा हेमकी शिक्षाका भार मेरे ही सुपुर्द किया था। परन्तु सौभाग्यसे प्रेमीजीका वह अरिष्ट टल गया और वे स्वयं ही हेमकी शिक्षा-दीक्षा करनेमें समर्थ हो सके, यह खुशीकी बात है। समय-समयपर हेमकी शिक्षादिके विषयमें जो परामर्श प्रेमीजी मुझसे माँगते रहे हैं वह मैं उन्हें खुशीसे देता रहा हूँ।

दूसरी बार सन् १९२८ में जब मैं बम्बई गया और ९ जुलाईसे ६ सितम्बर तक प्रेमीजीके पास ठहरा तब हेम बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर चुका था, कई भाषाएँ सीख चुका था, उसकी समझ अच्छी विकसित हो रही थी और साथ ही उसमें ज्ञान-पिपासा जाग रही थी। प्रेमीजी अपनी अस्वस्थताके कारण चाहते थे कि हेम अब दुकानके कामको सँभाले और उसमें अधिकसे अधिक योग देवे; परन्तु हेमको वह रुचता नहीं था, वह कुछ अपनी ही धुनमें रहता था और इस लिये दुकानके काममें बहुत कम योग देता था। प्रेमीजीको यह सब असह्य होता जाता था, वे हेमको एक सनकी तथा उद्दण्ड बालक तक समझने लगे थे और कभी कभी उसे फटकार भी देते, जिसका परिणाम उलटा होता था। हेम अपनी माँके पास जाकर रोता था, अपना दुःख व्यक्त

करता था और कभी कभी घरसे निकल जाने अथवा अपना कुछ अनिष्ट कर डालनेकी धमकी तक भी दे देता था। इससे माता-पिता दोनोंकी ही चिन्ता बढ़ जाती थी—इकलौता पुत्र था। मेरे पहुँचनेपर प्रेमीजीने मुझे इस सारी स्थितिसे अवगत किया और मेरे ऊपर हेमको समझानेका भार रक्खा।

मैंने अनेक प्रकारसे हेमको समझाया और उसके मनोभावको जाननेकी चेष्टा की। हेम खुल गया और उसने मेरे सामने अपनी सारी अभिलाषा तथा दुख-दर्दको रख दिया। उसकी यह आम शिकायत थी कि प्रेमीजीसे उसे सदा झिड़कियाँ ही प्राप्त होती रहती हैं—आत्मसम्मान नहीं मिलता। मैंने देखा कि हेममें स्वाभिमानकी मात्रा काफ़ी थी, व्यर्थकी झिड़कियों, डाट-डपट एवं फटकारसे उसका चित्त व्यथित होता था—उसे भारी कष्ट पहुँचता था, और इस लिये इस प्रकारके व्यवहारसे उसे बड़ी चिढ़ थी। इसीसे ऐसे व्यवहारके मुकाबलेमें वह अनुकूलता बर्तनेके बजाय प्रायः उल्टा आचरण करता था। अतः मैंने प्रेमीजीको भी समझाया और उन्हें अपने व्यवहारको कुछ बदलकर '**प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्**' की नीतिपर अमल करनेके लिये कहा और साथ ही यह भी बतला दिया कि ऐसा होनेपर तथा हेमकी ज्ञानार्जनादि-विषयक इच्छाओंपर व्यर्थका अंकुश न रखनेपर वह दुकानका अधिक काम करेगा। चुनाँचे ऐसा ही हुआ—मैं जितने दिन बम्बई रहा पिता-पुत्रमें किसी प्रकारके विसंवादकी नौबत नहीं आई, एकको दूसरेकी शिकायतका अवसर नहीं मिला और यह देखा गया कि हेम दूकानका काम पहलेसे कुछ अधिक कर रहा है।

बम्बईमें हेम मेरे साथ योगासन किया करता था। योगासनोंका अभ्यास उसने भी कुछ पहलेसे कर लिया था और उसकी उस तरफ़ रुचि बढ़ रही थी। वह जब भावावेशमें गर्दन हिलाकर "**कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः**" कहा करता था तब बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता था। मेरे बम्बईसे चले आनेके कुछ समय बाद हेमको किसी अच्छे योगीका निमित्त मिल गया और उसने कितनी ही योगविद्याको सीख लिया, योग-विषयक बीसियों शास्त्र पढ़ डाले तथा बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन दिनों मेरी भी रुचि योगकी ओर बढ़ी हुई थी और मैं योग-विषयके बहुतसे ग्रंथोंका अवलोकन कर गया था—अभ्यासमें, ५१ वर्षकी अवस्था होते हुए भी, खुशीसे पौन पौन घंटे तक शीर्षासन कर लेता था; परन्तु मुझे किसी गुरुका साक्षात् सम्पर्क

प्राप्त नहीं हुआ था—सब कुछ अपने अध्ययनके बलपर ही चलता था। प्राणायामके विषयमें कुछ सन्देह होनेपर मैंने हेमचन्द्रसे एक प्रश्न पूछा था, जिसका उत्तर उसने ३० दिसम्बर सन् १९२९ के पत्रमें दिया था। इस उत्तर परसे यह सहजमें ही जाना जा सकता है कि उस समयतक हेमचन्द्रने योग-विषयका कितना अनुभव तथा अभ्यास प्राप्त कर लिया था। उत्तर-पत्रमें योग विषयक कुछ लेखोंके लिखनेकी इच्छा भी व्यक्तकी गई थी, जिसे लेकर मैंने अनेकान्तके लिये कोई अच्छा लेख भेजनेकी उसे प्रेरणा की थी। उत्तरमें लेखकी स्वीकृति देते हुए हेमचन्द्रने १३ फर्वरी सन् १९३० को जो दूसरा पत्र लिखा है उससे मालूम होता है कि उस समय उसकी ज्ञान-पिपासा बहुत बढ़ी हुई थी, वह किसीको पत्रका उत्तर तक नहीं देता था, अध्ययन-मनन और पठितका सार खींचनेमें ही अपना सारा समय व्यतीत करता था, फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती थी। लेख लिखनेमें अपनी कठिनाइयोंका भी उसने पत्रमें सरल भावसे उल्लेख किया है। इसी समय उसके विवाहके चर्चा चल रही थी और वह एक प्रकारसे पक्की हो गई थी। योग विद्यामें जो रस तथा आनन्द आ रहा था उसके मुकाबलेमें उसे इस विवाहकी कोई खुशी नहीं थी। वह इसे एक प्रकारका संकट समझता था और उस संकटको सरलतापूर्वक पार करने अथवा गृहस्थाश्रमकी परीक्षामें समुत्तीर्ण होकर सुखसे जीवन-यापन करनेके प्लेन (Plan) बनाया करता था। उसकी इच्छा थी कि मैं स्वयं निर्विकार रहते हुए अपनी सहधर्मिणीको भी निर्विकार बनाकर योगमार्गमें दीक्षित कर दूँ। इसी आदर्शको लेकर उसने विवाह करना स्थिर किया था, जब कि पहलेसे उसकी इच्छा आजन्म अविवाहित रहनेकी थी। ये सब बातें भी उक्त पत्र (नं० २) से जानी जाती हैं।

२४ फर्वरी सन् १९३० के पत्र (नं० ३) में हेमचन्दने यह भी सूचित किया था कि उसने वह लेख पिताजी (प्रेमीजी) और पं० दरबारीलालजीको भी दिखलाया है, पं० दरबारीलालजीने 'ठीक है' ऐसा रिमार्क दिया है और पिताजीने उसे 'निकम्मा' ठहराया है। पिताजीके उत्साह न दिलानेके कारण उत्साहके ठंडा होनेसे पहले ही उसने उसको मेरे पास भेज देना उचित समझा। इस पत्र परसे यह भी मालूम होता है कि उन दिनों हेमपर फिर कुछ झिड़कियाँ पड़ी हैं, जिनसे उसका स्वाभिमानी आत्मा तलमला उठा है और उसने अपनी तत्कालीन मनोदशाका उल्लेख करते हुए यह उत्कट

इच्छा व्यक्त की है कि मैं उसे अपने पास देहली (समन्तभद्राश्रममें) बुला लूँ। इस विषयमें उसके निम्न शब्द खास तौरसे ध्यान देने योग्य हैं:—

" मुझमें जाननेकी इच्छा दिनपर दिन बहुत ही प्रबल होती जाती है और यहाँ कामके मारे मैं पिसा जाता हूँ। मुझे अपनी पिपासा शांत करनेका बिल्कुल मौका नहीं मिलता। पिताजीकी झिड़कियाँ खा खाकर मेरी आत्मा बहुत तड़पती रहती है और दिनपर दिन बिगड़ता जाता हूँ। यदि आप मुझे वहाँ अपने पास बुला लें तो मुझे इससे बढ़कर खुशी और किसी बातमें न होगी। यदि मेरे लिये जिन्दगी भरके लिये खाने पीने और decent रहनेका इन्तजाम हो जाय तो मैं दूकान भी छोड़ दूँगा। मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ जो छपनेपर खूब बिकेगी। उसी प्रकारकी कुछ अन्य पुस्तकें छपाऊँगा। कुछ बिक्रीपर पैसे जहाँके तहाँ अदा कर दूँगा और आगेकी आमदनीपर गुजारा कर लूँगा।"

हेमके इस पत्रको प्रेमीजीने कहीं उसकी इच्छाके बिना पढ़ लिया था, अतः पत्रके अन्तमें इसका नोट देते हुए, हेमने अपने पिताकी सभ्यतापर खुला आक्रमण किया है।

हेमके लेख-सम्बन्धमें प्रेमीजीने मुझे अपने २४ फर्वरीके ही पत्रमें लिखा था—" हेमके लेखमें आपको परिश्रम काफ़ी करना होगा, मैं तो उसे पूरा पढ़ भी नहीं सका हूँ। मेरा संशोधन उसे पसन्द भी नहीं है।"

मार्च सन् १९३० में हेमका विवाह हो गया। इस विवाहके अवसरपर प्रेमीजी सख्त बीमार थे, उनके ऊपर साढ़े चार वर्षके बाद १ मार्चसे श्वास रोगका फिरसे आक्रमण हो गया था, जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। चुनाँचे प्रेमीजी अपने ९ अप्रेलके पत्रमें लिखते हैं—" विवाहके समय तो मेरी बहुत बुरी हालत हो गई थी। मुझे नहीं मालूम कब कौन-सा दस्तूर हुआ।...... इसी विपत्तिके कारण मैं आपको कोई पत्र न लिख सका और न आपको आग्रहपूर्वक बुला ही सका। विवाह तो हो गया; परन्तु दुर्भाग्यसे न मैं और न हेमकी माता ही उसके सुखका कोई अनुभव कर सके।" प्रेमीजीके इन शब्दोंमें कितनी वेदना भरी हुई है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

हेमके पत्रद्वारा विवाह-सम्पन्नताका समाचार पाकर मैंने अपने ५ अप्रेलके पत्रमें उसे आशीर्वाद देते हुए कहीं ऐसा लिख दिया था कि, अब तुम खूँटेसे बँध गए हो यह देख कर प्रसन्नता होती है। इसपर उसके स्वाभिमानको ठेस लगी, और इसलिये उसने खूँटा तथा उससे बँधनेवाले पशु आदिकी

कल्पना करके मुझे १० अप्रेल सन् १९३० को एक लम्बा पत्र (नं० ४) लिखा, जिससे मेरे शब्दोंपर उसका क्षोभ स्पष्ट जाना जाता है। पत्रमें अपनी स्थितिको स्पष्ट करनेकी चेष्टा की गई है और साथ ही सुधारनेके लिये अपना वह लेख सूचनाओंके साथ वापिस माँगा गया है जो अनेकान्तमें छपनेके लिये भेजा गया था और तब तक छप नहीं सका था।

इसके बाद २६ अप्रेलके कार्ड (नं० ५) में लेखको पुनः वापिस भेजनेकी प्रेरणा करते हुए हेमचन्दने लिखा था—"अब यदि आप उसे भेज दें तो पहलेसे १० गुना अच्छा लिखा जा सकता है। उक्त विषयकी बहुत-सी नई बातें मालूम हुई हैं।" साथ ही अपने पिछले पत्रपर मेरी नाराजगीकी कुछ कल्पना करके लिखा था—

"आशा है कि आप नाराज न हुए होंगे। बालक हूँ, क्षमादृष्टि बनाये रहना।"

इन पंक्तियोंपरसे हेमका अपने पिछले पत्रके सम्बन्धमें कुछ अनुताप और साथ ही नम्रताका भाव टपकता था, इसलिये ३० अप्रेलको पत्रका उत्तर देते और लेखको वापिस भेजते हुए मैंने जो पत्र लिखा था उसमें उक्त पंक्तियोंपरसे फलित होनेवाले अनुताप और नम्रताके भावका भी कुछ ज़िक्र कर दिया था। इतनेपर भी हेमके स्वाभिमानको फिरसे ठेस लग गई और उसने ५ मई सन् १९३० को जो उत्तर पत्र (नं० ६) लिखा, उसमें यहाँ तक लिख डाला:—

"जो भी कुछ मैंने लिखा था उसके लिये मुझे (electron) मात्र भी अनुताप नहीं है। उन पंक्तियोंको आप व्यर्थ ही अनुताप और नम्रताव्यंजक बतलाकर उनके पीछे अपनी रक्षा करना चाहते हैं।"

हेमके पत्रके साथ ४ मईका लिखा हुआ प्रेमीजीका पत्र भी था, जिसमें उन्होंने मुझे यह प्रेरणा की भी कि "अँग्रेजीका कोई अनुवाद हो तो आप उससे (हेमसे) अवश्य कराइये। आपके लिखनेसे वह अवश्य कर देगा।" हेमने यह पत्र पढ़ लिया और उसे प्रेमीजीका उक्त लिखना खटका। अतः अपने पत्रके अन्तमें पहलेहीसे बन्द लगाते हुए मुझे लिखाः—

"कृपया आप मुझसे अनुवाद करनेका आग्रह न कीजियेगा, अनुवाद करनेसे मुझे बहुत घृणा है। यदि कोई मेरा अनुवादित लेख छपता है तो मुझे अपनी असमर्थतापर (स्वतंत्र लेख लिखनेकी) बहुत शर्म आती है।

' विशाल भारत'वाला लेख मैंने एक साल पहले पिताजीके घोर आग्रहसे अँग्रेजी परसे लिखा था। अनुवाद करनेसे मेरे मनपर चोट पहुँचती है।"

इन पंक्तियोंपरसे हेमकी उस समयकी स्वाभिमानी प्रकृतिका बहुत कुछ पता चल जाता है। परन्तु अनुवादसे घृणा, शर्म और चित्तपर चोट पहुँचनेकी बात बादको कुछ स्थिर रही मालूम नहीं होती; क्योंकि मुझे भी फिर दो अँग्रेजी लेखोंका अनुवाद भेजा गया है और कुछ पुस्तकोंके अनुवाद भी करके प्रकाशित किये गए हैं।

हेमके लेखपर जो रिमार्क प्रेमीजीने मुझे भेजा था वह ऊपर दिया जा चुका है। जिस समय हेम अपने लेखको संशोधनादिके लिये वापिस माँग रहा था उस समय ९ अप्रेलके पत्रमें प्रेमीजीने लिखा था—"हेमके[१] लेखको संशोधन-परिवर्तनके साथ छाप दीजियेगा। उसकी ऊँटपटांग बातोंपर ध्यान मत दीजिये।" और जब लेख वापिस चला गया तब प्रेमीजीने अपने ४ मईके पत्रमें लिखा—"हेम लेखके लिए तैयारी[२] तो बहुत कर रहा है। पर क्या लिखेगा, सो वह जाने। मेरी राय तो यह थी कि इस लेखको आप ही संशोधित परिवर्तित करके छाप देते, परन्तु वह नहीं माना और वापिस बुला लिया।" इधर हेमने अपने उक्त ५ मईवाले पत्रके अन्तमें लिखा था—"*आपने लेखपर अपनी सम्मति नहीं लिखी। मुझे डर लगता है कि......* सरीखी मेरी भी दुर्दशा आप नोटोंद्वारा न कर दें।"

इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए, जब लेख वापिस आया तब उसे अच्छा बनानेके लिये संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धनादिके द्वारा काफ़ी परिश्रम किया गया और उसका प्रारंभिक अंश ' योगमार्ग' नामसे प्रथम वर्षके अनेकान्तकी संयुक्त किरण नं० ८, ९, १० में प्रकाशित किया गया *। इस मुद्रित लेखको पढ़कर हेमचन्द्रको प्रसन्नता हुई और उसमें उसने आमूल-चूल-जैसे परिवर्तनका अनुभव किया और मुझे लिखा कि मैं इतने ऊँचे

---

१ इस लेख (*मंगलमय महावीर*) को अनेकान्तमें छापनेकी प्रेरणा प्रेमीजीने अपने ९ अप्रेलके पत्रमें की थी।

२ इस तैयारीका पता हेमके ५ मईके पत्रसे (नं० ५) भी लगता है।

* लेखका दूसरा अंक ' *सरल योगाभ्यास* ' नामके तृतीय वर्षके अनेकान्तकी ५ वीं किरणमें प्रकाशित हुआ है।

लेखका अधिकारी नहीं था, आपने पुत्र-वात्सल्यको लेकर उसे इतना अच्छा बना दिया है। परन्तु मैंने लेखके शुरूमें लेखकका परिचय देते हुए जो यह लिख दिया था कि 'लेखक समाजके सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी विद्वान् पं० नाथूरामजी प्रेमीके सुपुत्र हैं' वह हेमको असह्य जान पड़ा। उसे ऐसा लगा कि इससे पाठक प्रेमीजी जैसे विद्वान्का पुत्र होनेके नाते उसके लेखको महत्त्व देंगे—स्वतंत्र रूपसे लेखके महत्त्वको नहीं आँक सकेंगे, और इसलिये मेरे इस लिखनेपर आपत्ति करते हुए उसने अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की। यह भी हेमकी स्वाभिमानी प्रकृतिकी एक लहर थी, और इससे हेमका पिताके साथ तत्कालीन मनमुटाव तथा असंतोष भी व्यक्त होता था। उसका यह पत्र खोजनेपर भी मुझे अभी तक नहीं मिला। लेखमें उल्लिखित शेष छह पत्रोंको अन्तमें बतौर परिशिष्टके दिया गया है।

विवाहके कुछ अर्से बाद हेमकी प्रकृति और प्रवृत्तिमें भारी परिवर्तन हुआ जान पड़ता है, इसीसे प्रेमीजी द्वारा उसकी कोई खास शिकायत सुननेमें नहीं आई और न हेमने ही प्रेमीजीकी कोई खास शिकायत लिखी। हेम अब दुकानके काममें पूरा योग देता था, गृहस्थाश्रमकी जिम्मेदारीको समझ गया था, उनका जीवन सादा, संयत तथा कितने ही ऊँचे ध्येयोंको लिये हुए था, और इससे सुहृद्वर प्रेमीजीका पिछला जीवन बहुत कुछ निराकुल तथा सुखमय हो चला था। परन्तु दुर्दैवसे वह देखा नहीं गया और उसने उनके इस अधखिले पुष्पसम इकलौते पुत्रको अकालमें ही उठा लिया और उनकी सारी आशाओंपर पानी फेर दिया, यह देखकर किसे दुख नहीं होगा? मैं प्रेमीजीके इस दुःखमें समवेदना प्रकट करता हुआ सद्गत हेमचन्द्रके लिये यह हार्दिक भावना करता हूँ कि उसे परलोकमें सुख-शान्तिकी प्राप्ति होवे और उसकी सहधर्मिणी तथा बच्चोंका भविष्य उज्ज्वल बने।

वीर-सेवा-मंदिर, सरसावा,
ता. ११ मार्च सन् १९४४

परिशिष्ट

पत्र नं० १

बम्बई, ३०-१२-१९२९

श्रीमान् ज्ञानवृद्ध पण्डित जुगलकिशोरजी, हेमचन्द्रका प्रणाम। यह जानकर आनन्द हुआ कि वहाँ कभी कभी मुझे भी आप याद कर लिया करते हैं।

आपने मुझसे यह पूछा कि प्राणायाम कब करना चाहिए। इसके उत्तरमें मेरा निवेदन है कि प्राणायाम आरम्भ करनेके लिए योगियोंद्वारा यह आवश्यक माना गया है कि शरीर शुद्ध हो। इसके लिए ही अधिकांश आसनों और षट् क्रियाओंका विधान किया गया है। यदि बिना आसनोंका अभ्यास किये कोई प्राणायाम करना चाहे तो उसे पहले कुछ दिनका उपवास कर लेना ठीक होगा। शरीरमें किसी भी रोगका बीज होनेपर वह रोग अभ्यास-कालमें घर दबाता है। षट् क्रियाएँ बहुत ही सरल हैं। १ माहमें हो सकती हैं। यदि उन्हें कर लिया हो तो प्राणायाम बिना आसनोंके आरंभ किया जा सकता है।

प्राणायाम प्रारंभ करनेके पूर्व कमसे कम एक माह योनिमुद्रा, अश्विनीमुद्रा और मूलबंधका अभ्यास अवश्य कर लेना चाहिए। प्राणायाममें लगातार मूलबंध रखना अत्यावश्यक है। इसके टूट जानेसे वीर्यकी गति ऊर्ध्व होनेके बदले अधो हो जाती है और कभी कभी वीर्यसंबन्धी शिकायतें खड़ी हो जाती हैं। ऐसा नहीं होता तो हृदयपर तो अवश्य ही बुरा परिणाम होता है। भस्त्रिका और कपालभाति (एक प्रकारका Deep Breathing) करनेमें सिवाय फायदेके किसी भी हालतमें नुकसानकी संभावना नहीं। ऊपरके नियम इन दोके लिए लागू नही हैं। वे लोम विलोम, सूर्यभेदन आदि आदि ७ कुंभक प्राणायामोंके लिए ही आवश्यक हैं। कभी कभी नासिका-रंध्र साफ न होनेके कारण प्राणायाम असंभव-सा हो जाता है। उस समय नाकसे पानी पीना अथवा नेति करना आवश्यक है।

मेरी इच्छा 'कुण्डली योग' या 'हठयोग' पर एक लम्बा लेख लिखनेकी है। यह लेख सचित्र होगा और इसमें कुण्डलिनीपर पाश्चात्य शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे विचार होगा। तथा यह विचार भी किया जायगा कि उन्निनीषुओंको

कहाँ तक सहायता मिल सकती है और हठयोगी स्वयं क्यों अपने ध्येयकी प्राप्तिमें असफल रहते है—वे कहाँ ल करते हैं।

इस लेखमें यह सिद्ध किया है कि 'कुण्डलिनी' एक नाड़ी Vagus nerve है जिसका कि वश शरीरकी प्रत्येक अनैच्छिक क्रिया Sensory Nerves जैसे हृदयका स्पंदन, पाचनक्रिया, रक्ताभिसरण आदिपर है। इस नाड़ीपर काबू करनेसे ये सब क्रियाएँ मनुष्यकी अपनी इच्छासे होने लगती हैं और वह उनका अनुभव भी करने लगता है। मुझे इसका कुछ कुछ अनुभव हुआ है।

मनुष्य इन सब बातोंका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही कर सकता है, परन्तु स्वभावानुसार वह दुरुपयोग ही अधिक करता है, क्योंकि हठयोगी अधिकतर दुराचारी हो जाते हैं। मुझे हठयोगके जो ग्रन्थ देखनेके लिए मिले हैं उनके अनुसार हठयोगका मुख्य उद्देश शरीरको वज्रसंहननका बनाना है जो विना वीर्यको ऊर्ध्व किये नहीं हो सकता और उसके लिए ऐसी ऐसी बढ़िया क्रियाएँ दी गई हैं जिनकी तारीफ़ नहीं हो सकती। ये सब करके भी जब हठयोगीको बुरे मार्गमें पड़े देखते हैं तब बड़ी दया आती है। इन सब क्रियाओंका सचित्र वर्णन करनेकी मेरी इच्छा है। कई ग्रन्थोंमें इन क्रियाओंका अतिरंजित वर्णन लोगोंको कुमार्गमें डाल देता है। योगके हठयोगप्रदीपिका वगैरह ग्रन्थोंमें किसी भी क्रियाका समझा जा सके तथा आचरित किया जा सके ऐसा कोई वर्णन नहीं है। बस प्रलोभन दिये गये हैं। हाँ, जो इस मार्गको गुरुसे सीखे हैं उनके लिये ये ग्रन्थ directions देनेके कामके हैं। ऐसा मालूम होता है कि प्रलोभनोंके द्वारा मनुष्यको इनकी तरफ झुकाकर फिर उसे गुरुद्वारा शुभमार्गमें लगाना इनका उद्देश है, परन्तु अच्छे गुरु न मिलनेके कारण अनेक बार कुमार्गमें लगा देते हैं।

इसके सिवाय सांख्यदर्शनपर भी एक लेख लिखनेकी इच्छा रखता हूँ। गुजरातीमें 'जीवन-शोधन' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है उसीके आधारपर मैं वह लेख लिखूँगा। उसमें सांख्यका आधुनिक Physics के ढंगपर वर्णन होगा।

आपका आज्ञाकारी

हेमचन्द्र

पत्र नं० २

बम्बई, ता० १३-२-३०

श्रीमान् पूज्य पं० जुगलकिशोरजी,

आपका कृपा कार्ड ता० ११ का मिला। मेरे कितने ही लेख अधूरे पड़े हुए हैं जो समाप्त होनेका नाम नहीं लेते। किसी भी लेखको लिखने बैठो तो वह बढ़ता ही जाता है। मैं चाहता था कि पहले मेरी एक पुस्तक छप जावे परंतु वह पुस्तक समयाभावके कारण पूरी ही नहीं होती। जो भी समय मिलता है उसमें ज्ञान प्राप्त करनेके इतने साधन और मौके मालूम पड़ते हैं कि बस मैं ज्ञानको पीनेमें लग जाता हूँ और लिखनेका कार्य जो कि एक तरहसे दूसरेको ज्ञान देनेका कार्य है छूट जाता है। अभी मैं अपनी पुस्तकको लिख रहा था कि मेरे हाथमें एक ऐसी पुस्तक आगई कि उसे ४ दिनमें पूरी कर उसकी Summary लिखे बिना तबीयत न मानी। जो भी पुस्तक मैं पढ़ता हूँ उसकी Summary लिखकर अवश्य रख लेता हूँ। इस Summary के लिखनेमें बहुत दिन लग जाते हैं। आजकल मैं अधिकांश योगविषयक पुस्तकोंका ही अध्ययन कर रहा हूँ। यह विषय ऐसा है कि जो कुछ पढ़ा जाता है उसका अनुभव किये बिना जी नहीं मानता, इसलिये अभ्यास भी करता रहता हूँ। थोड़े दिनोंमें मैंने काफी उन्नति कर ली है, मुझे कुंडलीकी जाग्रतिका अनुभव होने लगा है। योनिमुद्रा और मूलबंधका अभ्यास इतना अच्छा होने लगा है कि कुछ कहनेकी बात नहीं। प्राणायाम बहुत दिनोंसे छोड़ रखा है। उसे फिर शुरू करना है।

मैं आजकल किसीके भी पत्रका उत्तर नहीं देता। नेपोलियन कहा करता था कि यदि एक माहतक डाक न खोली जाय तो करीब करीब सब पत्र अपना उत्तर आप ही दे लेते हैं। नेपोलियनकी उक्त बातका मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ। वह आपके प्रति कुछ प्रेम ही है जो मुझे इस पत्रको लिखनेके लिए बाध्य कर रहा है।

आपने जो मुझसे लेखके लिखनेके लिए आग्रह किया उसमें एक बड़ी भारी कठिनाई यह आ जाती है कि लेख लिखनेके बाद मुझे फिर नई बातें सूझती हैं, उन्हें शामिल कर पुनः लिखनेपर फिर और नई बातें सूझती हैं, इस प्रकार लेख समाप्त हीं नहीं होता। सांख्यदर्शनके विषयमें मैं संक्षिप्त रूपमें जीवन-शोधनकी बातें लेकर जो लेख लिख रहा था उसके लिखते समय मूल

लेखकके विचारोंसे मेरा बहुत मतभेद हो गया तथा तिलककृत 'गीतारहस्य' बाँचनेपर मुझे मालूम हुआ कि लेखककी कल्पनाका मूल गीतारहस्यमें ही है तो उनके प्रति मेरा पूज्य भाव भी कम हो गया। इसके सिवाय उक्त पुस्तकसे अनेक बातोंका अधूरा ज्ञान मालूम हुआ। अधूरे ज्ञानसे बिल्कुल अज्ञान होना मैं अच्छा समझता हूँ। इस प्रकार उस लेखको मैंने आधा लिखकर ही छोड़ दिया है। 'बुद्ध अने महावीर' नामक पुस्तकमें उक्त पुस्तकके लेखकने हठयोगके बारेमें बहुत बेसमझपूर्ण बातें लिख दीं। जो हठयोगके बारेमें कुछ भी अनुभव रखता नहीं, उसे उसके बारेमें कुछ भी लिखनेका क्या अधिकार है? शंकराचार्य और बुद्ध जैसे पुरुषोंने जिसके द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त कर जिसकी प्रशंसा की उसके लिये इस प्रकार लिखना मुझे ठीक नहीं मालूम हुआ। बुद्धने हठयोगकी कमजोरियाँ बतलाई हैं परंतु ऐसा करनेका उनको अधिकार था और उन्होंने संयत रूपसे ही वैसा लिखा है।

योगविषयक लेख लिखने बैठा तो जैनशास्त्रोंका अज्ञान मार्ग रोककर खड़ा हो गया। दूसरे मुझे कुछ लिखनेमें अनधिकारता मालूम हुई। परंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मुझे जैनदृष्टि अपने पितासे प्राप्त हुई है जिससे कि मैं योगविषयक ग्रंथोंमेंसे रत्न छाँट सकता हूँ और उसका मर्म बहुत ही अच्छी तरहसे समझ सकता हूँ। फिर भी मैं १–२ दिनमें एक लेख लिखकर भेजनेकी कोशिश करूँगा।

शायद आपको मालूम होगा कि मैं आजकल एक बड़े संकटमें पड़ा हूँ। मेरी शादी जल्द ही होनेवाली है। किसीको शादीकी बड़ी खुशी होती है। पर मुझे वह बिल्कुल नहीं है। मेरे लिये तो वह बड़ी परीक्षाका समय होगा। उस परीक्षाकी मुझे तैयारी करना है। मैं चाहता हूँ निर्विकार रहूँ और अपनी सहधर्मिणीको भी निर्विकार बना योगमार्गमें दीक्षित कर दूँ। मेरा आदर्श गाँधीका आदर्श तथा योगियोंका आदर्श है। प्राचीन कालमें जिस प्रकार ऋषि अपनी पत्नियों सहित रहकर योगका अभ्यास करते थे उसी प्रकार मैं भी करना चाहता हूँ। बस इसीकी चिन्ता मुझे रहा करती है। ज्यों ज्यों मैं इस बातपर विचार करता हूँ त्यों त्यों मुझे अपनेमें एक नई अद्भुत शक्ति स्फुरती हुई मालूम होती है जिसका अनुभव मुझे बड़ा आनंद देता है। रोज मैं इसीके Plan सोचा करता हूँ कि मैं किस प्रकार अपनी पत्नीके आगे पेश आऊँगा और कैसे उसे जीत लूँगा। पहले मेरी इच्छा आजन्म अविवाहित रहनेकी थी परंतु अब मुझे

अनुभव होता है कि वह मेरी भूल थी और उसके द्वारा मैं अपने लक्ष्यको सिद्ध न कर सकूँगा। जो प्रेमकी अद्भुत शक्ति मैं अभी अनुभव कर रहा हूँ वह उस प्रकार न हो सकती। मुझे ब्रह्मचर्यद्वारा प्रेमकी इस अद्भुत शक्तिको चिरस्थायी और बलप्रद बनाना है।

पिताजी अभी देशसे नहीं आये हैं। आनेपर उनसे जरूर आपके संदेशको कह दूँगा।

आपका आज्ञाकारी,
हेमचन्द्र मोदी

पत्र नं० ३

बम्बई ता० २४-२-३०

पूज्यवर पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारकी सेवामें, मान्यवर,

आपका आज दूसरा पत्र मिला। योगमार्गका लेख मैं आज भेज रहा हूँ। लेख बहुत ही जल्दीमें लिखा गया है। जिस दिन आपका पहला पत्र मिला उसी दिन मैंने ज्ञानार्णव पूरा पढ़ डाला और दो घंटेमें हेमचंद्रका योगशास्त्र बांचा और लेख लिखने बैठा। हठयोग तक लिख पाया था कि आपका दूसरा पत्र मिला और मैंने जल्दी जल्दी पूरा किया।

पिताजीको बताया तो उन्होंने उत्साह देनेके बदले उसे निकम्मा ठहराया। मैंने मनमें कहा कि उत्साह ठंढा होनेक पहले जितना जल्दी जा सके उतना भेज दो। मुझे इस बातका भी डर था कि शायद आपको भी लेख निकम्मा मालूम पड़े, इससे अंकको लेट करना ठीक न होगा। यदि आपको लेख पसंद आवे तो मंत्रयोगतकका अंश छपने दे देना और बाकी मुझे लौटा देना। उसे मैं पुनः लिखकर भेज दूँगा। यदि आप पूरेका संशोधन कर सकें तो पूरा ही छाप देना। मेरा विचार आगे इन सब योगोंपर पृथक् पृथक् लेख लिखनेका है जिसमें काफी समझा सके ऐसा वर्णन होगा। श्लोकोंके अर्थ लिखनेपर मेरा पहले ध्यान नहीं गया, पीछे उसकी आवश्यकता मालूम हुई।

लेख मैंने पं० दरबारीलालजीको भी दिखला लिया था। उन्होंने 'ठीक है' ऐसा रिमार्क दिया था।

आपके लिए मैंने यह लेख अनेक नैमित्तिक कृत्योंको बंद कर लिखा है, इसका ध्यान रखिएगा।

आपका आज्ञाकारी
हेमचंद्र मोदी

आपको लेख पसंद न आवे तो बिना संकोच वापस कर देना। इसका मुझे जरा भी रंज नहीं होगा। लिखनेके उत्साहमें भले ही कुछ न्यूनता आ जावे। जहाँ जहाँ आपको लेख ठीक न मालूम हो वहाँ वहाँ रिमार्क करके भेज दें। उन अंशोंको सुधारनेकी कोशिश करूँगा। जैन सिद्धांतका मुझे जरा भी ज्ञान नहीं है, इसलिये आपके लिए लिखनेमें अत्यधिक संकोच होता है।

मुझमें जाननेकी इच्छा दिनपर दिन बहुत ही प्रबल होती जाती है और यहाँ कामके मारे मैं पिसता जाता हूँ। मुझे अपनी पिपासा शांत करनेका बिल्कुल मौका नहीं मिलता। पिताजीकी झिड़कियाँ खा खा कर मेरी आत्मा बहुत तड़पती रहती है और दिनपर दिन बिगड़ता जाता हूँ। यदि आप मुझे वहाँ अपने पास बुला लें तो मुझे इससे बढ़कर खुशी और किसी बातमें न होगी। यदि मेरे लिये जिन्दगी भरके लिए खाने-पीने और decent रहनेका इन्तजाम हो जाय तो मैं दूकान भी छोड़ दूँगा। इसका मैं इन्तजाम कर रहा हूँ। मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ जो छपनेपर खूब बिकेगी। उसी प्रकारकी कुछ अन्य पुस्तकें छपाऊँगा। कुछ बिक्री होनेपर पैसे जहाँके तहाँ अदा कर दूँगा और आगेकी आमदनीपर गुजारा कर लूँगा।

आपका आज्ञाकारी
हेमचंद्र मोदी

नोट्—मेरी यह चिट्ठी पिताजीने मेरी बिना इच्छाके पढ़ ली है। इतनी भी सभ्यता उनमें नहीं है।

पत्र नं० ४

बम्बई ता० १०-४-३०

पूज्य पं० जुगलकिशोरजी, आपका ता० ५ का कार्ड मिला।

मुझे खूंटेसे बंधा देखकर आपको प्रसन्नता होगी, इस बातकी कमसे कम आप सरीखे मेरे शुभेच्छुओंसे, जो कि मेरी प्रकृतिसे थोड़े बहुत परिचित हैं, मुझे आशा नहीं थी। फिर भी मैं अपने आपको खूंटेसे बंधा नहीं पाता। इसलिए मैं अपने आपको धन्यवाद देता हूँ और मुझे अपने इस कर्त्तव्यका ज्ञान पहलेसे ही है कि मुझे उन्नतिके मार्गपर अग्रसर होना है न कि किसी खूंटेकी परिधिमें घूमना है। इस ज्ञानको लिए खूंटेके इर्दगिर्द चक्कर लगानेकी

उसी प्रकार आवश्यकता नहीं जिस प्रकार कि पृथ्वीको गोल सिद्ध करनेके लिए उसके इर्द गिर्द चक्कर लगानेकी।

मुझे आप उन मनुष्योंमें न समझना कि जिनकी मुखमुद्राओंसे विवाहके समय यह टपकता है मानों उनका इस संसारमें आना सफल हो गया है और अब उनके करनेके लिए कुछ शेष नहीं रह गया। यदि आप मेरे विवाहके समय उपस्थित होते तो आप देख सकते कि मेरे मुखपर उस विनाशकारिणी तामसिक शान्तिके स्थानमें कुछ और ही है।

खूंटेसे यदि आपका अभिप्रेत कोई व्यक्ति है तो उन्नतिके पथपर उसे भी आक्रमण करना ही होगा। जिस रज्जुसे उसने बांध रक्खा होगा उसी रज्जुसे मैं उसे खींच ले जानेमें भी समर्थ हूँगा। वासनाका बन्धन नाशवान् है, आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट होगा और मैं अपनेमें तो इसे बिल्कुल ही नही पाता हूँ। यदि कोई बंधन हो सकता है तो वह प्रेमका बन्धन। यह बन्धन किसी भी ओरका क्यों न हो यदि सच्चा हो तो मेरी उन्नतिमें बाधाकी आशा नहीं है। मैं (मुझे) तो आपसे इस प्रकारके आशीर्वादकी आशा थी कि मुझे अपने उन्नतिके मार्गमें एक और साथी मिले जो मेरी अपूर्णताओंको पूर्ण करे। आपके आशीर्वादसे भी कोई शक्ति मुझे बांधकर रख सकेगी ऐसा मुझे नहीं दीखता, खूंटेकी तो बात ही न्यारी है। जानवरोंको तथा मनुष्यरूपी पशुओंको खूंटेकी आवश्यकता हो सकती है। अशान्त सत्य खोजी ऐसे खूंटोंको यदि वे उनके लिए रुकावट हों तो, तोड़कर फैंक देते हैं। क्या मुझे आपने ऐसा पशु समझ रक्खा है जिसके लिए खूंटेकी आवश्यकता थी ?

गृहस्थाश्रमका वह कौन-सा रहस्य है जिसकी ओर आपने इशारा किया है। यदि वह दर असल जानने योग्य है तो वह उसके अन्वेषकको ही मिल सकता है हर किसी विवाहितको नहीं। गांधीजीने इस रहस्यको सत्याग्रह नाम दिया है। इसी सत्याग्रहद्वारा वे अपने आसपासवालों, पत्नी, पुत्रादिकको अनुकूल कर सके हैं। इस रहस्यका मुझे पहलेसे ही ज्ञान है। भले ही वह प्रत्यक्ष प्रयोगात्मक या सम्यक् न हो। इस ज्ञानको सम्यक् करनेके लिए आप जैसोंके आशीर्वादकी अपेक्षा है पर आप एक विचित्र ही आशीर्वाद देते हैं। जन्मभर खूंटेसे बंधे रहो और तेलीके बैलकी तरह घूमते रहो। यह कल्पना भी कंपकंपी उत्पन्न करनेवाली है।

मेरे लेखमें जो शंकाएँ आपको होंगी उनमेंसे अनेकका मुझे पहलेसे ही

ज्ञान है। मेरा लेख आप शीघ्र ही सूचनाओंसहित वापस कर दीजिए। यदि आप त्वरा न करेंगे तो लेखके प्रति उदासीन वृत्तिका परिचय देंगे। मैं किसी भी कारणसे हतोत्साह हो ही नहीं सकता। क्यों कि उस लेखको मैंने किसी उत्साहसे नहीं लिखा था। केवल आपके प्रेमपूर्ण आग्रहने ही उसे लिखा था। प्रेमके कारण वीतराग भगवान्को भी उपदेश देनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। प्रेम और राग इनमें आकाश-पातालका अन्तर है। प्रेमके आगे भगवान्को हार माननी पड़ती है। माता सब अपमान सहकर भी पुत्रकी सेवा करती है। राग ही प्रेम होता तो ये बातें न होतीं। यदि इस सम्बन्धमें मेरा राग होता तो अवश्य हतोत्साहका कारण होता।

नामकी मुझे पर्वाह नहीं है। आप चाहें तो संशोधित कर और किसीके नामसे छाप दें परन्तु प्रेमवश मेरी यह इच्छा अवश्य है कि वह छप जाय।

आपका आज्ञाकारी
हेमचन्द्र

पत्र नं० ५

बम्बई ता० २६–४–३०

पूज्यवर पण्डितजी,

वीरसेवक संघका जलसा सकुशल हो गया होगा परन्तु आपने अब तक मेरा लेख लौटाया नहीं। १५–२० दिनसे मैं उस लेखको पुनः लिखनेकी तैयारी कर रहा हूँ। इसके लिए मैं बहुतसे प्राचीन ग्रन्थ देख रहा हूँ। अब यदि आप उसे भेज दें तो पहलेसे १० गुना अच्छा लिखा जा सकता है। उक्त विषयकी बहुतसी नई बातें मालूम हुई हैं।

आपका आज्ञाकारी
हेमचन्द्र मोदी

आशा है कि आप नाराज न हुए होगे। बालक हूँ क्षमादृष्टि बनाये रहना।

पत्र नं० ६

बम्बई ता० ५–५–३०

श्रीमान् पूज्य पंडितजी,

आपका गत ता० ४० का पत्र मिला। आपके दुःखके साथ मैं सिवा शाब्दिक समवेदना प्रकट करनेके और कर ही क्या सकता हूँ। अनिर्वचनी-

सको स्वयं भगवान् भी वचनीय न कर सके तो मैं क्या कर सकूँगा। चित्त-वृत्तिको स्थिर करना आपके हाथमें है।

लेख तो अवश्य अच्छा बन जायगा परन्तु देर लगेगी और बहुत बड़ा हो जायगा। आवश्यक विस्तारके बिना साधारण लोगोंकी समझमें नहीं आवेगा।

लेखके लिए जो आपने कई 'आत्मक' बतलाये खेद है कि उनमेंसे शायद ही कोई पूरा कर सकूँ।

आपने जो विस्तृत पत्र लिखना स्थगित कर दिया सो ठीक नहीं किया। रोष तो मुझे कभी आता ही नहीं तो फिर स्थिर क्या रहेगा और अकारण तो कोई कार्य होता ही नहीं तो मेरा रोष अकारण कैसे हो सकता है। जो भी कुछ मैंने लिखा था उसके लिए मुझे electron मात्र भी अनुताप नहीं है। उन पंक्तियोंको आप व्यर्थ ही अनुताप और नम्रताव्यंजक बतलाकर उनके पीछे अपनी रक्षा करना चाहते हैं। मेरे वाक्योंमें जरा भी रोष होता तो आप इस प्रकार अपनी रक्षा न कर सकते। सात्विक रोष या प्रेमपूर्ण रोष भी रोष नहीं कहला सकता क्योंकि वह किसी कषायवश नहीं होता। उन पंक्तियोंसे यदि आप नाराज हो जाते तो आपके विषयमें मेरी धारणा बहुत हीन हो जाती परन्तु सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। आपका मुझे बहुत आदरके साथ पत्र लिखना बहुत खटकता है। आदरसे हृदयके कपाट बंद हो जाते हैं और हृदयको सच्ची शांति नहीं मिलती।

आपने जिन ग्रन्थोंको suggest किया है उन्हें आज ही मँगाकर पढ़ूँगा। इनके सिवाय निम्नलिखित ग्रंथोंके दसों उदाहरण मेरे लेखमें रहेंगे। इन्हें मैं पढ़ चुका हूँ—

योगसार (अमितगति) — ईशोपनिषद्
योगमार्ग (सोमदेव) — कैवल्योपनिषद्
योगबिन्दु (हरिभद्र) — हंसोपनिषद्
योगदृष्टिसमुच्चय ,, — मुक्तिकोपनिषद्
योगसारसंग्रह (नंदिगुरू) — श्वेताश्वतर उप०
समाधितंत्र (पूज्यपाद) — कठोपनिषद्
बिन्दुयोग (चंद्रपरमहंस) — प्रश्नोपनिषद्
मुंडकोपनिषद् छान्दोग्योपनिषद

इनके सिवाय मेरा विचार सब उपनिषदों और यजुर्वेद और अथर्ववेद और देखनेका है। उपनिषदोंमें योगविषयक-ज्ञान अपूर्व दिया हुआ है। अनेक बातें जो टीकाकारोंकी समझ तकमें नहीं आई मेरे सामने स्पष्ट होती चली जाती हैं। योगके ग्रंथोंके स्वाध्याय और अभ्याससे बुद्धि बहुत गहरी हो गई है। जहाँ औरोंको योगकी गंध भी नहीं मिलती और अर्थोंके लिए लड़ाई होती है वहां मुझे वह बात बिल्कुल स्पष्ट मालूम होती है। जैन ग्रंथोंमें भी योगका काफी वर्णन है परन्तु मुझे वह अनुभवात्मक कम मालूम हुआ।

सूचनाओंके विषयमें मेरा निवेदन है कि जैसे जैसे वे याद आती जायँ वैसे वैसे आप लिखते जावें और मुझे भेज दें। लेखके विषयमें मुझे आपकी सम्मति नहीं मालूम हुई।

कृपया आप मुझसे अनुवाद करनेका आग्रह न कीजिएगा। अनुवाद करनेसे मुझे बहुत घृणा है। यदि कोई मेरा अनुवादित लेख छपता है तो मुझे अपनी असमर्थतापर (स्वतंत्र लेख लिखनेकी) बहुत शर्म आती है। विशाल भारतवाला लेख मैंने एक साल पहले पिताजीके घोर आग्रहसे अँग्रेजी-परसे लिखा था। अनुवाद करनेसे मेरे मनपर चोट पहुँचती है।

आपने लेखपर अपनी सम्मति नहीं लिखी। मुझे डर लगता है कि ...... सरीखी मेरी भी दुर्दशा आप नोटों द्वारा न कर दें।

आपका आज्ञाकारी विनम्र
हेमचंद्र

४६

श्रद्धाके दो फूल

स० सिं० धन्यकुमार जैन

सन् १९४१ के बादकी बात है। समाजका वायुमण्डल अशान्ति और क्षोभसे व्याप्त था। परवार-सभाका पपौरा-अधिवेशन सम्पन्न हो चुका था और उसने अपनी जातिपर एक ऐतिहातिक गवेषणापूर्ण ग्रन्थ लिखे जानेकी योजनाको प्रकाशित कर दिया था। अनेक गण्य मान्य विद्वान् इस विशिष्ट कार्यमें निरत थे और आए-दिन पुरातत्त्व-सम्बन्धी सामग्रीका अन्वेषण कर रहे थे। इसी विषयपर दादाजी (श्री नाथूरामजी प्रेमी) की अधिकार एवं ओजपूर्ण लेखनीसे एक विस्तृत ऐतिहासिक लेख प्रकट हो चुका था। ग्रन्थ लिखा जानेको था। उन्हीं दिनों मैं कलकत्ता-प्रवाससे लौटा था और मार्गमें आदरणीय वर्णीजी व मनोरम सम्मेदशैलके दर्शनार्थ अपनी यात्राको मुझे पार्श्वनाथ स्टेशनपर स्थगित करना पड़ा था। यहाँ मैं जिस निष्कर्षपर पहुँचा, उसे दूसरी बारकी बम्बई यात्रामें दादाके सम्मुख कहनेका लोभ संवरण न कर सका।

मैं, दादा और भाई हेमचन्द्र 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' कार्यालयमें बैठे हिन्दी-साहित्यके सुलेखकोंके बारेमें चर्चा कर रहे थे। विचारोंके आदान-प्रदानके बीच मैं अपनी चपलताको न रोक सका और कह ही बैठा, "दादा, परवार-जातिके ऐतिहासिक ग्रन्थके लिये मुझे कुछ कुतूहल-जनक बातें मालूम हुई हैं। प्राचीन भग्नावशेषोंके निरीक्षणद्वारा खोजपूर्ण सामग्री प्रचुरमात्रामें उपलब्ध की जा सकती है, जो ग्रन्थके लिये बड़ी महत्त्वपूर्ण और सहायक सिद्ध होगी।"

इस सम्बन्धमें अपने मित्र पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीके पुण्यस्मरणद्वारा आचार्य महानन्दिके सम्पर्कमें रहनेवाली एक प्रेतात्माके मुँहसे कुछ आश्चर्य-जनक बातें मुझे आधी रातके समय सुननेका मिली थीं, जिन्हें अविकल रूपसे मैंने दादाजीको सुनायाः—

" परमारवंशीय क्षत्रियोंकी सन्तान परवार हैं। महोबेके परमारोंको पौरपट्ट पद था। इन्होंने ९९००७७२ जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित कीं। राजा परमालके

सप्तखण्डीय प्रासादके सर्वोच्च मालेपर श्री पार्श्वनाथ भगवानका एक प्रतिबिम्ब था। जिस समय आल्हा-ऊदल रणाङ्गणमें मारे गये, उस समय परमालकी पट्टरानीने उस जिन-प्रतिमाको महोबे और उरईके बीचकी पर्वतमालामें स्थित पुष्करमें जलमग्न करा दिया।

" चंदेरीकी चौवीसीके मन्दिरमें नीलवर्णकी प्रतिमापर परवारोंका कुछ इतिहास अंकित है।

" महोवेके राज-महलके सदर दरवाजेकी दक्षिण बाजूमें भी परवारोंके इतिहासकी कुछ सामग्री है।

" उज्जैनके हनुमानतालपर हनुमान-मन्दिरके पास परवारोंका एक पट्ट है, जो प्रयत्नसे मिल सकता है।

" मेलसाके मन्दिरमें दरवाजेसे घुसनेपर ही दाहिने हाथकी तरफ आलमारी है। जिन-बिम्बके पास आचार्यकी मूर्ति है। उसमें १२४४ संवत् खुदा हुआ है तथा ' प्रवरगच्छे ' लिखा हुआ है। ' गच्छ ' जातिका नाम है। ' प्रवर ' शब्द परवारोंका है। आदि... "

मैं कहता जारहा था कि बन्धु हेमचन्द्रके मुखसे हँसी फूट पड़ी, जो बड़ी देरतक रुकाये नहीं रुकी। मैं प्रकृतिस्थ-सा उनके चेहरेकी ओर अपलक निहारने लगा। जब हँसी समाप्त हुई तो उन्होंने मेरी पीठपर तपाकसे हाथ जमाते हुए कहा, " भाई धन्यकुमार, क्या तुम ऐसी हास्यास्पद बातोंपर भी विश्वास करते हो ! कहीं दिवंगत आत्मा भी बोला करती हैं ! भई, मैं नहीं जानता था कि तुम भूतोंकी बातपर इतना विश्वास कर सकते हो ! "

यह कहते हुए उन्होंने मेरा मखौल उड़ाया। मेरे पास उनकी निर्भीकता-पूर्ण व्यङ्गोक्तिसे बचाव करनेके लिये शब्द न थे, जिनकी आड़ लेकर मैं अपनी रक्षा करता।

मैं अप्रतिभ हो चुका था और इस मनोरंजक प्रहसनपर मन-मसोसे पश्चा-त्ताप कर रहा था। दादाजी चुपचाप मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे थे।

इस घटनासे उनकी निःसंकोचशील वृत्ति और निरपेक्ष स्वतंत्र भावनाका सुन्दर आभास मिल जाता है। साथ ही उनकी मृतात्माओंके सम्बन्धकी अनास्थाका भाव भी कुछ अंशोंमें झलकता है।

भाई हेमचन्द्रकी शिक्षा-दीक्षा बिलकुल स्वतन्त्र वातावरणमें हुई। उन्हें किसी एकान्त निर्दिष्ट पथका अनुसरण नहीं कराया गया। उनके लिये सब

मार्ग पूर्णरीत्या खुले हुए थे। उन्मुक्त वातावरणमें पले हुए व्यक्तिके लिए प्रत्येक मार्गकी जिज्ञासा होना बिलकुल सम्भव है। उन्होंने अनेक क्षेत्रोंमें अध्ययन और अनुशीलनद्वारा अनुभव प्राप्त किया। सरस्वतीके आराधना-मन्दिरमें अपनी मातृ-भाषा हिन्दीके उत्कर्षके लिये उन्होंने विभिन्न भाषाओंकी उपासना की और उसमें कृतकार्य भी हुए। मनोयोगपूर्वक उन्नत बंगला एवं गुजराती साहित्यमें हिन्दी-भाषाको अभिनव दिशाकी ओर ले जानेकी किरण-रेखा नेत्रगत की। अध्यवसायके फल-स्वरूप उस दृढव्रतीने नूतन दिशामें अभियान कर सुलभ साहित्यमालाका सृजन किया और अपनी व दूसरों द्वारा अनूदित सुन्दरतम पुस्तकोंका प्रकाशन कर अपनी प्रगल्भ प्रतिभाका अध्याय हिन्दी साहित्यमें जोड़ दिया। आज शरत्-साहित्य हिन्दी संसारमें काफी आदर और सम्मानके साथ पढ़ा जाता है।

भाई हेमने अपने जीवनमें कभी निठल्ले बैठे रहना पसन्द नहीं किया। साहित्याराधनाके साथ-साथ उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा, होमियोपैथी, धर्म, नीति, विज्ञान, दर्शन एवं समाजशास्त्रका स्वतः व अन्य विद्वानोंके सहयोगसे गहरा अध्ययन किया। कुछ ठोस रचनाएँ भी उन्होंने जब-तब कीं। पर निरभिमानताके कारण अपने विचारोंको अपरिपूर्ण समझ कर प्रकाशमें नहीं लाये। जो कुछ उनके मित्रोंकी सत्प्रेरणासे प्रकाशमें आ सका उसने विद्वानोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। कर्तव्यनिष्ठा, सरलता, सौजन्य, दया, परिश्रमशीलता व कष्ट-सहिष्णुताकी तो वे जीती जागती प्रतिमूर्ति थे। उनके निकट सम्पर्कमें जो एक बार भी आया, उसे उन्होंने अपनापा प्रदान किया। समय पर यथाशक्ति हरेक प्रकारकी सहायतासे भी वे कभी विमुख नहीं हुए।

बचपनकी एक घटना है। हेमचन्द्र अपनी बाल्यावस्थामेंसे गुजर रहे थे। अध्यापनकलाके सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ स्वर्गीय मा० करुणाशंकरजी एक दिन दादाके निवास-स्थानपर आये। उस समय बालक हेमचन्द्रको उपद्रवके उपहार-स्वरूप दादाने एक हलकी चपत लगा दी। श्री करुणाशंकरजी इस व्यवहारसे व्यथित हुए। उन्होंने बालकको गोदमें उठा लिया और चुमका पुचकार कर सान्त्वना देते हुए बालककी अविरल अश्रुधाराको अपने हाथसे पोंछकर कहा, "प्रेमीजी, ये तो जीते जागते भगवान् हैं। इन्हें मारनेसे इनकी स्वच्छन्दतामें बाधा पहुँचती है, बुद्धि कुण्ठित होती है और मनोविकासपर पर्दा पड़ता है।"

बन्धुवर हेमचन्द्र व दादाका परस्परका व्यवहार सदैव अनुज या मित्रके रूपमें रहा। दोनों पिता पुत्रने जीवनकी गति-विधि, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, विचार-विनिमय, साहित्य-समीक्षा, कुटुम्ब-परिपालन, मनोविनोदमें समानताकी हैसियतसे भाग लेकर अपने सुखद जीवनको सुरभित किया। पर पिता-पुत्रका वह आदर्श युगल विधिको नहीं सुहाया। असमयमें ही विच्छिन्न करा दिया गया। सुमन अपनी सुरभिसे दिगन्तको सुरभित न कर सका। कराल कालकी कुटिल गतिने अपने प्रबल झंझानिलसे उसे भूलुण्ठित कर दिया।

भाई हेमके स्वर्गारोहणके इतने समयके बाद आज भी वह विपन्न दग्ध और शोकाकुल परिवार सन्तापकी गहरी उसाँसें ले लेकर दिग्भ्रान्त-सा विपद्-संकुल मार्गके बीच काल-यापन कर रहा है। उन्हें सान्त्वनाका सहारा तक दिखाई नहीं देता। गृहके कोने-कोनेमें, प्रत्येक वस्तुमें, हेमकी स्मृति व्याप्त है उनकी पावन स्मृति-समाधिपर मेरी श्रद्धाके ये दो सुमन समर्पित हैं।

कुमार-कुटीर
कटनी
११-३-४४

४७

निर्भीक हेम

पं० कुन्दनलालजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

जब मैंने अखबारोंमें भाई हेमचन्द्रजी मोदीकी मृत्युका संवाद पढ़ा, मुझे बहुत रंज हुआ और उनकी बाल्यावस्थाकी मूर्ति मेरे सामने आगई। वे बचपनसे ही काफी तर्कणा-सम्पन्न थे। जिज्ञासात्मक प्रवृत्ति एवं निर्भीकता उनमें जन्मजात थी। इसीसे वे न रुचनेवाली बात भी बड़े-से-बड़े व्यक्तिसे कह देनेमें नहीं हिचकते थे।

सन् १९२१ के अक्टूबरकी घटना है। उस समय मैं खंडेलवाल जैन महासभामें कार्य करता था। उन्हीं दिनों आदरणीय पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी भी प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें महात्माजीसे मिलने बम्बई आये हुए थे। उनके साथ हम लोग—मैं, प्रेमीजी और बाल-बन्धु हेमचंद्र, जो उस समय

शायद ग्यारह बारह वर्षका था—महात्मा गाँधीजीसे मिलने गये। महात्माजी गामदेवीपर सेठ रेवाशंकर जगजीवनभाई (स्व० रायचंद्रजीके श्वशुर) के बंगलेपर ठहरे हुए थे। वहाँ स्व० सेठ जमनालालजी बजाजके अतिरिक्त दो-एक और भी सज्जन उपस्थित थे। हम लोगोंको महात्माजीके निकट पहुँचनेमें इस कारण विशेष कठिनाई नहीं हुई।

महात्माजी उस समय फाउन्टेन पेनसे कुछ लिख रहे थे। बालक हेमचन्द्रको महात्माजी सरीखे स्वदेशी-भक्तको विदेशी वस्तुका उपयोग करते देख आश्चर्य तथा कुतूहल हुआ। अपनी स्वभावगत जिज्ञासाके कारण आखिर वे महात्माजीसे पूछ ही बैठे, "बापू, आप तो सबसे स्वदेशी वस्तु ही काममें लेनेको कहते हैं। फिर आप यह विदेशी फाउन्टेन पेन क्यों काममें ला रहे हैं?" इसपर महात्माजी खूब हँसे। उपस्थित मंडली भी हँसी न रोक सकी। महात्माजी बादमें बोले, "भाई, जहाँतक मिलें, अपने देशकी वस्तुएँ ही काममें लाओ। जो अत्यन्त उपयोगी वस्तु स्वदेशमें नहीं बनती, उसे ब्रिटेनको छोड़ अन्य देशकी बनी काममें लाओ।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि बापूका पेन इटलीका बना था।

युवावस्थामें हेमचंद्रकी यह निर्भीकता और भी बढ़ गई थी। हमें आशा थी कि समाजको वे मननकी काफी सामग्री देंगे। पर खेद कि कालने असमयमें ही उन्हें उठा लिया।

कटनी
१५-३-४४

४८

स्व० हेमचन्द्र

मुनि जिनविजयजी

भाई हेमचन्द्रका केवल परिचय ही नहीं, निकट सहवास भी मेरे जीवनके बहुत बड़े कालको व्याप्त रखनेवाला है। मेरा और सुहृद्वर प्रेमीजीका अविच्छिन्न और उत्तरोत्तर वृद्धिंगत सौहार्द-सम्बन्ध कोई ३० वर्षसे भी अधिक समयसे है। जैन इतिहासके अध्ययन और लेखन-कार्यके आरंभमें प्रेमीजी मेरे अज्ञात रूपसे पथप्रदर्शक और आदर्श बने हैं। जैनहितैषीमें उनके लिखे हुए जैन इतिहास और साहित्यविषयक गवेषणात्मक लेखोंका अध्ययन और मनन कर मैंने भी इस क्षेत्रमें अपना पादप्रवेश किया था और उन्हींकी विचारसरणि, लेखनपद्धति और भाषाशैलीका अल्पस्वल्प अनुकरण कर मैं शनैः शनैः 'सरस्वती' और 'जैनहितैषी' जैसे लब्धप्रतिष्ठ पत्रोंमें अपने प्रारंभिक लेखोंके प्रकट करनेका सम्मान प्राप्त कर सका था।

साक्षात् परिचय होनेके पूर्व ही कई वर्षोंसे मेरा और प्रेमीजीका पत्रव्यवहार शुरू था। शायद सन् १९१५ या १९१६ के मई या जूनमें पादभ्रमण करता हुआ मैं बंबई आया और गौडीजीके जैनमन्दिरके उपाश्रयमें, अनेक लब्धप्रतिष्ठ और बहुजनपूज्य मुनिमहाराजोंके साथ ठहरा। मैं अमुक तिथिको बंबई पहुँचनेवाला हूँ, इसकी सूचना मैंने प्रेमीजीको दे दी थी। कोई ११ बजे हम लोग उपाश्रयमें पहुँचे ओर कोई १ बजे भोजनसे उठे ही थे कि प्रेमीजी अपने इकलौते पुत्र हेमचन्द्रको साथ लेकर आ पहुँचे। प्रेमीजीकी सौम्य मुद्रा, सरल प्रकृति, सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, उच्च सहृदयता और एकान्त गुणानुरागिता आदि अनेक विशिष्ट गुणोंके कारण उस प्रथम साक्षात्कारके ही समय मेरे हृदयमें, इनके प्रति जो सौहार्दभाव उत्पन्न हुआ वह इन ३० वर्षोंके दीर्घकालमें भी सदैव उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता रहा है। कोई महीनेभर तक मैं गौडीजीके उपाश्रयमें रहा। प्रेमीजी प्रायः हर दूसरे तीसरे रोज मिलने चले आते और समान रसके विविध विषयोंपर वार्तालाप किया करते। उसके बाद मैं चातुर्मास व्यतीत करने बालकेश्वरके रीजरोडवाले उपाश्रयमें

चला गया। वहाँ भी प्रेमीजी सप्ताहमें एक दो बार जरूर मिलने चले आते और उनके साथ हेमचन्द्र भी अक्सर रहा करता।

हेमचन्द्रकी उस शिशु अवस्थाका प्राथमिक स्मरण-चित्र मेरे हृदयपर अच्छी तरह अंकित है। मुझे सदासे ही बच्चोंपर प्रेम रहा है। बुद्धिकी चञ्चलता और प्रकृतिकी ओजस्विताका आभास पाकर तो मैं अनायास ही उन्हें ज्ञात-अज्ञात रूपमें बड़े प्यारकी दृष्टिसे देखने लग जाता हूँ। हेमचन्द्रमें भी उस समय मुझे इन दोनों बातोंका आभास दिखाई दिया और मैं उसे प्यार करने लगा।

उसके बाद मैं भांडारकर ओरिएन्टल रीसर्च इन्स्टिटयूटकी स्थापनाके कार्यमें सहायक होनेकी दृष्टिसे उसके प्रधान संचालक स्व० डॉ० गुणे आदिकी विशिष्ट प्रेरणासे पूना चला गया। पूनाके प्रगतिमय वातावरणने मेरे मनको खूब आकृष्ट किया और मैंने वहाँ ही अपनी जीवन-प्रवृत्तिका केन्द्र बनाना प्रारंभ किया। भांडारकर इन्स्टीटयूटकी प्रगतिमें सहायक होनेके साथ भारत जैन विद्यालय और जैन-साहित्य-संशोधक समाज आदिकी स्थापना कर कार्यरत रहने लगा। प्रेमीजी भी मेरे स्नेह और कार्यसे आकृष्ट होकर वारंवार पूना आने जाने लगे। कभी कभी तो सपरिवार महीनोंतक वहाँ ठहरते। भाई हेमचन्द्र अपने पिताकी ही तरह मुझे भी अपना आप्त समझ कर उसी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता और व्यवहार करता।

१९२० में मेरे जीवनमें एक नया और विशिष्ट प्रकारका परिवर्तन हुआ। महात्मा गाँधीजीकी प्रेरणासे मैंने असहकार आंदोलनके निमित्त संगठित होनेवाले राष्ट्रीय शिक्षणमें सक्रिय सहयोग देनेका निश्चय किया और अहमदाबादमें स्थापित होनेवाले गुजरात विद्यापीठकी स्थापना और प्रवृत्तिमें प्रमुख भाग लेनेकी दृष्टिसे अपने उस समयके साधु-जीवनके रूढ आचार-विचारोंमें अनेक आमूल परिवर्तन किये। तब तक मैं किसी सवारीका उपयोग न करता था, साधुवेषमें पैदल ही भ्रमण करता था और तदुचित क्रियाकाण्डका भी श्रद्धा या अश्रद्धासे यथायोग्य पालन किया करता था। अब गुजरात विद्यापीठकी प्रवृत्तिमें संलग्न होनेके विचारसे तथा और भी कई प्रकारके दीर्घकालीन मनोमन्थनोंके परिणामसे मैंने साधुपनके पेटेण्ट वेष और कुछ अनभीष्ट क्रियात्मक बन्धनोंका त्याग करना निश्चित किया। महात्माजीके आश्रममें विद्यापीठकी योजनाका विचार करनेके लिए एक प्राथमिक समितिकी बैठक होनेवाली थी जिसमें सम्मीलित होनेके लिये मुझे महात्माजीकी

ओरसे एक खास पत्र मिला। मुझे ठीक तरहसे ज्ञान नहीं था कि विद्यापीठका क्या स्वरूप होगा और उसमें मेरा क्या स्थान होगा। बिना अहमदाबाद गये और अन्यान्य कार्यकर्ताओंके साथ विचार-विनिमय किये, मुझे इसका ज्ञान होना अशक्य था, साथ ही अपने मनके साथ किसी तरहका समझौता किये बिना और संप्रदायरूढ भावोंके विरुद्ध प्रवृत्ति करना भी मुझे इष्ट न था। इसलिए मैं महात्माजीका सन्देशा पाते ही उसी रातको गुपचुप १२ बजेकी गाड़ीसे पूनासे रवाना होकर सवेरे बम्बई पहुँचा और बोरीबन्दर स्टेशनसे एक मजदूर करके सीधा प्रेमीजीके मकानपर आया। प्रेमीजी उस समय माधवबागके सामने चंदाबाड़ीमें रहा करते थे। मुझे इस तरह अन-पेक्षित रूपसे अपने मकानपर उपस्थित देखकर प्रेमीजीको आश्चर्य हुआ। मैंने सब हाल सुनाकर कहा कि मैं आज रातको महात्माजीके साथ अह-मदाबाद जा रहा हूँ। बंबईमें और किसीको खबर न होने देनेकी इच्छासे ही आपके यहाँ इस तरह चला आया।—इत्यादि। भाई हेमचन्द्र भी मुझे इस तरह एकाएक अपने घर उपस्थित देखकर अपने स्वाभाविक चांचल्यसे प्रश्न-पर प्रश्न करने लगा। उसे मालूम था कि मैं तो पूनामें रहता हूँ और गाड़ी वगैरहकी सवारी नहीं करता। 'महाराजजी, आज आप कहाँसे आये?' मैंने कहा—'पूनासे'। वह बोला—'पूनासे इतनी दूर इतने सवेरे ही कैसे आ गये?' मैंने कहा—'रातको १२ बजेकी गाड़ीमें बैठकर, चला आया।' उसकी प्रश्नपरंपरा तेजीसे बढ़ने लगी—'आप तो कभी गाड़ीमें नहीं बैठते,' मैंने कहा,—'आज तक नहीं बैठता था पर अब बैठनेका मन हो रहा है।' इत्यादि बातें हो रही थीं कि इतनेमें उसकी माँने उसे बुला लिया और वह वार्तालाप अधूरा ही रह गया। यद्यपि मेरे साथ मेरे काष्ठपात्र मौजूद थे, पर मैंने उस दिन प्रेमीजीके यहाँ ही पहली दफा धातुकी थालीमें भोजन किया। अपनी माँके साथ, हेमचन्द्र भी अपने हाथसे मेरी थालीमें बड़े उत्साहके साथ परोसना चाहता था। उसकी उस समयकी वह उत्सुकता और बाल-चेष्टाका चित्र मेरे मस्तिष्कमें बड़ी स्पष्टताके साथ आज भी वैसा ही अंकित है। क्योंकि वह दिन मेरे जीवनका एक सबसे बड़े महत्त्वका और सबसे बड़े परिवर्तनके प्रसंगका सीमा-स्तंभसा है।

भोजन करके प्रेमीजीको साथ लेकर मैं महात्माजीके डेरेपर मणिभवन गया। वे मेरी प्रतीक्षामें थे। बहुत देरतक बातें चीतें होती रहीं। सेठ जमनालालजी

बजाज, जो प्रेमीजीसे बहुत कालसे पूर्ण परिचित थे और स्व० पं० अर्जुनलालजी सेठी तथा प्रेमीजीके परिचयके कारण मुझसे भी ठीक परिचित हो गये थे, उस समय वहाँ उपस्थित थे। उनसे भी मेरी अपने जीवनके इस नये मार्ग-क्रमके बारेमें चर्चा होती रही। स्व० सेठ रेवाशंकर जगजीवनसे भी महात्माजीने मेरा परिचय कराया। शामको वहींसे महात्माजीके साथ कोलाबा स्टेशनपर जाना निश्चित हुआ। प्रेमीजी अपने मकानसे मेरा सामान स्टेशनपर पहुँचा गये। रातकी गाड़ीसे मैं महात्माजीके साथ सेकिंड क्लासमें बैठकर अहमदाबादके लिये रवाना हो गया।

इस गुप्त प्रवासका परिणाम यह हुआ कि मैंने अपने पूनेवाले केन्द्रको छोड़कर अहमदाबादके विद्यापीठमें संलग्न होना निश्चित कर लिया। ८–१० दिनमें वापस पूना पहुँचकर और वहाँसे अपने नये मार्ग-परिवर्तनकी सूचना पत्रोंमें प्रकट कर, विद्यापीठकी स्थापनाके दिन प्रातःकाल अहमदाबाद जा पहुँचा।

उस दिनको बीते प्रायः २५ वर्ष होने जा रहे हैं। इस बीचमें मेरा जब कभी बंबई अथवा पूना जाना आना होता था तब प्रेमीजीसे अवश्य मिलता था और भाई हेमचन्द्रसे भी। हेमचन्द्र मेरे इतने निकट था कि वह अपनी उस शैशव अवस्थामेंसे कब किशोर अवस्थामें पहुँचा और कब उसको पार कर वयस्क हो गया—इसका सीमासूचक कोई विशेष चित्र मेरे मनपर अंकित नहीं हो पाया। वह इतना सरल, इतना निर्दोष और इतना सीधा था कि मेरे निकट उसकी प्रौढताने अपना कोई हाव-भाव नहीं प्रकट किया। मुझे वह सदा बालक ही लगता रहा। उसका विवाह हो गया, बादमें उसकी वत्सलमूर्ति माताका स्वर्गवास हो गया, वह संतानवान् होकर पितृपदको भी प्राप्त हो चुका—तब भी वह मेरे सम्मुख बालक ही बना रहा। पीछेसे जब ज्ञात हुआ कि उसने कुछ योगकी प्रक्रियाओंका भी अभ्यास करना शुरू किया है और प्राकृतिक उपचार वगैरहके वैद्यकीय विषयोंका भी अध्ययन करना आरंभ कर रखा है, तब उसकी चिन्तनशीलता और विचारकताका मुझे आभास होने लगा। उसकी समझ-शक्ति गहरी हो चली थी और किसी भी विषयके मर्मको पकड़नेकी उसकी बौद्धिक कुशाग्रताका पता उसके साथकी तत्तद्विषयोंकी चर्चा करते समय स्पष्ट होने लगा था। वाद-विवादका उसको शौक हो गया था। आरोग्य और आहार-विषयक प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्तोंपर उसकी अधिक श्रद्धा थी और उसके अनुसार वह अपने ऊपर प्रयोग करनेके लिए भी उत्सुक

रहता था। मेरी जठराग्नि ठीक काम नहीं करती, इस लिये वह मुझे भी कई प्रयोग बतलाया करता और उनमेंसे मैं कभी कभी कोई करने भी लगता था। उसकी लेखनशैली प्रौढ हो चली थी और विषयकी विवेचन-शक्ति विकासोन्मुख बन रही थी। इन सब बातोंको देखकर मेरे मनमें, उसके भविष्यकी बड़ी आशा बँध रही थी। बन्धुवर प्रेमीजीके व्यवसायात्मक कारोबारको वह वैसे ही बनाये रखेगा या उसे बढ़ायेगा, इसके विषयमें मुझे कोई ठीक कल्पना नहीं हो सकती थी, पर वह अपने पिताप्रदत्त बौद्धिक व्यवसायकी प्रगति तो खूब अच्छी तरह करेगा, इसका पूरा विश्वास हो गया था।

काल राक्षसने इस श्रद्धाको अचानक कवलित कर लिया। बंबईके उस कल्पित परचक्रात्मक आक्रमणके भयने सबको इधर उधर भगाया। प्रेमीजी सपरिवार चालीसगाँव जाकर रहे। मैं भी अपना हेडकार्टर बम्बईसे उठाकर अहमदाबाद ले गया। अकस्मात् एक दिन बम्बईके एक स्नेही जनने सूचित किया कि भाई हेमचन्द्रका चालीसगाँवमें स्वर्गवास हो गया। समाचार सुनकर एकदम दिलमें गहरी चोट लगी, पर मन इस भ्रममें रहना पसंद करता था कि शायद ये समाचार झूठे हों। यद्यपि ऐसे समाचार झूठे कम होते हैं—यह सबके अनुभवकी बात है। ३-४ दिन बाद खुद प्रेमीजीहीका वह आँसुओंसे भरा हुआ पत्र आया जिसने अभी तक दबे हुए आँसुओंको, हृदयपर मर्माघातका तीव्र इंजेक्शन दे कर, पृथ्वीपर गिरनेका मार्ग कर दिया।

भाई हेमचन्द्र अपने यथार्थ 'प्रेमी' पिताको, जीवन-संगिनी सरलमूर्ति सहधर्मिणीको, अपने ही प्रतिकृतिस्वरूप पर सर्वथा अबोध बच्चोंको और उनके साथ अनेकानेक आप्त और बन्धुजनोंके हृदयोंमें अन्तर्निहित अपनी स्नेहमयी स्मृतिनिधिको, निर्भयभावसे पीछे छोड़कर, उतावलेपनसे अनन्तकी ओर आगे चल पड़ा। शायद उसको उस परमधामके देखनेकी बड़ी उत्कंठा हो गई हो जिसके द्वारपर पहुँचकर उसके जैसे उतावले और भोले शिशु ऐसा गान किया करते हैं।

मंगल मंदिर खोलो दयामय, मंगल मन्दिर खोलो।
जीवन बन अति वेगे वटाव्युं, द्वार उभो शिशु भोलो।
तिमिर गयुं ने ज्योति प्रकाश्यो, शिशुने उरमां ल्यो ल्यो।
दयामय मंगल मन्दिर खोलो।

भारतीय विद्याभवन,
बंबई
६-४-४४

४९

प्रिय हेमचंद्र

श्री कामताप्रसाद जैन एम० आर० ए० एस०

प्रिय हेमचंद्रसे मेरा प्रथम परिचय एक लेखसे हुआ, जो उन्होंने ' वीर ' में प्रकाशनार्थ भेजा था। लेख योग एवं जैन-धर्मके संबंधमें था। उसका विषय यद्यपि नीरस था और साधारण पाठकोंकी अभिरुचि शायद ही उसमें होती, परन्तु हेमचंद्रजीने उस लम्बे-चौड़े लेखको ऐसे आकर्षक ढंगसे लिखा था कि वह बड़ा ही सरस बन गया था और मैंने उसे बराबर कितने ही अंकोंमें चालू रक्खा।

हेमचंद्रजीसे साक्षात् इसके कई वर्ष बाद हुआ। सन् १९४० में मैं श्रवण-बेलगोलाके महामस्तकाभिषेकोत्सवसे लौटा और बंबईमें ' हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर' कार्यालय पहुँचा। प्रेमीजीसे इससे पहले इटावेमें मिलनेका सौभाग्य पा चुका था। इसलिए उन्हें चीन्ह लिया। उनकी सहृदयता और भ्रातृ-भाव देखते ही बनता था; हेमचंद्रजी मेरे सामने ही पुस्तक-प्रकाशन-संबंधी किसी कार्यमें व्यस्त थे। लेकिन परिचय न होनेके कारण मैं उन्हें पहचान न सका। मेरी आँखें उन्हें ढूँढ़ रही थीं। आखिर प्रेमीजीके संकेतने उन्हें मेरे सम्मुख ला खड़ा किया। परस्पर प्रेमाभिवादन हुआ। कुछ साहित्यिक बातें हुईं। इसके बाद वे अपने काममें लग गये।

मैंने देखा कि हेमचंद्रजी समय और कर्तव्यके पाबन्द हैं।

छोटी-सी आयुमें प्रौढ़ता, दृढ़ता और सौम्यता उनमें विद्यमान थी। निस्संदेह यदि वे बीचमें ही हमसे न छीन लिये गये होते तो हिन्दी-संसारके एक बड़े साहित्यिक, लेखक और प्रकाशक होते। किन्तु दैवको वह स्वीकार न था।

अब तो हेमचंद्रकी-संस्मरण आभा ही निःशेष है।

अलीगंज,
एटा